विश्वविद्यालयीन छात्राओं के स्त्री स्वातंत्र्य सम्बन्धी दृष्टिकोण का समाजशास्त्रीय अध्ययन

(बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी के विशेष सन्दर्भ में)

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी के समाजशास्त्र

विषय में पी-एच0डी0 उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

2006
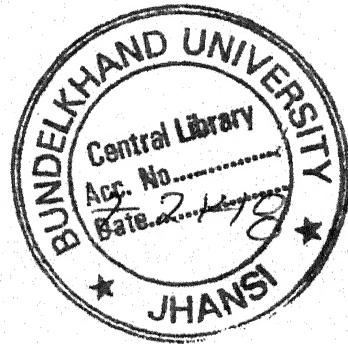
शोध पर्यवेक्षक :

डॉ० आनन्द खरे

प्राध्यापक समाजशास्त्र

डी0वी0 कॉलेज, उरई

शोधकर्त्ता :
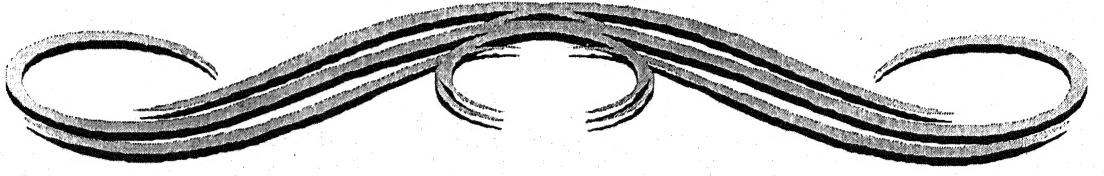
नीलम यादव

समर्पण

श्रद्धेय पिता

स्व0 श्री विक्रम सिंह यादव

(पूर्व विधायक एवं स्वतंत्रता संग्राम सेनानी,
प्रदेश अध्यक्ष समाजवादी पार्टी)
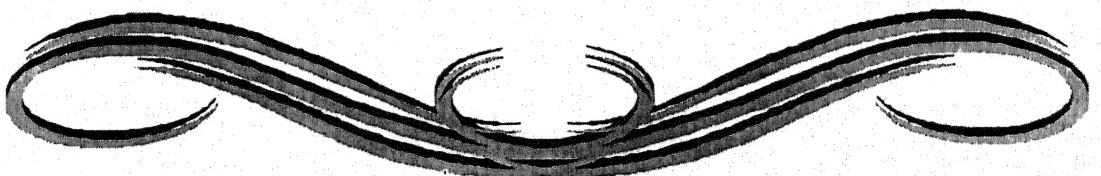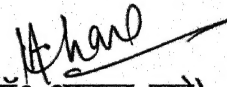
प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्रीमती नीलम यादव द्वारा प्रस्तुत शोध प्रबन्ध "विश्वविद्यालयीन छात्राओं के स्त्री स्वातन्त्र सम्बन्धी दृष्टिकोण का समाजशास्त्रीय अध्ययन" (बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी के विशेष सन्दर्भ में) मेरे निर्देशन में 200 से अधिक दिवसों तक शोधार्थी ने उपस्थित होकर पूर्ण किया है।

यह भी प्रमाणित किया जाता है कि प्रस्तुत शोध प्रबन्ध अध्ययन क्षेत्र में संचालित आंकड़ों एवं पुस्तकालय अध्ययन के आधार पर शोधार्थी का मौलिक कार्य है।

दिनांक :- 12.02.07

(डॉ0 आनन्द खरे)
पर्यवेक्षक
उपाचार्य एवं विभागाध्यक्ष-समाजशास्त्र,
दयानन्द वैदिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय
उरई

घोषणा पत्र

मैं नीलम यादव शपथ पूर्वक यह घोषणा करती हूँ कि मेरे द्वारा प्रस्तुत शोध प्रबन्ध "विश्वविद्यालयीन छात्राओं के स्त्री स्वातंत्र्य सम्बन्धी दृष्टिकोण का समाजशास्त्रीय अध्ययन (बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी के विशेष सन्दर्भ में) मेरे स्वयं के द्वारा संकलित आँकड़ों और पुस्तकालय कार्य पर आधारित है। यह मेरा मौलिक कार्य है।

प्रस्तुतकर्ता

Neelam.

नीलम यादव

आभार

सर्वप्रथम परब्रह्म परमात्मा के प्रति आन्तरिक समर्पण निवेदित करती हूँ जो अनादि, अनन्त, सर्वशक्तिमान तथा करुणामय है। मैं अपने शोध निदेशक डॉ0 आनन्द खरे के प्रति आभारी हूँ जिन्होंने मन्त्रदृष्टा ऋषि के रूप में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष ज्ञान के विविध सोपानों को इस शोध-प्रबन्ध के साथ-साथ मेरी अन्तश्चेतना में भी सुप्रतिष्ठित कर दिया और यह उनका सूर्यकिरणोज्जवल आशीष ही है कि मैं यह अनुसंधान कार्य कर सकी। मैं अपने भाईयों-भाभियों श्री नरेन्द्रसिंह-गीता दम्पति, श्री देवेन्द्र सिंह-रीता दम्पति, श्री लाखन सिंह-सुधा दम्पति, श्री राजेश-श्वेता दम्पति एवं श्री वीर सिंह यादव के प्रति आभार प्रदर्शित करना इसलिए आवश्यक समझती हूँ कि अनुसंधान सामग्री के संयोजन में इन्होंने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। मैं विख्यात, अल्पख्यात तथा अख्यात विद्वानों के प्रति भी हृदय से आभारी हूँ जिनकी रचनाओं के सहयोग से मैं यह शोध कार्य सम्पन्न कर सकी। मैं आभारी हूँ अपनी बहिनों श्रीमती रजनी-स्व0 मनोज कुमार दम्पति, डॉ0 सरोज यादव-श्री अशोक कुमार दम्पति, ऋचा यादव-विक्रान्त यादव दम्पति का जिन्होंने समय-समय पर अपना सानिध्य प्रदान किया। सृष्टि की महिमामय सत्ता अपनी जननी श्रीमती राम कुँअर के प्रति भावातिरेक में अश्रुविगलित कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए अत्याधिक गरिमा की अनुभूति कर रही हूँ। उनकी वात्सल्य की छाया में मैंने जन्म से लेकर इस शोध प्रबन्ध की परिपूर्णि तक पूर्ण आस्वति की अनुभूति की है। मैं अपनी सास माँ श्रीमती मीना व देवर मनीष का भी आभार व्यक्त करना चाहती हूँ। मैं अपने पति श्री दीपक कुमार एस0ओ0 की भी हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने राम की भाँति कंटकों में चलते रहने का दृढ़विश्वास भरा और अपना अमूल्य समय

देकर इस शोध ग्रन्थ को पूर्ण करने में सहयोग प्रदान किया। मैं अपने पुत्र का भी आभार व्यक्त करना चाहती हूँ। अन्त में मैं डॉ0 श्री योगेन्द्र यादव संस्थापक प्राचार्य टीकाराम यादव स्मृति महाविद्यालय मोंठ, झाँसी तथा श्री प्रवीण कुमार सक्सेना 'उजाला' कवि एवं साहित्यकार, उरई का जिन्होंने अपना अमूल्य समय प्रदान कर आँकड़े आदि एकत्र करने में पूर्ण सहयोग प्रदान किया। मैं इनकी सदैव ऋणी रहूँगी।

अनुसंधित्सु
Neelam
नीलम यादव

अनुक्रमणिका

अध्याय प्रथम

प्रस्तावना

प्रथम अध्याय

पृथ्वी पर अनेक प्राणी हैं। उनमें मानव भी एक है। लैंगिक आधार पर मानव दो भागों में विभाजित है :– स्त्री और पुरुष।

पृथ्वी के निर्माण के संबन्ध में अनेक मत प्रचलित है। ईसाईयों के धर्मग्रन्थ बाइबिल में पृथ्वी की रचना के सन्दर्भ में जो वर्णन किया गया है वो संक्षेप में इस प्रकार है।

"प्रारम्भ में परमेश्वर ने आकाश और पृथ्वी की सृष्टि की, उसने दिन रात, जल, वायु बन बनाया। उसने आदम को रचा लेकिन आदम का अकेला रहना उन्हें सही नहीं लगा। अतः परमेश्वर ने उसे गहरी नींद में डाल दिया और उसकी पसुली निकालकर स्वर्ग को बनाया और आदम ने कहा– अब यह मेरी हड्डियों में की हड्डी और मेरे मांस में का मांस है। इसलिए इसका नाम नारी होगा।"[1]

धीरे–धीरे जब पृथ्वी पर बुराई बढ़ने लगी तब उसने सोचा कि पृथ्वी पर जिस सृष्टि की रचना मैंने की थी उसे मैं मिटा दूँगा। परन्तु वह ऐसा न कर सका। वह धर्मी था इसलिये वह परमेश्वर के साथ चलता रहा। अतः बाद में जो निश्चित किया गया उसके अनुसार गौपेर वृक्ष की लकड़ी का जहाज बनाया गया और उसमें सभी प्रकार के जीवित प्राणियों की विभिन्न जातियों के एक–एक जोड़े रखने को कहा और उसने ऐसा ही किया। इसके पश्चात 40 दिन लगातार जल वृष्टि हुयी। जिसके परिणाम स्वरूप सिवाय

उस जहाज के सब कुछ समाप्त हो गया। इस प्रकार उस जहाज में उपस्थित प्राणियों से ही पृथ्वी पर फिर से जीवन का संचार हुआ।

मानवशास्त्री बाईबिल के उक्त कथन को अस्वीकार करते हैं और मानव की उत्पत्ति उद्विकास के द्वारा मानते हैं। उद्विकास डार्विन का सिद्धान्त है। डार्विन के अनुसार विश्व के प्राणियों का विकास सरलता से जटिलता के ओर से हुआ है अर्थात् पहले एक कोशीय फिर बहुकोशीय इस तरह छोटे–छोटे निम्न प्राणियों से बड़े प्राणियों का विकास हुआ। गोरिल्ला, चिंपाजी आदि के जो अवशेष प्राप्त हुये उनको भिन्न–भिन्न मानव प्रजातियों का उद्भव माना जाता है।

आदिम काल में स्त्री–पुरुष के कार्यों आदि में कोई भेद नहीं था। स्त्री और पुरुष दोनों ही विचरण करते थे। वे गुफाओं में साथ–साथ रहते थे और उनमें यौन स्वच्छंदता पायी जाती थी अर्थात् वे किन्हीं नियमों से बंध ो हुये नहीं थे। इस समय मनुष्य और पशु में विशेष फर्क नहीं था। स्त्री व पुरुष की समान स्थिति थी। लेकिन जैसे–जैसे मानव विकास की ओर अग्रसर हुआ, वैसे–वैसे ही स्त्री–पुरुष के कार्यों में विभाजन होता गया और कार्यों विशेषीकरण आता गया व स्त्री–पुरुष में श्रम विभाजन हुआ। इमाईल दुर्खीम ने भी श्रम विभाजन का प्रारंभिक आधार लैंगिक माना है। जे. एफ. मेकमिलन ने बताया कि प्रारंभिक समाजों में पूर्णतः यौन स्वच्छन्दता पायी जाती थी। इस यौन स्वच्छन्दता के चलते ही धीरे–धीरे मातृवंशीय परिवारों

का उदय हुआ। इसका प्रमुख कारण बहुपति विवाह हो सकता है। अतः परिवारों की कोई निश्चित संरचना नहीं थी। इस समय घर के कार्य, बच्चों का दायित्व, फल–फूल, कंद (भोजन के स्त्रोत) आदि एकत्रित करने का कार्य स्त्रियों का था। जबकि बाहरी कार्य, शिकार आदि पुरुषों के कार्य थे। प्रारम्भ में विभाजन का कोई उद्‌देश्य नहीं था। परन्तु धीरे–धीरे पुरुष वर्ग अपने कार्यों को स्त्री से अधिक महत्वपूर्ण मानने लगा तथा स्त्री के कार्यों को निम्न व हेय दृष्टि से देखने लगा। पुरुष वर्ग ने स्त्री को उसकी शारीरिक सीमाएँ समझा कर शक्ति वाले कार्यों को पुरुष के अनुकूल बता दिया और घर के तथा कम शक्ति वाले कार्यों को स्त्री के साथर जोड़ दिया। पुरुषों ने उच्च स्थिति का जामा पहनकर स्त्री का स्थान पुरुष से निम्न बना दिया।

इस प्रकार यह माना जा सकता है कि सम्पूर्ण मानव समाज मातृसत्तात्मक से पितृसत्तात्मकता की ओर बढ़ा है। ई. बी. टायलर ने 282 समाजों का अध्ययन किया है। उसके द्वारा लिये गये विवाह के नियम, वंश परम्परा तथा विवाह नामक संस्था के अध्ययनों से ज्ञात होता है कि अधि ाकांश समाज मातृसत्तात्मकता एवं मातृसत्ता से पितृ स्थानात्मकता एवं पितृ सत्ता की ओर अग्रेषित हुये हैं। प्रारम्भ में मातृसत्तात्मक परिवार होने से संपत्ति पर परिवार के नाम, वंश, गौत्र आदि पर स्त्री का अधिकार होता था। इस सबके कारण स्त्री की स्थिति उत्तम हुआ करती थी। मातृसत्तात्मकता से पितृसत्तात्मकता की ओर सामाजिक विकास की अवस्था के विषय में बेकोफन का मत है कि चूंकि स्त्रियाँ पारिवारिक एवं अन्य अधिकारिक कर्तव्यों के

कारण थकान का अनुभव करने लगी थी इसलिये उन्होंने अपनी सत्ता पुरुषों को हस्तांतरित कर दी। जो भी इस परिवर्तित स्थिति में हर मामले में पुरुष ने अपना अधिपत्य स्थापित कर लिया। स्त्री को वह निम्न व स्वयं को उच्च मानने लगा। उत्पादकता का आश्रय लेकर पुरुष ने स्त्री को घर की वस्तु बना दिया और स्वयं उसका मालिक बन गया।

स्त्री–पुरुष समाज निर्माण के दो परस्पर पूरक तत्व है। अतः मानवीय विकास में इसका स्थान क्या रहा? यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है। भारत में विभिन्न युगों से स्त्रियों की स्थिति विरोधाभास पूर्ण रही है।

हिन्दू दर्शन में जिन चार युगों का वर्णन किया गया है, वे इस प्रकार है :

1– सतयुग

2– त्रैयायुग

3– द्वापरयुग

4– कलयुग।

इन विभिन्न युगों में स्त्रियों की स्थिति इस प्रकार रही है :

वैदिक युग

वैदिक युग की सभ्यता इनके पूर्व हो चुकी थी क्योंकि इन सभी युगों में वेदों की शिक्षा दी जाती थी। "वैदिक युगीन सभ्यता में भारत में आर्यों का राज्य था। आर्यों ने ही वेदों की रचना की। वैदिक साहित्य में स्त्रियों

की जिस स्थिति का चित्रण किया गया है उससे यह प्रमाणित होता है कि प्राचीन हिन्दु समाज में स्त्रियों की स्थिति सम्मान जनक थी। इस युग के प्रमुख धर्मग्रन्थ ऋग्वेद में दम्पति शब्द का प्रयोग हुआ है। इसका शाब्दिक अर्थ दम–धन–पति अर्थात् 'घर का स्वामी। अर्थवेद में नारी को सर्वशक्तिमान माना है। उसे धर्म, विद्याशील, यश, संपदा का प्रतीक माना है। पुरुष के समाज दर्जा एवं परम्परा पूरकता का उदाहरण अर्द्धनारीश्वर की परिकल्पना में मिलता है। महाभारत में लिखा है कि पुरुष कोई पुरुष नहीं है, पुरुष उस समय तक अपूर्ण रहता है जब तक कि स्त्री का स्नेह और संतान मिलकर उसे पूर्ण नहीं बनाते।"[2]

किसी भी धार्मिक कार्य में पत्नी की उपस्थिति अनिवार्य थी। ऐसा माना जात है कि यदि ऐसा नहीं किया जायेगा तो पुरुष को इसका पुण्य नहीं मिलेगा। स्त्रियों की सहमति से ही विवाह होता था। इसके साथ ही विधवा विवाह पर नियंत्रण नहीं था। ऋग्वेद एवं अर्थवेद में विधवा स्त्री को पुर्नविवाह के लिए कहा गया है। स्त्रियों की रक्षा करना पुण्य कर्तव्य माना जाता था।

इस काल में बाल–विवाह, सती प्रथा का समाज में प्रचलन नहीं था। स्त्रियों का समाज में आदर था। पति–पत्नि साथ–साथ बैठकर यज्ञशाला में यज्ञ करते थे। स्त्रियाँ पुरुषों के सामने आ सकती, बाल सकती थी। शिक्षा–दीक्षा स्त्रियों की भली–भाँति होती थी। वेदों में अनेक विदुषी स्त्रियों का वर्णन है। घोषा, लोपामुद्रा, विश्वरा, अपाला, मैत्रेयी आदि स्त्रियों ने विद्वत्ता

व तपस्या के बल पर सं ऋषिशें का बल प्राप्त किया था। उन्होंने वेद ऋचाओं की रचना की। पुत्र–पुत्री दोनों का उपनयन संस्कार होता था। दोनों ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते थे। स्त्री–पुरुष दोनों मनोविनोद करते और पुरुषों के समान वह भी आखेट, रथदौड़ कुश्ती आदि में शामिल होती थी। उस समय स्त्री–पुरुष के व्यवहारों में अन्तर नहीं था और न उसे यौन संबन्ध के आध ार पर अपवित्र माना जाता था, न कोई बंधन था।

किसी ऋषि ने कहा है कि औरत पवित्र है इस सन्दर्भ में तीन हजार वर्ष पूर्व की एक घटना उल्लेखनीय है –

"जाबाला से उसके लड़के ने पूछा – मेरा पिता कौन है उसने जवाब दिया निश्चित नहीं कह सकती।" इससे स्पष्ट होता है कि उस समय यौन को लेकर स्त्री–पुरुष में कोई बटवारा नहीं था।

ऋग्वैदिक समाज पितृतन्त्रात्मक समाज था। पिता ही परिवार का मुखिया होता था। ऋग्वेद के कुछ उल्लेखों में पिता के असीमित अधिकारों की पुष्टि होती है। ऋजास्व के उल्लेख से पता चलता है कि उसके पिता ने उसे अन्धा बना दिया था। वरुणसूक्त के शुनःशेष के आख्यान के ज्ञात होता है कि पिता अपनी सन्तान को बेंच सकता था। किन्तु इन उद्धरणों से यह तात्पर्य कदापि नहीं निकाला जा चाहिए कि पिता पुत्र के सम्बन्ध ा कटुतापूर्ण थे। इसे अपवाद स्वरूप ही समझा जाना चाहिए। पुत्र प्राप्ति हेतु देवताओं के कामना की जाती थी। परिवार संयुक्त होता था।

'शतपथ ब्राह्मण' में पत्नी को पति की अर्द्धांगिनी बताया गया है। ऋग्वेद

में 'जायेदस्तम्' अर्थात् पत्नी ही गृह है कहकर उसके महत्व को स्वीकारा गया है। स्त्रियाँ सभा, समिति एवं विदथ नामक संस्थाओं में भी भाग लेती थी।

ऋग्वैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति सम्माननीय थी। वे अपने पति के साथ यज्ञ कार्यों में सम्मिलित होती एवं दान दिया करती थीं। पर्दा प्रथा का प्रचलन नहीं था। स्त्रियाँ भी शिक्षा ग्रहण करती थीं, ऋग्वेद, में लोपामुद्रा, घोषा, सिकता, अपाला, एवं विश्वासा जैसी विदुषी स्त्रियों का जिक्र मिलता है। इन विदुषी कन्याओं को 'ऋषी' उपाधि से विभूषित किया गया। इस समय लड़कियों का भी उपनयन संस्कार किया जाता था। शिक्षा गुरुकुल पद्धति पर निर्भर थी, जहाँ पर सामान्यतः मौखिक शिक्षा का प्रचलन था। विवाह न करने की स्थिति में यदि पुत्री पिता के घर में ही रहती है तो वह पिता की सम्पत्ति में हिस्सेदार होती थी।

"सामान्यतया बाल विवाह एवं बहु विवाह का प्रचलन नहीं था। विवाह की आयु लगभग 16–17 वर्ष होती थी। विधवा विवाह, अन्तर्जातीय एवं पुनर्विवाह की संभावना का उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है। साधारणतया समाज में एक पत्नी प्रथा का ही प्रचलन था। सती प्रथा एवं पर्दा प्रथा का विवरण नहीं मिलता। समाज में नियोग प्रथा, जिसके अन्तर्गत पुत्र विहीन विधवा पुत्र प्राप्ति हेतु अपने देवर से यौन संबन्ध स्थापित कर सकती थी, एवं वहुपतीत्व प्रथा का भी प्रचलन था।"[3] उदाहरण हेतु मरुतों ने रोदसी को मिलकर भोगा, सूर्या (सूर्य की पुत्री) अपने दो भाई अश्विन के साथ रहती थी। जीवनभर

अविवाहित रहने वाली लड़कियों को 'अमाजू' कहा जाता था।

पुरोहितों को गायें और दासियाँ ही दक्षिणा के रूप में दिया जाता था। दान के रूप में भूमि न देकर दास–दासियाँ ही दी जाती थीं।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि वैदिक काल में स्त्रियाँ–पुरुषों की संपत्ति न मानी जाकर सभी मनुष्यों के समान थी। उसक अपनी इच्छा का महत्व था।

वैदिकोत्तर काल

वैदिकोत्तर कालीन समय में शदियाँ प्रतियोगिता के आधार पर होती थी। आर्य समाज में समय बीतने के साथ स्त्रियों की स्थिति में अपेक्षाकृत अंतर आया। वेदों की व्याख्या के लिए धर्म ग्रंथों की सृष्टि होने लगी। इन धर्म ग्रन्थों में स्त्रियों के सीमित अधिकारों का उल्लेख मिलता है। ज्यों–ज्यों समय बीतता गया स्त्री की स्थिति भी गिरती गयी। हिन्दुस्तान में स्त्रियों के चरित्र के साथ सवाल जोड़कर उसे लाजवन्ती या छुई–मुई बना दिया गया। विवाह के सम्बन्ध में कुछ मान्यताएँ निर्धारित कर दी गयी अर्थात् इस संबंध में इनको कोई मान्यता नहीं दी जाती थी उसके वैधानिक अधिकार सीमित थे। चल एवं अचल संपत्ति पर उनका कोई अधिकार नहीं रहा। इस युग में स्त्री पर पुरुष की सत्ता प्रमुख रही।

निम्न जाति की स्त्रियों व उच्च जातियों की स्त्रियों में भेद भावपूर्ण व्यवहार शुरू हुआ। निम्न जाति की स्त्रियाँ बेच दी जाती थी। उन्हें अपने ऊपर कोई अधिकार नहीं था। कपड़े पहनना भी उनके लिए जरूरी नहीं

था। वे नग्न रहती थी। वैश्या के समान उनके साथ सलूक होता था। उच्च जाति की स्त्रियाँ प्रायः स्वतंत्र इच्छानुसार जगाहों में बिहार करती थी, गहने, वस्त्र पहनती थी और विलास प्रिय होती थी, निम्न वर्णन से यह स्पष्ट होता है–

"रोचना के कंधे पर बकरे की खाल थी कटि पर सूत वस्त्र था, पाँव में ऊचीं तनीदार चप्पलें थी। चूँकि वह ऋषिकुल की थी अतः उसके दांए कंधे से बांय हाथ तक यज्ञोपवीत था। शूद्र आर्य के समान नाक लम्बी और उठी हुयी, आँखें नीली थी।"

वैदिक युग की संस्कृति में उस समय स्त्रियाँ भी यज्ञोपवीत धारण करती थी, पुरुष वर्ग ही नहीं। इस तरह उच्च जाति में पुरुषों से स्त्रियों की कुछ समानता अवश्य थी। लेकिन समय के साथ स्त्रियों की स्थिति बद से बदत्तर होती गई।

उत्तर वैदिक काल में अन्तर्वर्णीय विवाह, बहुविवाह, विधवा विवाह, नियोग प्रथा, दहेज प्रथा का प्रचलन था। बाल विवाह, पर्दा प्रथा, सती प्रथा का उल्लेख उत्तर वैदिक काल में नहीं मिलता। स्त्रियों की दशा उत्तरवैदिक काल में ऋग्वैदिक काल की तुलना में अच्छी नहीं थी। 'अर्थववेद' कन्याओं के जन्म की निन्दा करता है। 'मैत्रायणी संहिता' में स्त्री को छूत और मदिरा की श्रेणी में रखा गया है। ऐतरेय ब्रह्मण में पुत्री को सभी दुःखों का स्रोत तथा पुत्र को परिवार का रक्षक बताया गया है उपनिषदों में याज्ञवल्क्य, गार्गी

संवाद जहाँ नारियों की उच्च शिक्षा के द्योतक हैं वहीं उनकी हीन स्थिति को भी सूचित करते हैं। एक वाद–विवाद के दौरान याज्ञवल्क्य ने गार्गी से कहा कि अधिक बहस न करो अन्यथा तुम्हारा सिर तोड़ दिया जायेगा। (वृहदारण्यकोपनिषद) पुत्री–जन्म पर खेद एवं पुत्र–जन्म पर हर्ष व्यक्त किया जाता था। इस काल में स्त्रियों के लिए उपनयन संस्कार प्रतिबन्धित हो गया था। ऐतरेय ब्राह्मण में पुत्री को 'कृपण' कहा गया है। तैत्तिरीय ब्राह्मण में कहा गया है कि पत्नी के बिना पति यज्ञ कार्यों को सम्पन्न नहीं कर सकता। शतपथ ब्राह्मण में अनेक विदुषी कन्याओं का उल्लेख मिलता है। ये हैं– गार्गी, गन्धर्व गृहीता, मैत्रेयी आदि। उत्तर वैदिक काल में स्त्रियों का पैत्रिक सम्पत्ति से अधिकार छिन गया। इस काल में स्त्रियों का सभा में प्रवेश वर्जित था।

सतयुग

सतयुग में स्त्री को नैतिक़ाता या आदर्श माना गया। स्त्री–पुरुष की दासी मात्र रह गयी जिसका कर्तव्य पति सेवा तथा आज्ञा का पालन करना रह गया। प्रेत पूजा आदि में स्त्रियों का उपयोग उसी तरह होता था जैसे पशुओं का क्रूर और निर्दयी ढंग से होता था जो निम्न उद्धरण से स्पष्ट होता है।

वंग देश से वापस आयी स्त्री अपनी सखी को वहाँ की एक लोभहर्षक घटना सुना रही है–

"एक कठोर पशुत्व की छाया से आक्रान्त दुर्दमनीय पुरुष एक

शव पर बैठा है। पास में हड्डियाँ बिखरी है, सामने ही एक स्त्री बंधी पड़ी है जो गीदड़ों के स्वर में स्वर मिलाकर रो रही है। देखते–देखते उस पिशाचकृति ने उसे कोड़े से मारना शुरू किया वह भयावन स्वर में अर्तनाद करने लगी। ग्रामवासी घुटने टेके बैठे अत्याचार को देख रहे है कोई कुछ नहीं कहता। तांत्रिक ने उसका गला घोटकर निःसंकोच उसके वक्षस्थल में छुरा घुसेड़ दिया।"[4]

इस उद्धरण से जाहिर है कि स्त्रियों के साथ अमानुषिक व्यवहार होता था,

परन्तु साधारण जनता कुछ नहीं बोलती थी। नारी परम्परा, अंध विश्वास की बेड़ियों में जकड़ी थी मानों शक्ति ही न हो।

स्त्री की स्थिति दयनीय रही योनि शुचिता के आधार पर उसके चरित्र को मापा जाता एवं उसी के अनुसार व्यवहार होता। स्वयं मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने अपनी सीता की इसी कारण अग्नि परीक्षा ली। इसके बावजूद भी विश्वास न होने के कारण उसे वनवास दे दिया, सीता सहन करती रही, कोई विद्रोह नहीं किया। शोषित होती रही, उस समय स्त्रियों की स्थिति विद्रोह करने लायक नहीं थी। वह नाम से ही दुर्गा भगवती है जिसका एक स्वरूप काली भी है। इसलिए पार्वती की शादी के समय पार्वती की माँ ने कहा था–

"कन विधि सुत्री नारि जग माहीं

पराधीन सपनेहु सुख नाहीं।"

द्वापर युग

यह वह युग था जब नारी को बराबरी का दर्जा मिला। उसे योनि शुचिता के आवरण से मुक्ति दिलाने के लिए कृष्ण ने पहला कदम उठाया। कृरूण ने उन सोलह हजार नारियों के विवाह किया जो राक्षस की कैद में थीं। समाज में उन्हें कोई स्वीकार करने को तैयार नहीं था क्योंकि वे पवित्र नहीं बल्कि अशुद्ध थी। कृष्ण ने सभी के साथ समानता का व्यवहार किया, यह कृष्ण की उदारता एवं योनि आधार के विरूद्ध क्रांति थी। यही नहीं उन्होंने औरत के साथ मित्र का सम्बन्ध स्थापित किया जो पहले कभी किसी ने न किया होगा। इसलिए कहते है नारी अगर कहीं नर के बराबर रही है तो सिर्फ ब्रज में और कान्हा के पास।

इस युग में द्रौपदी एक ऐसी स्त्री थी जिसने अपनी स्थिति को समझा और उसके खिलाफ आवाज उठायी। कहते है दुनिया के किसी देश काल की कोई स्त्री इतनी ज्ञान, हाजिर जवाब, समझ, हिम्मत और प्रतीक नहीं बन पायी जितनी की द्रौपदी। दरबार में उसने इस बात को साबित कर दिया कि युद्धिष्ठिर को कोई अधिकार नहीं था उसे बाजी पर लगाने का जो हारा हुआ है उसे हक नहीं दूसरे को बाजी पर चढ़ाकर हराने का।

बौद्धकाल

बौद्धकाल में स्त्रियों की दशा हीन और चिंताजनक हो गयी थी। स्त्रियाँ उपभोग की वस्तु मानी जाती थी। दासी प्रथा का प्रचलन भी बढ़ गया था। स्त्रियों के लिए सीमाएँ निर्धारित कर दी गयी और अधिकार सीमित कर

दिये गये। उन पर कठोर नियंत्रण रखा जाने लगा था। यह पुरुष की हृदयहीनता एव संकीर्ण मानसिकता का द्योतक थी।

जिस प्रकार नदी, शराबखाने आदि सबकी उपभोग की वस्तुएँ है, वैसे ही स्त्रियाँ भी सबके उपभोग की वस्तु मानी जाती थी। धन्मद जातक में कहा गया है स्त्रियों को चाहे जितने स्वादिष्ट भोजन कराओं अन्त में वे मल की ओर ही जायेगी। इसी तरह और भी अनेकों उद्धहरण जातकों में भरे पड़े है। जो सिद्ध करते हैं कि इस युग में स्त्रियों का सिवा उपभोग की वस्तु मानने के और कोई सामाजिक दर्जा नहीं दिया जाता था।

स्त्रियों को बाजारों में पशुओं की तरह खरीदा–बेचा जाता था जो निम्न उद्धरण से स्पष्ट होता है–

"तृप्ता सांवीर के साथ दास बाजार देखने चली गयी थी। चंपानगरी दास–दासियों के क्रय–विक्रय की बहुत बड़ी मण्डी थी। वहाँ यूनानी, यवन, मिश्री दास–दासियाँ सारे देश की दास मण्डियों में पहुँचाये जाते थे। बदले में विदेशी यहाँ के दास–दासी, अश्व, मसाले, रेशमी, बाज, मलमल, तम्बाकू आदि ले जाते थे। चंपा में गुलामों का बाजार हट्ट कहलाता था। हट्ट में व्यापारी दास–दासी को लोहे के सीखाचों से घिरे बड़े–बड़े बाड़ों में रखते थे। जिसमें चार साल से लेकर साठ साल की उम्र के दास–दासियाँ होती थी।

"आइए–आइए आर्य श्रेष्ठ आपके ही लायक आज कई युवा दासियाँ बिकने आयीं हैं। एक से बढ़कर एक हष्ट–पुष्ट और कीमत

भी 40 से 60 निष्क तक। आइए छोटी सुन्दर गुड़िया सी दासी लें, यह किसी भी घर की शोभा बन सकती है। अतिथियों के समक्ष प्रस्तुत करेंगे तो वह प्रसन्न हो जायेंगे। पुत्री के विवाह में दहेज में देंगे तो ससुराल वाले निहाल हो जायेंगे। खास बैशाली में पैदा हुयी है।''[5]

इस तरह ग्राहकों को देखकर दास व्यापारी आवाज लगाते ग्राहक जिस दासी की ओर इशारा करते व्यापारी उसे बाड़े के सीखाचों के पास बुलाते, ग्राहक उस दासी को किसी बेजान वस्तु की तरह ठोक बजाकर देखते फिर सौदेबाजी शुरू होती।

श्री मान् ने क्या दृष्टि पायी है व्यापारी कहता असल चीज पहली ही दृष्टि में भांप ली। यह दासी मल्ल वंश की है, नृत्य संगीत भी जानती है। भोजन भी अत्यन्त स्वादिष्ट बनाती है। देह सुख भी देगी, 25 वर्ष तक अभी इसके बढ़े होने का प्रश्न नहीं है। आप जितने में इसे खरीदेंगे उससे कई गुना ज्यादा इसके बच्चे बेचकर कमा लेंगे। यह कहकर व्यापारी उस दासी को बेजान वस्तु की तरह उलट–पलट कर दिखाने लगा।''

इन उद्धरणों से पता चलता है कि स्त्री और वस्तु में कोई फर्क नहीं था इतना ही नहीं, साथ ही दासी प्रथा पीढ़ी दर पीढ़ी चलती जाती थी। उनके साथ पशुओं से भी बुरा सलूक होता था। उसी पर यदि वह सुन्दर हुयी तो और आफत, उन्हें खतरनाक तरीकों से कुरूप कर दिया जाता था,

निम्नलिखित उद्धरण इसकी झलक मिलती है–

"हट्ट में एक प्रौढ़ ने 17–18 वर्ष की बेहद खूबसूरत लड़की को मोल लिया व्यापारी ने जंजीर खोज उसे प्रौढ़ के हवाले करते हुये कहा–लीजिए श्रीमान् इस अप्सरा के साथ आप फिर से युवा हो जायेंगे। प्रौढ़ ने हँसकर उसे अपने साथ ले लिया लेकिन तभी वहाँ पालकी में उसकी पत्नि आ गयी जो किसी राजघराने से सम्बन्धित लगती थी, उसने यह देखकर लड़की को जोर से धक्का दिया और प्रौढ़ पर चीखी तो वह मिन्नत करने लगा, बोला मैंने तुम्हारी सेवा के लिए ही इसे खरीदा है। इस पर उसने नाई से उसके सारे बाल कटवा दियें, उसके बाद "लौहार" की गरम छड़ से उसका चेहरा जला दिया और वह बेहोश हो गयी।"

राज्य भी दास व्यापार को मान्यता देते थे। सुनार स्त्रियों के दो ही स्थान थे या राजा के निवास में या गणिका बन उन्हें सभी को संतुष्ट करना होता था। आम्रपाली एक ऐसा ही उदाहरण है।

सुना है कि नरक की जिन्दगी खराब होती है, वहाँ व्यक्तियों को अत्यन्त कष्ट बर्दाश्त करने पड़ते है किन्तु उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि नरक में भी इतना कष्ट और पीड़ा किसी को बर्दाश्त नहीं करनी पड़ती होगी जितनी बौद्ध काल में स्त्रियों को सहन करनी पड़ी है। इनका जीवन इंसानों के जैसा नहीं था वरन् जानवरों के जैसा था, जिनका शोषण पुरुष वर्ग द्वारा किया जाता था।

मौर्यकाल

मौर्यकाल में भी स्त्रियों की स्थिति संतोषजनक नहीं थी। कौटिल्य ने स्त्रियों पर कठोर नियंत्रण की व्यवस्था का उल्लेख किया है। स्त्रियों को घर की सीमा में अवद्ध कर दिया। अशोक के शिलालेख बताते है। कि स्त्रियाँ अंधविश्वासी होती थीं। इस काल में चाणक्य ने स्त्री की दशा सुधारने का प्रयत्न किया। दास प्रथा उनके प्रयासों से समाप्त हुयी।

सम्राट अशोक के समय प्रारम्भ में स्त्रियों के ऊपर काफी अत्याचार हुये किन्तु बाद में सुधार भी आया। कौटिल्य स्त्रियों की उच्च शिक्षा का विरोधी था। उसने स्त्रियों का राजनीति में प्रवेश भी वंचित रखा। मौर्यकाल में वैश्यावृत्ती का प्रचलन बढ़ा। वैश्याओं के लिये अनेक नियम थे, वे राज्य–कर देती थीं। अतः यह युग स्त्रियों की स्थिति के प्रति विरोधाभास पूर्ण रहा क्योंकि इसमें धर्म ग्रन्थों, पुराणों स्मृतियों बौद्ध एवं जैन धर्म का संयुक्त प्रभाव पड़ा।

स्मृतिकाल की तुलना में मौर्यकाल में स्त्रियों की स्थिति बेहतर थी। पुनर्विवाह एवं नियोग प्रथा का प्रचलन था। जो स्त्रियाँ घर से बाहर नहीं निकल पाती थीं उन्हें 'अर्थशास्त्र' में 'अनिष्कासिनी' कहा गया है। इस समय सती प्रथा का कोई प्रमाण नहीं मिलता है। कुछ युनानी लेखकों की चह मान्यता है कि उत्तर पश्चिम में मृत सैनिकों के साथ उनकी स्त्रियों के सती होने की परम्परा थी। मौर्यकाल में ऐसी स्त्रियाँ 'गणिका' या 'वेश्या' कहलाती थीं जो वैवाहिक सूत्र में न बंधकर स्वतन्त्र जीवन यापन करती थीं। ऐसी स्त्रियाँ 'रूपाजीवा' कहलाती थीं, जो स्वतंत्र वैश्यावृत्ति को उपनाती थीं।

गुप्तकाल

गुप्तकालीन समाज में स्त्रियों की स्थिति के विषय में इतिहासकार रोमिला थापर ने लिखा है कि साहित्य और कला में तो नारी का आदर्श रूप झलकता है पर व्यावहारिक दृष्टि से देखने पर समाज में उनका स्थान गौण था। पितृप्रधान समाज मे पत्नी को व्यक्तिगत सम्पत्ति समझा जाता था। पति के मरने पर पत्नी को सती होने के लिए प्रेरित किया जाता था। उत्तर भारत की कुछ सैनिक जातियों के परिवारों में बड़े पैमाने पर सती होने की प्रथा का प्रचलन था। प्रथम सती होने के प्रमाण 510 ई के भानुगुप्त के एरण अभिलेख से मिलता है जिसमें किसी गोपराज (सेनापति) की मृत्यु पर उसकी पत्नी के सती होने का उल्लेख है। गुप्तकाल में पर्दा प्रथा का प्रचलन केवल उच्च वर्ग की स्त्रियों में था। नारद एवं पराशर स्मृति में विधवा विवाह के प्रति समर्थन जताया गया है। गुप्तकालीन समाज में वेश्याओं के अस्तित्व के भी प्रमाण मिलते हैं, पर इनकी वृत्ति की निन्दा की गयी। गुप्त काल में वेश्यावृत्ति करने वाली स्त्रियों को 'गणिका' कहा जाता था। 'कुट्टनी' उन वेश्याओं को कहा जाता था जो वृद्ध हो जाती थीं। किन्तु गुप्त काल में स्त्रियों के धन सम्बन्धी अधिकारों की वृद्धि हुई। स्त्री धन का दायरा बढ़ा। कात्यायन ने स्त्री को अचल सम्पत्ति की स्वामिनी माना है। याज्ञवल्क एवं बृहस्पति ने स्त्री को पति की सम्पत्ति का उत्तराधिकारिणी माना है।

मुगलकाल

"मुगलकाल में स्त्रियों पर अधिक प्रतिबन्ध लगा दिये गये। धीरे–धीरे

वे प्रतिबन्ध समाजीकृत हो गये और परम्पराओं, प्रथाओं और रूढ़ियों ने ध र्म का रूप ले लिया। जफर ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि "मुगल काल में औरत पर्दे की कैद में चली गयी और शिक्षा राजनीति, धर्म सामाजिक व आर्थिक क्षेत्रों से ऐसे अलग कर दी गयी जैसे दूध में से मक्खी।"[6]

किन्तु कहीं कहीं ऐसे प्रमाण मिलते है कि मुगल काल में राजकुमारियाँ, रानियाँ एवं उच्च घरानों की लड़कियाँ भी शिक्षा प्राप्त करती थीं। जिनमें प्रसिद्ध थीं गुलबदन बेगम (बाबर की पुत्री) फारसी पद्य लेखिका सलीमा सुल्तान (हुमायूँ की भतीजी), नूरजहाँ, मुमताजमहल, जहाँआरा, जेब्बुनिसा, दुर्गावती, चाँद बीबी आदि। अकबर की माँ ने पुराने किले में 'खेर–दल–मंजिल' नामक मदरसे की स्थापना करवायी थी।

मुगलकालीन शासकों ने शिक्षा के प्रचार प्रसार को महत्व दिया। इस समय की मस्जिदों में 'मक्तव' की व्यवस्था होती थी जिसमें लड़के–लड़कियाँ प्रारम्भिक शिक्षा ग्रहण करते थे। बाबर के समय में एक विभाग 'शुहरते आम' होता था जो स्कूल–कालेजों का निमार्ण करवाता था।

मुगल शासकों के काल को मध्य काल के नाम से भी जाना जाता है। 11वीं शताब्दी से ही भारतीय समाज पर मुसलमानों का प्रभाव बढ़ने लगा था। इस काल में हिन्दु धर्म एवं संस्कृति की रक्षा के नाम पर स्त्रियों पर अनेक प्रतिबन्ध लगाये गये, उन्हें अधिकारों से वंचित कर दिया गया और उन पर कई नियन्त्रण लागू किये गये। इस समय स्त्रियों को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार नहीं दिया गया। परन्तु उच्च धराने की स्त्रियों को इसमें

शामिल नहीं किया गया था। अब 5 या 6 वर्ष की अबोध कन्याओं का भी विवाह किया जाने लगा। रक्त की शुद्धता को बनाये रखने और स्त्रियों के सतीत्व की रक्षा के उद्देश्य के बाल–विवाहों को विशेष रूप से प्रोत्साहित किया गया। इस काल में परदा–प्रथा प्रचलित हुई। स्त्रियों का कार्य–क्षेत्र केवल घर की चहारदीवारी तक सीमित हो गया। अब विधवाओं को पुनर्विवाह का अधिकार नहीं था। सती प्रथा को बढ़ावा दिया गया और कई विधवाओं का तो सती होने के लिए बाध्य तक किया जाने लगा। पुरुष ने जहाँ विधवाओं को सब प्रकार के अधिकारों से वंचित कर सती होने तक के लिए विवश किया, वहाँ वह स्वयं एक पत्नी के होते हुए भी दूसरी और तीसरी स्त्री से विवाह करने लगा। इस काल में स्त्रियाँ पूर्णता परतन्त्र हो चुकी थीं। पारिवारिक, सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से स्त्री पुरुष पर निर्भर हो गयी। इस समय पति की इच्छाओं को पूरा करना ही स्त्री का एकमात्र धर्म रह गया। इस काल में स्त्री के सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार में कुछ सुधार अवश्य हुआ। उन लड़कियों को पिता की सम्पत्ति का उत्तराधिकार मिलने लगा जिनके कोई भाई नहीं था। इस काल में धर्म के नाम पर स्त्रियों का सर्वाधिक शोषण हुआ। उन्हें चेतना शून्य, पुरुष की कृपा पर आश्रित और निर्बल बना दिया गया। सती प्रथा के पुनः प्रचलन, पुनर्विवाह पर प्रतिबन्ध, परदा–प्रथा के विस्तार एवं बहुविवाह की व्यापकता ने उसकी स्थिति को बहुत गिरा दिया।

ब्रिटिशकाल

ब्रिटिशकाल में ईसाई धर्म का प्रचार–प्रसार हुआ और साथ ही आध

ुनिक शिक्षा का भी प्रचार हुआ लेकिन औरत के सम्बन्ध में यह पश्चिमीकरण विशेष प्रभावी न हो सका। स्त्री स्वातंत्रता के लिए जो आन्दोलन चलाये गये जैसे – बाल विवाह, सती प्रथा, कन्या बध आदि। ये आन्दोलन औरत की दयनीय स्थिति की ऊपरी सतह पर चोट पहुँचा सके अर्थात् इनसे स्त्रियों की स्थिति में कोई विशेष सुधार नहीं आया। कुछ स्त्रियों ने घर से बाहर कदम भी रखें किन्तु समाज उसे अच्छी नजरों से नहीं देखता था। स्वतंत्रता के संघर्ष के दौरान एक औरत महारानी लक्ष्मीबाई हुयी जो देश की स्वतंत्रता के लिए अंग्रेजों से टकराई। इस महान कार्य को भी हिन्दुस्तानी मर्दो ने सीधे–सादे उसी रूप में न लेकर उसे तोड़–मरोड़ कर उसका रूप ही बदल दिया।

झाँसी ओर पूना में जो पुतले झाँसी की रानी के बने है उन सभी में समान दोष है वह है उसकी पीठ पर बंधा हुआ बच्चा। हिन्दुस्तान के मर्दों का मन रानी को बच्चे के साथ देखना चाहता है। झाँसी के जो पुतले पर लेख लिखा है वह तो और भी असभ्य है –**"भारतीय नारी का गौरव बढ़ाया है।"**

तब तो इस तरह शिवाजी, सुभाष चन्द्र बोस के पुतलों पर भी लिखा जाना चाहिए कि **"भारत के मर्दों का गौरव बढ़ाया है।"** क्या कोई समितियाँ नहीं है जो घटना चयन पर अपनी राय दे और यदि हैं तो क्या सभी सदस्य मूक है।

राजा राममोहन राय ने सती प्रथा, बाल विवाह, के विरूद्ध अत्याधिक

प्रयास किया और बहुत हद तक वो अपने उद्देश्य में सफल रहे।

स्त्रियों की स्थिति को उच्च बनाने में बहुत ही कम पुरुषों ने प्रयास किया है। साथ ही हर बात में स्त्री को ही दोषी ठहराया जाता है, पुरुष को नही। किसी दम्पति की संतान न होने पर सामान्यतः परिवार और समाज स्त्री को ही दोषी मानता है।

भारतीय परम्पराओं के अनुरूप वैदिक युग से आज तक हमारे साहित्य और कविता में स्त्री का ही गुणगान होता रहा है। लेकिन वास्तविकता में इसके साथ कुद और ही व्यवहार होता है। उसे सिर्फ भोग की वस्तु और नौकरानी माना जाता है। यों तो अर्द्धनारीश्वर की कल्पना मोहक और सुन्दर लगती है लेकिन वास्तव में उसका कितना सम्मान होता है। स्त्री का जीवन मात्र इतना ही होता है कि जब वह छोटी होती है तो पिता की, विवाह होने र पति और बूढ़ी होने पर पुत्रों की आज्ञा का पालन करें।

यद्यपि स्वतंत्रता के बाद स्त्रियों की स्थिति में सुधार हुआ। लेकिन उनका सामाजिक विकास काफी धीमा रहा है। इसका एक कारण पूर्वज है जो स्त्री को किसी प्रकार की स्वतंत्रता देने के विरोधी रहे है।

आधुनिक भारत में स्त्रियों का शिक्षा स्तर ऊपर की ओर बड़ा है लेकिन उनके विचारों में विशेष परिवर्तन नहीं आया। इस प्रकार औरतों की स्थिति में अपेक्षित बदलवा नहीं आया।

ब्रिटिशकाल में कुछ सामाजिक सुधार किये गये जिसमें सती प्रथा के

तहत विधवाओं को जिन्दा जलाना अपराध घोषि कर दिया गया। बाल हत्या की प्रथा राजपूतों में सर्वाधिक प्रचलित थी। ये कन्या को अशुभ मानते थे, अतः इनके यहाँ नशीली दवाओं एवं भूखा रखकर शिशुओं को मार दिया जाता था। लार्ड हार्डिग ने 1795 ई0 में बंगाल नियम एक्स एक्स आई एंव 1804 के नियम 3 से बाल हत्या को साधारण हत्या मान लिया। 1870 ई में इस दिशा में कुछ कानून बने।

भारतीय समाज में दास प्रथा का प्रचलन प्राचीन काल से था। इंग्लैण्ड में इस प्रथा पर 1833 ई0 में प्रतिबन्ध लगया गया। भारत में 1843 ई0 में दासता को अवैध घोषित कर दिया गया।

विधवा पुनर्विवाह के लिए कलकत्ता के संस्कृत कालेज के आचार्य ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने इस दिशा में उल्लेखनीय कार्य किया। उन्होंने यह प्रमाणित करने का प्रयास किया कि वेदों में विधवा विवाह को मान्यता दी गई है। उन्होंने विधवा विवाह के समर्थन में लगभग एक सहस्र हस्ताक्षरों वाला प्रार्थना पत्र तत्कालीन गवर्नर जनरल डलहौजी को दिया जिसके परिणाम स्वरूप 1856 ई0 में 'हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम' (**Hindu Widow Remarriage Act**) द्वारा विधवा विवाह को मान्यता दे दी गई।

"बाल विवाह के क्षेत्र में केशवचन्द्र सेन के प्रयासों से 1872 ई0 में देशी बाल विवाह अधिनियम पास हुआ जिसमें बाल विवाह पर प्रतिबन्ध लगाने की व्यवस्था की गई। 1891 ई0 में ब्रिटिश सरकार ने एस0 एस0 बंगाली

के सहयोग से 'एज आफ कंसेट' ऐक्ट पारित किया। ऐक्ट के अनुसार 12 वर्ष की कम आयु की कन्याओं के विवाह पर रोक लगा दी गई। इस ऐक्ट का तिलक ने इस आधार पर विरोध किया कि वे इसे भारतीय मामले में विदेशी हस्तक्षेप मानते थे। 1930 ई0 में 'शारदा अधिनियम' द्वारा विवाह के लिए लड़की की आयु कम से कम 14 वर्ष और लड़के की 18 वर्ष निश्चित की गई।"[7]

हिन्दू शास्त्रों में दी हुई व्यवस्था के आधार पर 19वीं शती में एक गलत मान्यता का प्रचार लोगों में था कि स्त्रियों को अध्ययन का अधिकार नहीं हैं, परन्तु सुधार आन्दोलनों के द्वारा इस क्षेत्र में फैली भ्रांति को दूर किया गया। सर्वप्रथम ईसाई धर्म प्रचारकों ने इस क्षेत्र में कार्य करते हुए 1819 ई0 मे स्त्री शिक्षा के लिए कलकत्ता में एक 'तरुण स्त्री सभा' की स्थापना की। जे0 डी0 बेटन ने 1849 ई0 में कलकत्ता में एक बालिका विद्यालय की स्थापना की। ईश्वर चन्द्र विद्यासागर ने भी इस क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किया। वे बंगाल के लगभग 35 विद्यालयों से जुड़े थे। 1854 ई0 के चार्ल्स वुड पत्र में स्त्री शिक्षा की आवश्यकता पर ध्यान दिया गया।

महिलाओं के उत्थान के क्षेत्र में पुरुषों ने प्रयत्न किये परन्तु 20वीं शताब्दी तक अपने अधिकारों के लिए महिलायें खुद आगे आने लगी। 1926 ई0 में 'अखिल भारतीय संघ' की स्थापना हुई। देश के आजाद होने के बाद 1956 ई0 के हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम में यह व्यवस्था की गई कि

पिता की सम्पत्ति में पुत्र के साथ पुत्री भी बराबर की हकदार होगी और इसके साथ ही बहुविवाह, दहेज प्रथा आदि को भी प्रतिबन्धित किया गया। इस तरह 20वीं शती में महिलाओं की स्थिति में काफी सुधार हुआ।

स्वतंत्रता–प्राप्ति के पश्चात् स्त्रियों की स्थिति

स्वतंत्रता–प्राप्ति के बाद पिछले करीब 50 वर्षों में स्त्रियों की स्थिति में क्रान्तिकारी परिवर्तन आया है। अब उनकी स्थिति में काफी सुधार हुआ है। डॉ0 श्रीनिवास के अनुसार, पश्चिमीकरण, लौकिकीकरण तथा जातीय गतिशीलता ने स्त्रियों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति को उन्नत करने में काफी योग दिया है। वर्तमान में स्त्री–शिक्षा का प्रसार हुआ है। कई स्त्रियाँ औद्योगिक संस्थाओं और विभिन्न क्षेत्रों में नौकरी करने लगी है। पारिवारिक अधिकारों में वृद्धि हुई है। अनेक सामाजिक अधिनियमों ने स्त्रियों की निर्योग्यताओं को समाप्त करने और उन्हें सामाजिक कुरीतियों से छुटकारा दिलाने में योग दिया है। अब स्त्रियों को अपने व्यक्तित्व के विकास हेतु काफी सुविधाएँ प्राप्त हैं। वर्तमान में स्त्रियों की स्थिति में निम्न क्षेत्रों में महत्वपूर्ण परिवर्तन आए है :

स्वतंत्रता–प्राप्ति के पश्चात् स्त्री–शिक्षा का व्यापक प्रसार हुआ है। इसके पूर्व न तो माता–पिता लड़कियों को शिक्षा दिलाने के पक्ष में ही थे और न ही शिक्षा की दृष्टि से समुचित सुविधाएँ उपलब्ध थीं। सन् 1882 में पढ़ी लिखी स्त्रियों की कुल संख्या 2,054 थी जो सन् 1971 में 5 करोड़ 94

लाख अब 2001 में 22.67 करोड़ हो चुकी है। 1991 की जनगणना के अनुसार स्त्रियों में साक्षरता का प्रतिशत 39.29 तथा पुरुषों में 64.13 था जो अब 2001 में बढ़कर क्रमशः 54.16 तथा 75.85 हो गया है।

ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करने वाली करीब 75 प्रतिशत स्त्रियाँ आर्थिक दृष्टि से कोई न कोई कार्य करती रही है। नगरों में भी निम्न वर्ग की स्त्रियाँ घरेलू कार्यों और उद्योगों के माध्यम से कुछ न कुछ कमाती रही है। औद्योगीकरण एवं आधुनिकीकरण ने स्त्रियों की पुरुषों पर आर्थिक निर्भरता को कम करने और उनकी स्थिति को उन्नत करने में योग दिया है। शिक्षा के व्यापक प्रसार ने अनेक स्त्रियों को नौकरी या आर्थिक दृष्टि से कोई न कोई काम करने के लिए प्रेरित किया। अब स्त्रियाँ उद्योगो, दफ्तरों, शिक्षण–संस्थाओं अस्पतालों, समाज कल्याण केन्द्रों एवं व्यापारिक संस्थाओं में काम करने लगी है। भारत में विभिन्न क्षेत्रों में काम करने वाली महिलाओं का कुल कार्यशील जनसंख्या में प्रतिशत 22.73 है।

स्वतंत्रता–प्राप्ति के पश्चात् स्त्रियों की राजनीतिक चेतना में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई। पार्लियामेण्ट और विधानमण्डलों में स्त्री प्रतिनिधियों की संख्या और विभिन्न गतिविधियों में उनकी सहभागिता, राज्यपाल, मंत्री, मुख्यमंत्री और यहाँ तक कि प्रधान मंत्री तक के रूप में उनकी भूमिकाओं से स्पष्ट है कि इस देश में स्त्रियों में राजनीतिक चेतना दिनों–दिन बढ़ती ही जा रही है। पिछले कुछ वर्षों में पारित सामाजिक अधिनियमों ने भी स्त्रियों की निर्योग्यताओं को दूर करने और उनकी स्थिति को ऊँचा उठाने में उल्लेखनीय योग दिया है।

आधुनिक नारी के विकास पर लेखक प्रवीण कुमार 'उजाला' ने अपने लेख **"शाश्वत चिन्तन–नारी का गरिमामय आभामण्डल"** में लिखा है–" आज भारतीय नारी उन्नति कर रही है। वह घर के आँगन के दायरे से बाहर निकल कर राजनैतिक, आर्थिक एवं समग्र जीवन के क्षेत्रों में अपना दायित्व निर्वाह का कदम अच्छी तरह जमा चुकी है परन्तु अभी भी उसके व्यक्तित्व में कुछ कमी शेष हैं जैसे–स्व श्री ईश्वर चन्द्र विद्यासागर एवं समाज के प्रकाशक राजा राममोहन राये से पहले लड़कियों को कोई पढ़ाता नहीं था एवं पहले लड़कियों की कम उम्र, (बाल विवाह) में शादी कर दी जाती थी परन्तु यह बुराई समाज के कुछ वर्गों में अभी भी है।

आज वही नारी अनपढ़ एवं कलंक न होकर सर्व दिशाओं की आलोकित करती हुई लिखने पढ़ने लगी है। परन्तु उसके व्यक्तित्व में अभी उतना निखार नहीं हुआ जितना कि स्वतंत्रता के बाद भारत की नारी से अपेक्षा है।

आज भी सामान्य नारी अपने नाम से नहीं जानी जाती है प्रायः घर के अन्दर सिमटे प्रभावहीन रूप से किसी की बहिन या किसी की बेटी के नाम से जानी जाती है और शादी के बाद वह किसी की पत्नी या किसी की बहू या फिर घरेलू परिचय में लिपड़ के ही जीवन की इति श्री कर लेती है।

उसी नारी की जब बाल्यावस्था होती है तब उसे कुछ शैशव सीमाओं में बांध दिया जाता है उसी नारी की दूसरी अवस्था (किशोरावस्था) में कुछ

अधिक घरेलू सीमाओं में बधा माना जाता है और शादी आदि दायित्व बटने के बाद में तो उस नारी को सिबाय बोझा लादे पशु के अतिरिक्त मानवीय जीवन की बड़ी सत्य अवस्थाएँ स्थापित करने के कुछ भी शेष नहीं रहता। मान्यताओं में भारतीय नारी की दिव्यताओं के बाद जैसे सास ससुर के पैर दबाना पति के पैर दबाना पति के खाना खाने के बाद भोजन करना पति के उठने से पहले उठना पति को चाय बना के देना आदि आदि सेवा करना उसके कार्यों जैसे आफिस या दुकान जाने से पहले उन के कपड़े जूते की साज सज्जा सहयोग हेतु तत्पर तैयार रहना आदि जैसी सीमाओं में इतना अधिक बाध दिया जाता है कि बेचारी एक नारी अपने जीवन में कभी भी खुलापन सामान्य स्वतंत्र हवा में सांस लेना या इच्छा पूर्ण जीवन कभी महसूस नहीं कर पाती है।

असहाय सी बनके कभी कभी नारी जो नहीं करना चाहती है उसे करना पड़ता है। इन्हीं कारणों के बीच कभी कभी नारी बड़े कठिन कदम उठा लेती है। यह कठिन कदम जैसे आत्म हत्या या फिर तलाक या गृहत्याग कर दिशाविहीन होकर चल देना समाज में विवशता लज्जा और अपमान के पथ पर ले जाकर खड़ा कर देता है। समाज की उन्नति की सेवा परायण और सांस्कृति संज्ञाओं और व्यतियों को एसे अवसरों पर प्रकृति से सरल नारी रूप की गरिमामाय आभा मण्डल को भारती प्रचीनता के अनुरूप मार्ग दर्शन की तरह–तरह की योजनाएँ एवं समय–समय पर लेख देते रहना

चाहिये।"[8]

इस लेख से यह स्पष्ट होता है कि स्त्री स्वतंत्र भी है परन्तु कहीं कहीं पर परतंत्र भी। यह शायद इस लिये की बहुविवाह की प्रथा का समाप्त होना। जिसके कारण पुरुष अपनी भार्या को यौन शोषण से बचाना चाहता है।

स्त्री स्वातंत्र्य

सदियों से समाज में स्त्री–पुरुष को भिन्न दृष्टिकोण से देखा जाता रहा है। समाज में जहाँ पुरुषों के लिए सारी सुविधाएँ, छूट, आसानियाँ उपलब्ध हैं, वहीं स्त्री के हिस्से में बंदिशें, अनिवार्यता, रूढ़ियाँ व पीड़ाएँ हैं जैसा कि मैथिलीशरण गुप्त ने लिखा है–"**अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी। आँचल में है दूध और आँखों में पानी।**"

जागरुक होना अपने फैसले खुद लेना, ज्यादती के खिलाफ बोलना किसी भी व्यक्ति की योग्यता हो सकती है मगर यही योग्यताएँ अगर औरत में हो तो उसका व्यक्तित्व लगभग नकारात्मक सा मान लिया जाता है। यदि वह संकोची है तो यह शीलता है, वह दब्बू है तो वह सहनशील है और यदि झेपू है तो यह उसकी लज्जा मानी जाती है। दूसरे शब्दों में 'चुपचाप सी रहने वाली, ज्यादा ऊँचा न बोलने वाली, अपने बारे में दूसरों के फैसले मानने वाली विरोध न करने वाली स्त्री बहुत सम्मान पाती है और यही स्त्रियोचित माना जाता है। अतः स्त्री से सदैव कुछ अतिरिक्त की माँग की जाती है।

यह चुप्पी पिछली तमाम शताब्दियों की सीख से उपजी है। किसी लडत्रकी को पढ़ना है या नहीं पढ़ना, या पढ़ना है तो क्या, कहाँ तक और पढ़ाई कब छोड़नी है यह निर्णय तक उसके परिवार के दूसरे सदस्यों खासतौर से पुरुषों पर निर्भर रहता है।

विवाह हमारे समाज में सबसे महत्वपूर्ण माना गया है मगर लड़कियाँ अपने विवाह के निर्णय में कहीं नजर नहीं आती हैं। उसे शादी करनी भी है या नहीं करनी है तो किससे? उसकी अपनी इच्छा क्या है? वह अपनी जिन्दगी के बारे में किये जाने वाले सबसे बड़े निर्णय में एकदम चुप होती है। यहाँ तक कि विवाह के पश्चात् भी उसकी अपनी कोई इच्छा नहीं होती है और पति तथा उसके अन्य परिवार के सदस्यों को जो अच्छा लगता है, उचित लगता है, वैसा ही सब कुछ करती है। यहाँ यह भी महत्वपूर्ण है कि स्त्री सरलता से इन बरसों चली आ रही परम्पराओं को बिना किसी शिकायत व विरोध के स्वीकारती रही है। इसके पश्चात् भी किसी पुरुष के लिए यह असहनीय बात हो जाती है कि उसकी पत्नी विवाह पूर्व किसी अन्य पुरुष को जानती थी या उससे किसी प्रकार के सम्बन्ध थे। इस बेनाम अपराध की सजा होती है स्त्री को 'जीवन भर की यातना' जिसे वह बिना किसी शिकायत के सहती रहती है और विवाह को विष की तरह पीती रहती है। इसके पश्चात् भी अपनी जिन्दगी के बारे में सवाल उठाना लड़कियों का अधिकार कभी नहीं रहा है और इसका परिणाम उन्हें बार–बार भुगतना पड़ा है।

घर में लड़की का पैदा होना या न होना दोनों ही स्थिति परिवार वालों के लिए अधिकांशतः अफसोस की स्थिति होती है। यदि घर में लड़की जन्म लेती है तो बोझ समझ कर अफसोस किया जाता है और वह माता–पिता की चिंता व दुःख का कारण बन जाती है और घर में पुत्र ही पुत्र होते है तो हय कहकर अफसोस किया जाता है कि एक पुत्री होती तो बेटों को काम नहीं करना पड़ता, और माता–पिता के लिए भी सहारा होता। इस प्रकार औरत की हर रिश्ते में एक खास छवि बना दी गयी है, बेटी, बहिन, पत्नी, माँ और सास के रूप में इन सब रिश्तों में जहाँ भी वह पुरुष से जुड़ी है, वहाँ एक खास किस्म की आज्ञाकारिता, सहनशीलता और चुप्पी की उस से अपेक्षा की जाती है इन सब में सम्मान, पवित्रता जैसे शब्द जोड़कर औरत की ऐसी छवि बना दी गई है कि जिस जगह वह है, वहाँ से जरा सा इधर–उधर होते ही उस का अस्तित्व और पहचान संकट में पड़ जाती है। जब कभी भी इस छवि से बाहर निकलने की औरत ने कोशिश की है, तो उसकी ओर उंगलीं उठ गई हैं, आक्षेप लगाये गये हैं और उसे जबरन जहाँ प्रतिष्ठित किया गया है वहीं से गिराने की कोशिश की गयी है।

कहते है कि चेहरे पर पड़े परदे से कहीं ज्यादा नुकसानदेय आँखों पर पड़ा परदा होता है, मगर वहाँ यह परदा बाकायदा औरत के दिमाग पर डाल दिया गया है। पुरुष जानता है कि इस परदे के पीछे जो दिमाग

है वह उस के जैसा ही है सोचने–समझने और निर्णय करने की क्षमता इस दिमाग में भी उतनी ही है जितनी खुद उसके दिमाग में है, और इसीलिए पुरुषों के एकक्षत्र अस्तित्व के लिए यह जरूरी हो जाता है कि औरत को दबाबों में रखकर उसके दिमाग को लगभग नकारा सिद्ध कर दिया जाये। दिमाग को निष्क्रिय करना आसान काम नहीं इसलिए जरूरी था उसका रुख दूसरी ओर मोड़ देना तथा औरत को उसकी शारीरिक सीमाएँ समझा कर अपनी सरपरस्ती में लेना और फिर उसे एक सजीधजी, आज्ञाकारी, अच्छी भली सी छवि में कैद रहने को विवस कर देना।

भारतीय समाज में जिसे बार–बार देवी कहा गया है। यह देवी है जिसने तमाम अधिकार पुरुष के हाथों में सौंप कर अपने लिए परिवार में एक सुविधाजनक जगह बनायी है। यह देवी अपने लिए बनायी हुई सीमाओं को नहीं लांघ सकती है क्योंकि ऐसा करते ही वह अपने 'देवी' पद से नीचे आ जायेगी। वह वहीं तक देवी रह सकती है, जहाँ तक पुरुष चाहे।

औरत को बहुत तरह से बहलाया गया है, उसे अहसास दिलाया गया कि घर पूरी तरह से उसके हाथ में है, गृहस्थी संचालन कितना महत्वपूर्ण काम है। बच्चों की देखभाल करना यानी उनका भविष्य संवारना परन्तु उनके भविष्य संवारने में उसका खुद का वर्तमान कहाँ होता है? उसकी खुशियाँ, उसकी इच्छा, आकांक्षाएँ सब त्याग के बहलावे में खत्म कर दी जाती है। जिसे बेटी को पढ़ाने लिखाने में औरत अपना वर्तमान हाम कर देती है, इतने त्याग और मेहनत से बड़ी हुयी बेटी को फिर समझा दिया जाता है कि

वर्तमान से उसका क्या मतलब है। उसको एक और पीढ़ी का भविष्य संवारने की सीख देकर उसका वर्तमान बलि चंढ़ा दिया जाता है यह सिलसिला यों ही चलता रहता है।

स्त्री के शोषण में केवल पुरुष का ही हाथ नहीं होता है बल्कि स्त्रियाँ भी स्त्रियों का शोषण करती है। घर में यदि स्त्री को कष्ट पहुँच रहा है तो सिर्फ पुरुष के द्वारा नहीं, स्त्री के द्वारा भी। सच्चाई तो यहाँ तक है कि स्त्री चाहे शहर की हो या गाँव की लड़की नहीं चाहती। स्त्रियाँ गर्भवती होती हैं तो यह पता कर लेती है कि लड़का है या लड़की। यदि लड़की हुयी तो गर्भ गिरवा देती है। सास की बहु पर तानाशाही, बहुओं की आपसी जैलसी, ननद की भाभी पर हुकुमबाजी आदि इस बात के उदाहरण कि वाकई में स्त्री भी स्त्री का शोषण करती है।

यत्र तत्रं पत्र–पत्रिकाओं में नारी विषय के सम्बन्ध में लेख आदि प्रकाशित होते रहते है आइये एक लेख देखें– "कौन सुधारेगा नारी की दशा व दिशा'।

देश भर में महिलाओं की स्थिति में सुधार की इन दिनों कवायद चल रही है। मौजूदा आपराधिक कानूनों में संशोधन करके यौन उत्पीड़न व यौन शोषण की परिभाषा को व्यापक अर्थ प्रदान किये जा रहे हैं। अब महिला को छूने, चुंबन लेने, जबरन पकड़ने को यौन अपराधों की श्रेणी में रखा जा रहा है और इसमें दस वर्ष से लेकर उम्रकैद व भारी जुर्माने का भी प्रावधान

ान है।

यदि सब कुछ ठीक–ठाक रहा और हाल ही में महिला आयोग की पहल पर सरकार ने अपनी पूर्ववत् घोषणाओं के आधार पर कार्य किया तो आने वाला मानसून सत्र महिलाओं के लिए सुखद समाचार देने वाला होगा। इस सत्र में गृहमंत्री शिवराज पाटिल स्वयं ही सी. आर. पी सी के कानूनी प्रावधानों में सुधार के लिए विधेयक लायेंगे और संसद द्वारा भी महिला अत्याचारों व यौन अपराधों पर ऐसे सुधार न्यायिक व्यवस्था में किये जाने हैं जो काफी हद तक महिलाओं के साथ होने वाले अपराधों पर अंकुश लगाने में सहयोगी सिद्ध होंगे। इसके तहत् आई. पी. सी. व सी आर पी सी में कुछ परिवर्तन होंगे व पिछले वर्ष में किये गये सुधार कार्यक्रमों व संशोध ानों को भी लागू किया जायेग।

"राष्ट्रीय महिला आयोग की अध्यक्षा सुश्री गिरिजा व्यास के अनुसार मानसून सत्र के दौरान पेश विधेयक में बलात्कार व यौन शोषण से पीड़ित महिला को बार–बार बयान नहीं देने पड़ेंगे। उसके एक बार दिये गये बयान की रिकार्डिग आडियो व वीडिया में की जायेगी व अगली मर्तबा उसी बयान की सी. डी. को ही अधिकृत बयान के रूप में माना जायेगा। इसकी आवश्यकता इसलिए भी जरूरी है कि पीड़िता को अपने बयान पुलिस अध िकारियों, कोर्ट में बहस में प्रतिवादी वकील के सामने कई बार देने पड़ते हैं जो मानसिक प्रताड़ना तो होती ही है, साथ ही अपने साथ हुए दुखद

क्षणों को बारम्बार याद करना व बयां करना भी किसी मानसिक व शारीरिक शोषण से कम नहीं होता। ऊपर से प्रतिवादी द्वारा बयान बदलने की धमकी की गुजाइंश भी कायम रहती है। अब यह बात कोई मायने नहीं रखती है कि महिलाओं के साथ प्रतिदिन यौन शोषण व अपराध घटते रहते हैं। रांची में समाज कल्याण विभाग द्वारा महिलाओं से सम्बद्ध कानूनों पर आयोजित एक कार्यशाला में दिये गये आंकड़ों की मानें तो देश में प्रति 54 मिनट में एक बलात्कार व हर 43 मिनट वें मिनट में महिला के अपहरण की खबर आती है अतः जिस प्रकार से महिलाओं के खिलाफ अपराधों में इजाफा हो रहा है और देशभर में कामकाजी महिलाओं व ग्रामीण महिलाओं के साथ घरेलू हिंसा का ग्राफ निरन्तर बढ़ रहा है, ऐसे हालात में सख्त कानूनों की सख्त आवश्यकता है।"[9]

आज के अपराधों में महिलाओं के साथ शारीरिक प्रताड़ना के साथ लिंग आधारित भेदभाव के अपराध भी सर्वाधिक है। जैसे–जैसे देश में कामकाजी महिलाओं की संख्या में बढ़ोत्तरी हो रही हैं, वैसे यौन उत्पीड़न के नये रूप भी सामने आ रहे है। ऐसी हालात में मौजूदा कानूनों से तो अपराधियों को और अधिक शह मिल रही हैं और अपराधियों पर इस कानून से तो बिल्कुल भी अंकुश नहीं लग पा रहा है। यही कारण भी रहा है कि मौजूदा कानूनों में बदलाव कर सख्त कानून बनाने की आवाज निरन्तर महिलाओं व महिला संगठनों द्वारा उठाई जाती रही है। अब तो विधिक क्षेत्र

के लोगों के अलावा मानवाधिकार आयोग द्वारा भी महिलाओं के हक में कानूनों को परिवर्तन कर नये सिरे से वर्तमान परिप्रेक्ष्य में घटित घटनाओं के अनुरूप सख्त कानून लाने की पुरजोर वकालत कर रहे हैं। समय की मांग भी यही है कि यौन अपराधियों पर नकेल कसी जाए और नारी की अस्मिता को बचाकर उसको सम्मान दिया जाए, इसलिए न्यायिक प्रावधानों को न केवल सुधारा जाए अपितु सख्त कानूनों को ठीक प्रकार से शीघ्र लागू कर अपराधियों में खौफ भी बैठाया जाए।

"नये कानूनी प्रावधानों के तहत आई. पी. सी. की धारा 375 व 376 को व्यापक स्तर पर बढ़ाकर यौन उत्पीड़न का दायरा बढ़ाया जाएगा जिसके तहत् मौखिक रूप में कुछ कहने, फब्तिया कसने, स्पर्श, जबरन पकड़ना, चुबन किसी भी अंग का छेदन अथवा हमला करने को यौन आक्रमण की श्रेणी में रखा जायेगा। साथ सुरक्षा एजेसियों व सेना में कार्यरत महिलाओं के लिए भी अलग खंड बनाकर यौन उत्पीड़न को परिभाषित किया जायेगा व उसके लिए दंड की व्यस्था भी की जायेगी। सी. आर. पी. सी में भी परिवर्तन किया जा रहा है जिसके तहत् सूर्यास्त के बाद किसी महिला की गिरफ्तारी नहीं होगी और अब डी. एन. ए. सहित अन्य वैज्ञानिक तकनीकों को भी साक्ष्य के तौर पर माना जाएगा। साथ ही नये प्रावधानों में स्त्री की इच्छा को न्यायिक क्षेत्र में विशेष तवज्जों नहीं थी और दुष्कर्म होने पर कोर्ट में वकील प्रतिवादी आरोपी महिला की इच्छा कैसा सम्मान पाती है, यह महिलओं

को ही बैठकर तय करना पड़ेगा हालांकि जिस प्रकार से भारत में आम महिलाओं के प्रति अपराधों का ग्राफ बढ़ रहा हैं, और नये–नये रूप में यौन उत्पीड़न के मामले सामने आ रहे हैं उसे देखते हुए कानूनों में सख्ती, अपराधियों के सरे आम कठोर पिटाई व दंड की व्यवस्था अनिवार्य हैं ताकि समाज में खौफ बने व अपराधों को गैर जमानती बनाना भी खासी भूमिका निभा सकता है लेकिन यह भी आवश्यक होगा कि अपराधी पीड़िता को कोई नुकसान न पहुँचा पाये व उसका परिवार भी सुरक्षित रहे। बयान बंद कमरे में व महिला पुलिस एवं न्यायिक अधिकारी के सामने हो व न्यायिक प्रक्रिया त्वरित गति की हो। तभी सही अर्थों में महिलाओं के साथे होने वाले अपराधों पर अंकुश लगेगा।'' (किशन वासवानी, एक्शन इंण्डिया, साप्ताहिक,)

प्रस्तुत 'शोध प्रबन्ध'' स्त्री स्वातंत्र्य से सम्बन्धि विश्वविद्यालयीन छात्राओं के स्वयं के विचार जानने का प्रयास है। जिससे वर्तमान स्त्री की स्थिति को स्वयं स्त्री की दृष्टि से अधिक बेहतर रूप से समझा जा सकता है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में निदर्शित छात्राओं से स्त्री स्वातंत्र्य संबंधी उनका स्वयं का दृष्टिकोण और उनके अनुसार सामाजिक दृष्टिकोण जानने का प्रयास है।

सन्दर्भ सूची

1– बाईबिलः उत्पत्ति नामक पुस्तक।

2– अथर्ववेद, 14 जयशंकर मिश्र द्वारा लिखित प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास

3– लोहिया राममनोहर 'जन' अप्रैल 1967 नवहिन्द प्रकाशन हैदराबाद

4– बेस, ईश्वर सिंह इतिहास के आइने में आम आदमी

5– अनभिरत जातक : 65

6–जफर : मुस्लिम भारत में शिक्षा (साप्ताहिक हिन्दुस्तान 72–74)

7– बाजपेयी, पूर्णिमा : 70 से 94 तक स्त्री के लिए जगह

8– प्रवीण कुमार सक्सेना, साप्ताहिक दर्पण, उरई,

9– बाजपेयी, पूर्णिमा : 70 से 94 तक स्त्री के लिए जगह
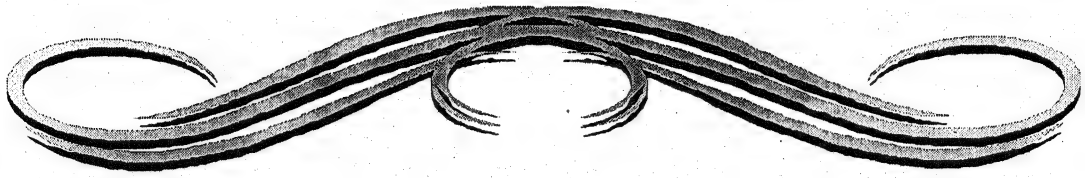
अध्याय द्वितीय

अध्ययन क्षेत्र
एवं
अध्ययन पद्धति
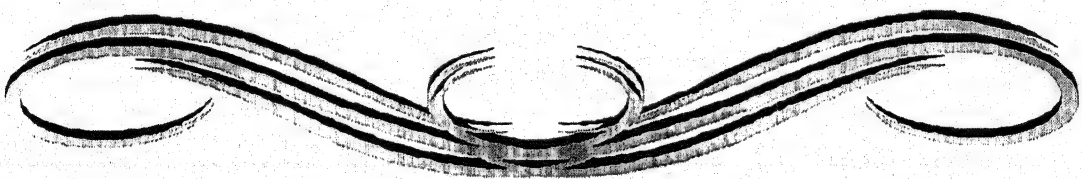
द्वितीय अध्याय

झाँसी मात्र एक भौगोलिक इकाई नहीं है, वह एक विचारधारा, एक जीवन शैली, एक चिन्तन–परम्परा, एक उदात्त भावना, विराट की एक अनुभूति भी है। वह संस्कृतियों का संगम भी है, वैचारिक ऊर्जा का अक्षय स्रोत भी है। इसे भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का पालना कहा जाता है। झाँसी को जानने के लिए, उसकी उदार आत्मा को, उसकी विराटता को जानना होगा जो स्वयं अपने में, विविधता में एकता और वैचारिक सहिष्णुता की जिन्दा मिसाल है। यहाँ संकीर्णता या ओछेपन की गुंजाइश नहीं है। 'जियो और जीने दो' का व्यावहारिक स्वरूप यहाँ की पहचान रही है।

"झाँसी का इतिहास वास्तव में राष्ट्रीय एकीकरण सांस्कृतिक सामंजस्य व समन्वय, सभी विचारों का आदर, शांति–पूर्ण सह–अस्तित्व और सहिष्णुता का इतिहास है। यहाँ बुद्ध, महावीर, इस्लाम, सिख....... सभी धर्मों के अनुयायी एक साथ रहे और एक दूसरे के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक व धार्मिक जीवन को प्रभावित करते रहे, समृद्ध करते रहे। हिन्दू कवियों ने कर्बला पर मर्सिये लिखे, मुसलमान कवियों ने राम और कृष्ण के गीत गाये। जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी इस सांस्कृतिक संश्लेषण को देखा जा सकता है। हिन्दुओं ने भी मंदिरों के निर्माण में इसको अपना लिया। संगीत में अमीर खुसरो ने त्रितंत्र वीणा और पखावज के नये संस्करण सितार और तबला दिये। हिन्दुस्तानी संगीत में खयाल के अलावा अनेक नयी प्रवृत्तियाँ समायोजित की।

संगीत के क्षेत्र में ठुमरी और ग़ज़ल इस संश्लेषण की देन है।

झाँसी भारत का महत्वपूर्ण क्षेत्र है राष्ट्रीय योगदान के विभिन्न क्षेत्रों में इसकी भूमिका काफी उल्लेखनीय रही है।

दक्षिण के पहाड़ और पठार– उत्तर प्रदेश की दक्षिण मं पठारी भू भाग की उत्तरी सीमा यमुना और गंगा नदी द्वारा निर्धारित है। इसके अन्तर्गत झाँसी, जालौन, हमीरपुर और बाँदा जिले की मेजा और करछना तहसीलें, गंगा के दक्षिण में पड़ने वाला मिर्जापुर का हिस्सा तथा वाराणसी जिले की चकिया तहसील आती है। यह क्षेत्र दकन के पठार का ही प्रसरण है। भू–गर्भ शास्त्रियों के अनुसार इसका निर्माण अत्यन्त प्राचीनकाल में प्रवाहमान समुद्री निरपेक्ष द्वारा हुआ। पठार की सामान्य ऊँचाई 300 मीटर के आसपास हैं कुछ स्थानों पर यह ऊँचाई 450 मीटर से भी अधिक है। मिर्जापुर सोनभद्र की पहाड़ियाँ लगभग 600 मीटर तक ऊँची हैं। बाँदा जिले की कर्वी तहसील में विन्ध्य पर्वत श्रेणियाँ हैं। यहाँ जल प्रवाह सामान्यतः उत्तर पूर्व की तरफ है। बेतवा और केन नदियाँ, जो बुन्देलखण्ड से होकर गुज़रती हैं, यमुना में आकर मिली हैं। इस पूरे क्षेत्र में वर्षा कम होती है। पानी के अभाव और भीषण गर्मी के कारण वृक्ष–वनस्पतियाँ छोटी होती हैं क्योंकि उनका विकास पूरी तरह नहीं हो पाता है। यहाँ की मुख्य फसलें ज्वार, चना और गेहूँ हैं।

जलवायु– झाँसी की पूरी जलवायु गर्म है। तराई क्षेत्रों में यह नमी लिए रहती है और दक्षिण पठारी क्षेत्र में गर्मी में नमी का नामोनिशान नहीं रहता। ग्रीष्म ऋतु में अनेक जगहों का तापमान 43 डिग्री सेन्टीग्रेड तक जाता

है। जाड़े की ऋतु में तापमान मैदानी क्षेत्रों में 12.5 से 17.5 डिग्री सेण्टीग्रेड तक रहता है। अप्रैल, मई और जून गर्मी के महीने हैं। जब प्रदेश में अधि ाकांश भागों में लू चला करती है। सामान्यतः वर्ष में तीन ऋतुएँ होती हैं। अक्टूबर से फरवरी तक जाड़ा, मार्च से जून तक गर्मी और इसके बाद सितम्बर तक बरसात होती है। गर्मी आगरा और झाँसी से सबसे अधिक, बरेली से सबसे कम पड़ती है। मध्य जून से मध्य सितम्बर तक प्रदेश में बंगाल की खाड़ी से आने वाले मानसून के फलस्वरूप प्रमुख रूप से वर्षा होती है। जाड़ों में उत्तर पश्चिम से उठने वाले तूफानों के कारण कुछ वर्षा का औसत 60 और 100 सेण्टीमीटर के बीच रहता है जबकि पूर्वी भाग के जिलों में 100 से 120 सेण्टीमीटर के बीच रहता है। यद्यपि जौनपुर जिले के पश्चिमी हिस्सों में वर्षा कुछ कम होती है। प्रदेश के लगभग 83 प्रतिशत वर्षा जून से सितम्बर के मध्य और 17 प्रतिशत जाड़ों में होती है। मैदानी क्षेत्र में गोरखपुर में सर्वाधिक वर्षा होती है जिसका औसत 184.7 सेमी. है और मथुरा में सबसे कम, जिसका औसत 54.4 सेमी. है।

झाँसी मण्डल, मिर्जापुर, सोनभद्र एवं इलाहाबाद की करछना वे मेजा तहसील, वाराणसी की चकियां तहसीलों में मिश्रित लाल और काली मिट्टी पायी जाती है। झाँसी को यों तो कृषि प्रधान प्रांत माना जाता है लेकिन यह प्रदेश खनिज सम्प्रदा का भी धनी है। झाँसी में चूना, पत्थर, मैग्नेसाइट, सोफस्टोन, तांबा, जिप्सम, ग्लास–सैड, संगमरमर, नान प्लास्टिक फायर क्ले, यूरेनियम, वेराइट्स, एडालूसाइट प्रमुख है।"[1]

झाँसी का क्षेत्रफल 5024 वर्ग कि. मी है। जसंख्या (2001 की जनगणना के आधार पर) 1746715 है जिसमें महिलाओं की संख्या 812597 है, तथा पुरुषों की संख्या 934118 है। झाँसी में कुल 5 तहसीलें– " झाँसी, मोठ, मऊरानीपुर, गरौठा, टहरौली" है।

झाँसी के सम्बन्ध में और जानकारी के लिए आइये इस तालिका को देखें–

"क्षेत्रफल	5024 वर्ग कि. मी.
जसंख्या (2001 की जनगणना के आधार पर	1746715
महिलाएँ (जनसंख्या)	812597
पुरुष (जनसंख्या)	934118
जनसंख्या में दशकीय वृद्धि दर	23.23 प्रतिशत
स्त्री पुरुष अनुपात	870–1000
जनसंख्या घनत्व	348 प्रति वर्ग कि. मी.
साक्षरता	66.69 प्रतिशत
नगर पालिका परिषदों की संख्या एवं नाम	06 (झाँसी, बरुआसागर, मऊरानीपुर, गुरसराय, समथर, चिरगाँव)
तहसीलों की संख्या एवं नाम	5 (झाँसी, मोठ, मऊरानीपुर, गरौठा, टहरौली)
विकास खण्डों की संख्या	08 (चिरगाँव, गुरसराय,

	बामौर, बंगरा, बबीना, बड़ागाँव, मोठ, मऊरानीपुर)
ग्रामों की संख्या	760
प्रमुख पर्यटन एवं ऐतिहासिक स्थल	झाँसी का किला, रानी महल, गंगाधरराव की छतरी, लक्ष्मी मन्दिर, गणेश मन्दिर, लक्ष्मीताल, नारायण बाग, राजकीय संग्रहालय, कौमासन का मंदिर, जराय का मठ, बरुआसागर का किला, कम्पनीबाग, स्वर्गाश्रम, बरुआसगर जलाशय, सुकवां–ढुकवा, परीछा बाँध, भसनेह जलाशय, करगुवा जी लक्ष्मीबाई पार्क।
प्रमुख औद्योगिक इकाईयाँ	बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन, भारत हैवी इलेक्ट्रिकल्स लि., जी. निवास फर्टीलाइजर्स लि., डायमंड सीमेंट फैक्ट्री।
हस्तशिल्प	घरेलू उपयोग की वस्तुएँ आदि।"[2]

समाज विज्ञानों से सम्बन्धित प्रत्येक विषय की अध्ययन पद्धति अलग हट कर होती है। समाज शास्त्र में हम सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन करते है। इसलिए सामाजिक सम्बन्धों पर पड़ने वाले आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक तत्त्व हमारे व्याख्यात्मक चर होते है। सामाजिक प्रस्थिति के रूप में भारतीय समाज में धर्म एवं जाति को प्रमुखता दी जाती है। अतः हम निर्भरतात्मक चर धर्म और जाति को मानते है।

सामाजशास्त्रीय शोध पद्धति में प्रयुक्त होने वाली कुछ पद्धतियों, तकनीकी एवं उपकरणों को हमने शोध प्रबन्ध के अध्ययन में प्रयोग किया है जो कि निम्नवत् है।

अध्ययन पद्धति

निदर्शन पद्धतिः– मोटे तौर पर हम कह सकते है कि समग्र में से चुने गये कुछ को जो कि समग्र का उचित प्रतिनिधित्व करता है निदर्शन कहते है। निदर्शन एक ऐसी पद्धति है, जिसके द्वारा हम समस्त इकाईयों में से कुछ इकाईयों का चयन अनेक स्वीकृत कार्य विधियों की सहायता से इस प्रकार करते है जिससे चुनी हुयी इकाईयाँ सम्पूर्ण समग्र की विशेषताओं की प्रतिनिधित्व करें।

श्रीमती पी. वी. यंग के अनुसार– एक सांख्यिकीय निदर्शन उस सम्पूर्ण समूह अथवा योग का एक अति लघु चित्र है जिसमें से कि निदर्श लिया गया है।

गुडे एवं हॉट के अनुसार– निदर्शन किसी विशाल समग्र का एक छोटा

प्रतिनिधि है।

बोगार्डस के अनुसार– निदर्शन प्रविधि एक पूर्व निर्धारित योजना के अनुसार इकाईयों को एक समूह में एक निश्चित प्रतिशत का चुनाव है।

अध्ययन हेतु चयन प्रक्रिया:– झाँसी विश्वविद्यालय की छात्राओं के स्त्री स्वातंत्र्य सम्बन्धी दृष्टिकोण जानने के लिए हमने छात्रावास की 100 छात्राओ को अपने शोध हेतु दैव निदर्शन का प्रयोग किया है। निदर्शन के सभी प्रकारों में दैव निदर्शन सबसे अधिक महत्वपूर्ण तथा सर्वाधिक प्रचलित प्रविधि है। दैव निदर्शन के अन्तर्गत एक प्रतिनिध पूर्णग चुनाव के लिए समग्र की सभी इकाईयों को चुने जाने का समान अवसर प्रदान किया जाता है। ऐसे निदर्शन में इकाईयों का चयन बहुत कुछ संयोग अथवा दैव पर आध ारित होता है इसीलिए इसे दैव निदर्शन कहते है। श्री फ्रेक्येट्स के अनुसार– दैव निदर्शन वह है जिमें समग्र अथवा जनसंख्या की प्रत्येक इकाई को सम्मिलित होने का समान अवसर प्राप्त होता है।

श्री पार्टन के अनुसार– दैव निदर्शन का प्रयोग उस अवस्था में किया जाता है जबकि चुनाव की पद्धति समग्र में से प्रत्येक व्यक्ति या तत्त्व को चुने जाने का समान आश्वासन प्रदान करती है।

दैव निदर्शन की इस विधि का उद्देश्य सभी इकाईयों को चुने जाने के समान अवसर प्रदान करता है। इस दृष्टिकोण से दैव निदर्शन प्राप्त करने के लिए अनेक प्रविधियों अथवा प्रणालियो का उपयोग किया जाता है।

लाटरी प्रणाली– इस प्रणाली के अंतर्गत वही तरीका अपनाया जाता

है। जो अन्य प्रकार से लाटरी निकालने के प्रयोग में लाया जाता है। समग्र की समस्त इकाईयों के नाम अथवा नम्बर कागज की चिटों या छोटे चौकोर कार्डो पर लिख लिये जाते है और फिर उन्हें किसी बर्तन, बॉक्स या झोले में डालकर अच्छी तरह से हिला दिया जाता है ताकि वे अव्यवस्थित हो जायें। जितनी इकाईयों निदर्शन में लेनी है। जो भी इकाईयाँ इस प्रकार दैवयोग से चुनाव में आ जाती है, उनका अध्ययन किया जाता है।

अध्ययन में प्रयुक्त उपकरणः

उपकरण के रूप में हमने अध्ययन के लिए मिश्रित प्रश्नावली का प्रयोग किया है।

गुडे तथा हाट के अनुसारः– ''सामान्यता, प्रश्नावली' शब्द का तात्पर्य प्रश्नों के उत्तरों को प्राप्त करने की एक ऐसी प्रविधि से है जिसमें उत्तरदाता स्वयं ही एक प्रपत्र को भरकर सूचनाएँ प्रेषित करते है।''

तथ्यों का प्रस्तुतीकरणः

संकलित तथ्यों को सामान्य एवं विभिन्न तथ्यों के आधार पर वितरित कर तालिकाओं में प्रतिशत के आधार पर प्रस्तुत किया गया है।

सारणीयन एवं विश्लेषणः

अध्ययन क्षेत्र में संकलित तथ्यों का व्यवस्थित रूप देने हेतु विभिन्न चरों के आधारों पर उन्हें वर्गीकृत किया गया है। समस्त तथ्यों को तालिकाओं के माध्यम से सक्षिप्त रूप प्रदान कर उनका विश्लेषण किया गया है।

विश्लेषण के आधार पर प्राप्त निष्कर्षो का सामान्यीकरण अनेक मानक

ग्रंथों के आधार पर किया गया है।"[3]

सन्दर्भ ग्रन्थ

1– उत्तर प्रदेश, गजट, 2003 सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग उत्तर प्रदेश, लखनऊ, पृ0 1 से 5 तक

2– उत्तर प्रदेश, गजट, 2003 सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग उत्तर प्रदेश, लखनऊ, पृ0 914, 915

3– "विश्वविद्यालयीन छात्राओं के स्त्री स्वातंत्र्य सम्बन्धी दृष्टिकोण का समाजशास्त्रीय विश्लेषण", लघु शोध प्रबन्ध, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर के सन्दर्भ में, कु. नीलम यादव, 2001, पृ0 30 से 32 तक।
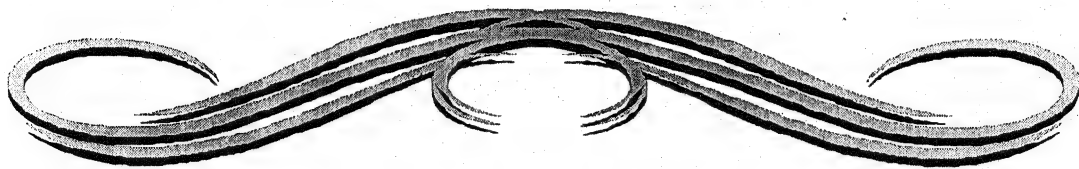
अध्याय तृतीय

अध्ययन इकाईयों
की
परिचयात्मक पृष्ठभूमि

तृतीय अध्याय

सम्पूर्ण भारतीय सामाजिक संरचना का आधार चार वर्णों की व्यवस्था है, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन प्रमुख वर्णों का प्रयोग अधिकांशतः व्यवहार में नहीं होता हैं। ये केवल आदर्श की स्थापना के बिन्दु है।

"व्यवहारिकता में जाति की वर्गीकृत या संस्तरीकृत व्यवस्था का ही उपयोग होता है, एम. एन. श्रीनिवास के अनुसार–"वर्ण व्यवस्था व्यापक अर्थों में उपयुक्त हैं किन्तु समाज की वास्तविकाता एवं प्रभावशाली इकाई नहीं है।"[1]

अर्थात् हम कह सकते है कि वर्ण व्यवस्था जहाँ एक ओर समाज में आदर्शात्मक प्रतिमान प्रस्तुत करती है वहाँ जाति व्यवस्था व्यवहारिक उपयोग में विवाह खान–पान एवं अन्य सामाजिक सम्बन्धों में निषेधाज्ञाओं का पालन कराने का रूप में कार्य करती है।

जी. एस. घुरिये ने इन्हीं अर्थों में जाति को प्रभावशाली इकाई के रूप में परिभाषित करते हुये "इसे आनुवांशिक, संस्तरीकृत, अन्तर्विवाही समूहा, सामाजिक एवं अन्य विषमताओं, खान–पान सम्बन्धों पर प्रतिबन्धात्मक एवं व्यक्ति स्वतंत्रता के लिये हानिकारण जैसे शब्दों से विभूषित किया है।"

जाति को बन्द वर्ग के रूप में परिभाषित करते हुये मजूमदार, जाति के अन्य लक्षणों, खान–पान एवं विवाह सम्बन्धी प्रतिबन्धों की मूक व्याख्या प्रस्तुत करते है। भारतीय जाति व्यवस्था के समस्त प्रतिबन्धात्मक लक्षणों की चिरकालीन निंरतरता निश्चित ही आश्चर्यजनक है। जिस पर अपने विचार

करते हुये पन्निकर कहते है कि–"कभी न समाप्त होने वाली विषमता से उत्पन्न हीन भावना से जिस समाज की अधिकांश जनसंख्या ग्रस्त हो उसे ब्राह्मणवादी विचारक कैसे न्यायिक दर्शाते है।"

हिन्दुओं में विवाह को एक संस्कार के रूप में स्वीकार किया गया है। कापडिया लिखते हैं, 'हिन्दू विवाह एक संस्कार है।" मेधातिथि के अनुसार, "विवाह कन्या को पत्नी बनाने के लिए एक निश्चित क्रम से की जाने वाली अनेक विधियों से सम्पन्न होने वाला पाणिग्रहण–संस्कार है, जिसकी अन्तिम विधि सप्तर्षि–दर्शन है।"

"विवाह सभी समाजों की एक सर्वव्यापी संस्था है लेकिन हिन्दू सामाजिक जीवन में विवाह का रूप जितना उद्देश्यपूर्ण और उपयोगिता मूलक रहा है वैसा संसार के किसी दूसरे समाज में देखने को नहीं मिलता। हिन्दू जीवन के अन्तर्गत विवाह सभी संस्कारों में प्रमुख ही नहीं है बल्कि यह त्याग और भोग का एक अद्भुत समन्वय हैं। इसी के द्वारा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष जैसे पुरुषार्थों को पूरा किया जा सकता है। पाश्चात्य विचारकों ने विवाह को ऐसी संस्था के रूप में स्पष्ट किया है जिसका उद्देश्य यौन–सन्तुष्टि और सन्तान के जन्म को वैध बनाना मात्र है, लेकिन ये सभी विद्वान हिन्दू जीवन दर्शन को समझने में इतने असफल रहे हैं राबर्ट बिफाल्ट जैसे विद्वान ने भी हिन्दू विवाह के साथ अनेक ऐसे रीति–रिवाज जोड़ दिये हैं जिससे हिन्दू विवाह में यौन सम्बन्धों की प्राथमिकता को ही स्पष्ट किया जा सके।

वास्तविकता यह है कि ऐसे विचार बिल्कुल निराधार हैं। हिन्दू जीवन में विवाह को एक संस्कार है जिसका एकमात्र उद्देश्य व्यक्ति को अपने धार्मिक तथा सामाजिक कर्तव्यों को पूरा करने के अवसर प्रदान करना है। यही कारण है कि हिन्दू समाज की बहुत सी संस्थाओं के रूढ़िगत हो जाने के बाद भी विवाह संस्था आज भी एक उपयोगी संस्था के रूप में विद्यमान है। हिन्दू सामाजिक व्यवस्था में आमूल परिवर्तन चाहने वाले व्यक्ति भी इस संस्था के मौलिक प्रारूप में कोई परिवर्तन नहीं चाहते। पवित्रता और स्थायित्व हिन्दू विवाह से सम्बद्ध ऐसी दो प्रमुख विशेषताएँ हैं जिसकी ओर आज वे समाज भी आकृष्ट हो रहे हैं जो भौतिकता से उत्पन्न संघर्षों का अब एक स्थायी समाधान चाहते हैं।"[2]

हिन्दू विवाह के उद्देश्यों के लिए कापडिया लिखते हैं–"हिन्दू विवाह के उद्देश्य, धर्म, प्रजा (सन्तान) तथा रति (आनन्द) बतलाये गये हैं।"

हिन्दू विवाह के मुख्य उद्देश्य हैं

(1) धार्मिक कार्यों की पूर्ति,

(2) पुत्र–प्राप्ति,

(3) रति आनन्द,

(4) व्यक्तित्व का विकास,

(5) परिवार के प्रति दायित्वों का निर्वाह,

(6) समाज के प्रति कर्तव्यों का निर्वाह।

राममनोहर लोहिया, भारतीय समाज के यथास्थितिवाद एवं जड़ता के

कारण के रूप में जाति प्रथा को स्वीकार कर उसे समाप्त करने की प्रेरणा देते है। जाति व्यवस्था की भारतीय समाज में गहराई का सूक्ष्म आंकलन करते हुये लोहिया का कथन है–"भारतीयज जीवन जाति की सीमाओं पर चल रहा है, सुसंस्कृत व्यक्ति, सभ्यता के साथ धीमी आवाज में जाति प्रथा का विरोध करता है, ज़बकि व्यवहार में वह जाति व्यवस्था के प्रतिबन्धात्मक स्वरूप को स्वीकार करता है।"[3]

जाति प्रथा की आलोचना नया विषय नहीं है। जाति प्रथा का विराध अनेकों कारणों से सैकड़ों वर्षों से भारत में हो रहा है। रैदास और कबीर जैसे समाज सुधारक भक्ति मार्गियों ने जाति पर गहराई तक चोट की है, रैदास की ये पंक्तियाँ–

हरि को भजै सो हरि को होई।

जांत पांत पूछे नहीं कोई।

तथा कबीर की साखियों में जाति प्रथा की कुरीतियों के विरोध में सतत् चर्चा ने कबीर को जाति विरोधी आंदोलन के प्रवर्तक के रूप में स्थापित किया। किन्तु भारतीय समाज क़ा जातीय प्रवृत्ति ने कबीर के नाम से एक नयी जाति की नींव स्थापित करने का कार्य किया।

भारतीय समाज में इन्हीं गुणों की चर्चा करते हुये गैराल्ड़ डी. वर्मन जाति विरोधी आंदोलनों की परिणितियों की व्याख्या प्रस्तुत करते है। उनके अनुसार–"जाति विरोधी धार्मिक एवं पुनर्निमाण आंदोलन कभी–कभी पिछड़ी जातियों के प्रति अपनी कुछ सफलताओं के कारण आकर्षित करते है, जैसे

कि बौद्ध दर्शन, इस्लाम, ईसाई धर्म एवं सिख धर्म आदि ये सभी धर्म की व्यवहार में जातिवाद मिटाने में असफल रहे।''

सामाजिक जीवन में धर्म के महत्व का प्रश्न एक विवादपूर्ण विषय बना हुआ है। फ्रायड ने धर्म को न केवल एक 'भ्रमजाल और पागलपन' कह दिया है, बल्कि आपके अनुसार नैतिकता तक एक बाहर से लादी गयी वस्तु है जो मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति को अवरुद्ध करके उसमें अनेक मानसिक रोगों को उत्पन्न करती है। अपनी एक अन्य पुस्तक '**Discontents of civilization**' में फ्रायड का कथन है कि समाज में यदि नैतिकता के बन्धन न हों तो मनुष्य पुनः बर्बरता के स्तर में पहुँच जाये। इससे स्पष्ट होता है कि धर्म के बारे में फ्रायड स्वयं इतना उलझ गये थे कि मनोविज्ञान के आधार पर वह उसका कोई वास्तविक समाधान नहीं ढूँढ सके। जो व्यक्ति हिन्दू धर्म से परिचित नहीं है, केवल वे ही यह मानते है कि धर्म का महत्त्व केवल विश्वास पर आधारित है लेकिन हिन्दू धर्म के उपर्युक्त सम्पूर्ण विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि हमारे समाज में धर्म का सम्बन्ध केवल विश्वास से नहीं है बल्कि यह एक उपयोगी और व्यवहारिक संस्था है। इसके द्वारा उन जिज्ञासाओं का सफलतापूर्वक समाधान किया गया है जिनको उच्च वैज्ञानिक ज्ञान के द्वारा भी नहीं समझा जा सकता।

जाति प्रथा की जकड़नों के विरोधी आंदोलन की काल लम्बे इतिहास का है। आधुनिकीकरण के विभिन्न वाहकों के माध्यम से जाति प्रथा की कई मान्यताऐं कमजोर भी हुयी है। किन्तु उनकी यात्रा उतनी अधिक नहीं है कि

सामाजिक विज्ञानों के विद्यार्थियों की जातीय आधार पर प्रभावहीन कारण के रूप में स्वीकार करने का बाध्य होना पड़े। इसीलिये भारतीय समाज के अध्ययन में जातीय संरचना को महत्व प्रदान किया जाता है।

तालिका क्रमांक : 3.1

धर्म के आधार पर निर्दश का वर्गीकरण

धर्म	संख्या	प्रतिशत
हिन्दू	66%	66%
जैन	21%	21%
इस्लाम	7%	7%
ईसाई	6%	6%
कुल	100%	100%

तालिका क्रमाकं : 3.1 में निदर्शित विश्वविद्यालयीन छात्राओं को उनके धर्म के आधार पर वर्गीकृत किया है। कुल 100 छात्राओं में से हिन्दु 66 प्रतिशत है, जैन छात्राओं का प्रतिशत 21 तथा इस्लाम का 7 प्रतिशत है। ईसाई छात्राओं का प्रतिशत 6 है।

तालिका क्रमांक : 3.2

जाति के आधार पर निर्दश का वर्गीकरण

वर्ण / जाति	संख्या	प्रतिशत
उच्च जाति	56%	56%
अनु. ज. जा.	6%	6%
अनु. जा.	2%	2%
पिछड़ा वर्ग	15%	15%
जैन	21%	21%
कुल	100%	100%

तालिका क्रमांक : 3.2 में निदर्शित छात्राओं को उनके जाति के आधार पर वर्गीकृत किया है। कुल 100 छात्राओं में से उच्च जाति की 56 प्रतिशत छात्राएँ है, अनुसूचित जनजाति की 6 प्रतिशत छात्राएँ है अनुसूचित जाति का प्रतिशत 2 है तथा पिछड़ा वर्ग का 15 प्रतिशत है। जैन छात्राओं का प्रतिशत 21 है।

तालिका क्रमांक : 3.3

आयु के आधार पर निर्दश का वर्गीकरण

जाति	20 से कम	20–24	25–29	कुल
उच्च	15%	35%	5%	56%
अ. ज. जा		5%	1%	6%
अ. जा.		2%		2%
पिछड़ा वर्ग	4%	10%	1%	15%
जैन	4%	16%	1%	21%
कुल	23%	68%	9 %	100%

तालिका क्रमांकः 3.3 में निदर्शित छात्राओं में विभिन्न आयु वर्ग की छात्राएँ सम्मिलित है। विभिन्न जाति एवं धर्म की 20 से कम वर्ष की छात्राओं की प्रतिशत 23 है, 20–24 वर्ष आयु वर्ग का 68 प्रतिशत, 25–29 वर्ष की आयु वर्ग का प्रतिशत 9 है।

उक्त तालिका से यह भी स्वष्ट होता है कि उच्च जाति की कुल 56 प्रतिशत छात्राओं में से 15 प्रतिशत 20 से कम आयु की 35 प्रतिशत, 20–24 आयु वर्ग की 5 प्रतिशत और 25–29 वर्ष की छात्राएँ है। अनु. ज. जा. की कुल 6 प्रतिशत छात्राओं में 20–24 वर्ष की 5 प्रतिशत, 25–29 आयु वर्ग की 1 प्रतिशत छात्राएँ है। अ. जा. की कुल 2 प्रतिशत छात्राएँ 20–24 आयु वर्ग की है। पिछड़ा वर्ग की कुल 15 प्रतिशत छात्राओं में से 20 से कम आयु की 4 प्रतिशत, 20–24 आयु वर्ग की 10 प्रतिशत, 25–29 आयु वर्ग की 1 प्रतिशत छात्राएँ हैं जैन छात्राएँ मात्र 21 प्रतिशत है जिसमें 20 से कम की 4 प्रतिशत, 20–24 की 16 प्रतिशत, 25–29 आयु वर्ग की 1 प्रतिशत छात्राएँ सम्मिलित है।

तालिका क्रमांक : 3.4

शिक्षा के आधार पर निर्दश का वर्गीकरण

जाति	शोध	स्नातक				स्नातकोत्तर				कुल
		वि0[1]	वा0[2]	कला	त0[3]	वि0[1]	वा0[2]	कला	त0[3]	
उच्च	5%	12%	2%	2%	2%	13%	7%	2%	11%	56%
अ.ज.जा.	2%	1%				2%		1%		6%
अनु. जा		1%				1%				2%
पि.वर्ग	1%	3%		2%		5%		3%	1%	15%
जैन	2%	6%	2%	2%	1%	5%	2%	1%	1%	21%
कुल	10%	23%	4%	5%	3%	26%	9%	7%	13%	100%

तालिका क्रमांक :3.4 में 100 निदर्शित छात्रओं को शिक्षा के आधार पर वर्गीकृत किया है। उक्त तालिका से स्पष्ट होता है उच्च जाति के कुल 56 प्रतिशत छात्राओं में 5 प्रतिशत शोध छात्राएँ है, 12 प्रतिशत स्नातक विज्ञान संकाय की छात्राएँ है, 2 प्रतिशत स्नातक वाणिज्य संकाय की, 2 प्रतिशत कला संकाय की तथा 2 प्रतिशत तकनीकि संकाय की छात्राएँ है। अ. ज. जा. की कुल 6 प्रतिशत छात्राओं में से 2 प्रतिशत शोध छात्राएँ है, 1 प्रतिशत स्नातक विज्ञान संकाय की छात्राएँ है, 2 प्रतिशत स्नातकोत्तर विज्ञान संकाय की तथा 1 प्रतिशत

तालिका क्रमांक : 3.5

परिवार के सदस्यों के आधार पर निर्दश का वर्गीकरण

जाति	2–3	4–5	5 से अधिक	कुल
उच्च	5	31	20	56
अ.ज.जा.	2	3	1	6
अ.जा		2		2
पिछड़ावर्ग		8	7	15
जैन	1	14	6	21
कुल	8	58	34	100

तालिका क्रमांक 3.5 में निदर्शित छात्राओं के पारिवारिक सदस्यों के संख्या के आधार पर वर्गीकृत किया है। निदर्शित छात्राओं में 56 प्रतिशत छात्राएँ उच्च जाति की है जिनके परिवार के सदस्यों की संख्या इस प्रकार है– 2–3 सदस्यों का प्रतिशत 5 है, 4–5 सदस्यों का 31 प्रतिशत तथा 5 से अधिक सदस्यों का प्रतिशत 20 है। अनु. ज. जा. की छात्राओं की संख्या 6 प्रतिशत है जिनके परिवार के सदस्यों की संख्या इस प्रकार है– 2–3 सदस्यों का प्रतिशत 2 है, 4–5 सदस्यों का प्रतिशत 3 है तथा 5 से अधिक सदस्यों की संख्या वाली छात्राओं का प्रतिशत 1 है। अ. जा. की छात्राओं की संख्या 2 है और 4–5 सदस्यों का प्रतिशत पूर्णतः 2 है। पिछड़ा वर्ग की कुल छात्राएँ 15 है जिनके परिवार के सदस्यों की संख्या इस प्रकार है– 4–5 सदस्य 8 प्रतिशत है तथा 5 से अधिक सदस्य 7 प्रतिशत है। जैन की कुल संख्या 21 है जिनके परिवार में 2–3 सदस्य 1 प्रतिशत, 4–5 सदस्य 14 प्रतिशत

तथा 5 से अधिक सदस्य 6 प्रतिशत है।

इस प्रकार कुल 100 छात्राओं में से 2–3 सदस्यों का प्रतिश 8 है, 4–5 सदस्यों का 58 प्रतिशत है और 5 से अधिक सदस्यों का प्रतिशत 34 है।

तालिका क्रमांक : 3.6

परिवार के सदस्यों का लैंगिक आधार पर निर्दश का वर्गीकरण

जाति	पुरुष	स्त्री	कुल
उच्च	109 (21.75%)	153 (30.53%)	262 (52.29%)
अ.ज.जा.	12 (2.39%)	20 (3.99%)	32 (6.38%)
अ.जा	4 (0.79%)	6 (1.19%)	10 (1.99%)
पिछड़ा वर्ग	43 (8.58%)	55 (10.97%)	98 (19.56%)
जैन	36 (7.18%)	63 (12.57%)	99 (19.76%)
कुल	204 (40.71%)	297 (59.28%)	501 (100%)

तालिका क्रमांक 3.6 को 100 निदर्शित छात्रओं के पारिवारिक सदस्यों को लैंगिक आधार पर वर्गीकृत किया है। विभिन्न जाति एवं धर्म की निदर्श के पारिवारिक सदस्यों में उच्च जाति के कुल सदस्य 262 (52.29%) है जिसमें 109 (21.75%) पुरुष तथा 153 (30.53%) स्त्रियाँ है। अ.ज.जा. के सदस्यों की कुल संख्या 32 (6. 38%) है जिसमें 12 (2.39%) पुरुष तथा 20 (3.99%) स्त्रियाँ है। अ. जा के सदस्यों की कुल संख्या 10 (1.99%) है जिसमें 4 (0.79%) पुरुष तथा 6 (1.19%) स्त्रियाँ

है पिछड़ा वर्ग के सदस्यों की कुल संख्या 98 (19.56%) है जिसमें 43 (8.58%) पुरुष तथा 55 (10.97%) स्त्रियाँ है। जैन सदस्यों की कुल संख्या 97 (19.76%) है जिसमें 38 (7.18%) पुरुष तथा 63 (12.57%) स्त्रियाँ है।

इस प्रकार कुल निदर्श 100 परिवारों के सदस्यों की संख्या 50 (99.99%) है। जिसमें से 204 (40.71%) पुरुष तथा 297 (59.28%) स्त्री लिंग के सदस्य है।

तालिका क्रमांक : 3.7

परिवार के सदस्यों का आयु के आधार पर निर्दश का वर्गीकरण

जाति	20 से कम	20–29	30–39	40–49	50 से अधिक	कुल
उच्च	58 (11.57%)	70 (13.97%)	34 (6.78%)	55 (10.97%)	45 (8.98%)	262 (52.29%)
अ.ज.जा.	2 (0.39%)	15 (2.99%)	3 (0.59%)	7 (1.39%)	5 (0.99%)	32 (6.38%)
अ.जा	3 (0.59%)	3 (0.59%)	1 (0.19%)	3 (0.59%)		10 (1.99%)
पिछड़ा वर्ग	17 (3.39%)	37 (7.38%)	8 (1.59%)	16 (3.19%)	29 (5.78%)	98 (19.56%)
जैन	25 (4.99%)	31 (6.18%)	15 (2.99%)	20 (3.99%)	6 (1.19%)	99 (19.76%)
कुल	105 (20.95%)	156 (31.13%)	61 (12.17%)	101 (20.15%)	78 (15.56%)	501 (100.%)

तालिका क्रमांक : 3.7 में 100 निदर्शित छात्राओं के पारिवारिक सदस्यों को विभिन्न आयु वर्गों में वर्गीकृत किया है। विभिन्न धर्म व जाति की आयु के आधार पर पारिवारिक सदस्यों का प्रतिशत इस प्रकार है–

उच्च जाति के कुल सदस्य 262 है जिनकी आयु प्रतिशत इस प्रकार

है 20 से कम के 58 (11.57), 20–29 के 70 (13.97) 30–39 के 34 (6. 78) 40–49 (10.97) 50 से अधिक 45 (8.98) सदस्य है। अ.ज.जा. के कुल सदस्य 32 है जिनमें 20 से कम आयु के 2 (0.39), 20–29 की 15 (20. 99), 30–39 के 3 (0.59) 40–49 के 7 (1.39) तथा 50 से अधिक आयु के सदस्यों की संख्या 5 (0.99) है। अ.ज.जा. के कुल सदस्य 10 है जिनमें 20 के कम आयु के 3 (0.59) 20–29 के 3 (0.59) 30–39 के 1 (0.19) 40–49 के आयु के 3 (0.59) सदस्य है। पिछड़ा वर्ग के कुल सदस्य 98 है जिनमें 20 से कम आयु के 17 (3.39) 20–29 के 37 (7.38) 30–39 के 8 (1.59) 40–49 के 16 (3.19) सदस्य है तथा 50 से अधिक आयु के सदस्यों की संख्या 19 (5.78) सदस्य है। जैन सदस्यों की कुल संख्या 99 है जिनमें 20 से कम आयु के 25 (4.99) 20–29 के 31 (6.18) 30–39 के 15 (2.99) 40–49 की आयु के 20 (3.99) सदस्य है तथा 50 से अधिक आयु के सदस्यों की संख्या 6 (1.19) है।

इस प्रकार कुल निदर्श 100 परिवारों के सदस्यों की संख्या 501 (100%) है। जिनमें से 105 (20.95%) 20 वर्ष के कम आयु के सदस्य है। 156 (31.13%) 20–29 वर्ष की आयु के सदस्य है। 61 (12.17%) 30–39 की आयु के सदस्य है। 101 (20.15%) 30–49 की आयु के सदस्य है। 78 (15.56%) 50 से अधिक आयु के समूह के सदस्य है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1– ''विश्वविद्यालयीन छात्राओं के स्त्री स्वातंत्र्य सम्बन्धी दृष्टिकोण का समाजशास्त्रीय विश्लेषण'', लघु शोध प्रबन्ध, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर के सन्दर्भ में, कु. नीलम यादव, 2001, पृ0 33

2– जी. के अग्रवाल, भारतीय सामाजिक संस्थाएँ, पृ0 214

3– ''विश्वविद्यालयीन छात्राओं के स्त्री स्वातंत्र्य सम्बन्धी दृष्टिकोण का समाजशास्त्रीय विश्लेषण'', लघु शोध प्रबन्ध, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर के सन्दर्भ में, कु. नीलम यादव, 2001, पृ0 34
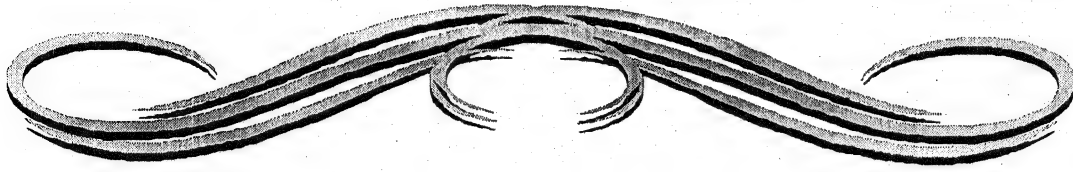
अध्याय चतुर्थ

अध्ययन इकाईयों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति

चतुर्थ अध्याय

उत्तर वैदिक काल तक समाज स्पष्ट रूप से चार वर्णों में विभाजित हो चुका था। ये चार वर्ण थे–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र। इस काल में वर्ण व्यवस्था का आधार कर्म पर आधारित न रहकर जाति पर आधारित हो गया। किन्तु इस काल में जाति प्रथा उतनी कठोर नहीं थी जितनी की सूत्रों के काल में। अस्पृश्यता की भावना का उदय नहीं हुआ था। उपनिषदों में उल्लिखित सत्यकाम, जाबालि तथा जनश्रुति की कथाओं से स्पष्ट है कि शूद्र दर्शन के अध्ययन से वंचित नहीं थे। वृहदाण्यक तथा छान्दोग्य उपनिषदों में कहा गया है कि ब्रह्मलोक में सभी समान हैं। अतः चाण्डाल भी यज्ञ का अवशेष पाने का अधिकारी हैं उत्तर वैदिक काल में यज्ञोपवीत संस्कार का अधिकार शूद्रों को नहीं था। 'तैत्तिरीय ब्राह्मण' के उल्लेख के आधार पर ब्राह्मण सूत का, क्षत्रिय सन का और वैश्य ऊन का यज्ञोपवीत धारण करता था। ब्राह्मणों का उपनयन संस्कार बसन्त ऋतु, क्षत्रियों का ग्रीष्म ऋतु एवं वैश्यों का शीत ऋतु में होने का विवरण मिलता है।

'ऐतरेय ब्राह्मण' में सर्वप्रथम चारों वर्णों के कर्मों के विषय में विवरण मिलता है। ब्राह्मणों को 'अदायी' दान लेने वाला, सोमपायी एवं स्वेच्छा से भ्रमणशील कहा गया। क्षत्रिय अथवा राज भूमि का मालिक, प्रजा का सेवक एवं देश का रक्षक होता था। प्रायः ब्राह्मणों और क्षत्रियों के बीच श्रेष्ठता हेतु प्रतियोगिता होती रहती थी।

'शतपथ ब्राह्मण' में एक स्थान पर क्षत्रियों को ब्राह्मण से श्रेष्ठ बताया गया है। कुछ क्षत्रिय राजाओं ने ज्ञानार्जन कर ब्राह्मणों के समकक्ष स्थान प्राप्त किया। इनमें मुख्य हैं– जनम, जाबालि, अश्वपति, प्रवाहन आदि। वैश्य को अन्यस्यबलिकृत अर्थात् दूसरे को कर देने वाला, कृषि, व्यापार एवं उद्योग धन्धें में लगे रहने वाला कहा गया है। शतपथ ब्राह्मण में शूद्रों के सोमयज्ञ में भाग लेने की बात कही गयी है।

उत्तर वैदिक काल में शूद्रों के अन्य वर्ग थे चांडाल, निषाद्, पौल्कस, मागध, उग्र, वेदहव, आवोगन आदि। शतपथ ब्राह्मण एवं काठक संहिता में गोविकर्तन, तक्ष (बढ़ई) एवं रथकार (रथ बनाने वाले) को भी रत्नियों की श्रेणी में रखा गया है। शिल्पियों में संभवतः 'रथकार' को यज्ञोपवीत संस्कार का अधिकार मिला हुआ था। उपजाति के रूप में उत्तर वैदिक काल में व्यापारी, लोहार, रथ निर्माता, बढ़ई, चमार, कर्मकार, मल्लाह का उल्लेख मिलता है। उत्तर वैदिक काल में जाति परिवर्तन करना कठिन हो गया था।

इस काल में ही सर्वप्रथम 'गोत्र व्यवस्था' प्रचलन में आयी। 'गोत्र', जिसका शाब्दिक अर्थ होता है 'गोष्ठ' वह स्थान था जहाँ समूचे कुल के गोधन को एक साथ रखा जाता था। परन्तु गोत्र का यह अर्थ कुछ समय के वाद एक मूल पुरुष के वंशज से हो गया। एक ही गोत्र के लोगों के परस्पर विवाह पर प्रतिबन्ध लग गया।

गुप्त काल में जाति प्रथा उतनी जटिल नही रह गयी थी जितनी परवर्ती कालों में। ब्राह्मणों ने अन्य जातियों के व्यवसाय को अपनाना आरम्भ कर

दिया था। मृच्छकटिकम् के उल्लेख से यह प्रमाणित होता है कि चारुदत्त नामक ब्राह्मण वाणिज्य का कार्य करता था। उसे ब्राह्मण का 'आपद्धर्म' कहा गया है। इसके अतिरिक्त कुछ ब्राह्मण राजवंश जैसे वाकाटक एवं कदम्ब का उल्लेख मिलता है। गुप्त काल के पूर्व ब्राह्मणों केवल छः कार्य अध्ययन, अध्यापन, पूजा–पाठ, यज्ञ कराना, दान देना और दान लेना माना जाता था। ब्राह्मणों के अतिरिक्त कुछ वैश्य शासक जैसे हर एवं सौराष्ट्र, अवन्ति, मालवा के शूद्र शासकों आदि के विषय में भी जानकारी प्राप्त होती है। स्कन्दगुप्त के इंदौर ताम्रपत्र अभिलेख में कुछ क्षत्रियों द्वारा वैश्य का कार्य करने का उल्लेख है। ह्वेनसांग ने क्षत्रियों के कर्मनिष्ठा की प्रशंसा की है तथा उन्हें निर्दोष, सरल, पवित्र सीधा और मितव्ययी कहा है। उसके अनुसार क्षत्रिय राजा की जाति थी। कुछ गुप्तकालीन ग्रंथों में ब्राह्मणों को निर्देशित किया गया था कि वे शूद्रों द्वारा दिये गये अन्न को ग्रहण न करें। पर बृहस्पति ने संकट के क्षणों में ब्राह्मणों द्वारा शूद्रों और दासों से अन्न ग्रहण करने की आज्ञा दी। इस काल मे शूद्रों द्वारा सैनिक वृत्ति अपनाने के भी प्रमाण मिलते है।

गुप्तोत्तर काल में जाति के रूप मं कायस्थों की उत्पत्ति एक महत्वपूर्ण सामाजिक घटना है। सर्वप्रथम कायस्थों का उल्लेख याज्ञवल्क्य स्मृति में मिलता है। जबकि जाति के रूप में कायस्थों का उल्लेख सर्वप्रथम ओशनम्स्मृति में मिलता है। सम्भवतः इनका मुख्य कार्य था– गणक एवं लेखक के रूप में भूमि व राजस्व से सम्बन्धित दस्तावेजों को सुरक्षित रखना। इन्हें

कायस्थ, करणिक, पुस्तपाल, अक्ष पाटलिक, दीविर लेखक आदि कहा जाता था।अन्तिम रूप से सब कायस्थ जाति में सिमट गये थे। कुछ ब्राह्मण ग्रंथों में कायस्थों को शूद्र भी कहा गया है।

भारत में समाज और धर्म, परिवर्तन के कई दौरों से गुजरें हैं। उजाले और अंधेरें के लम्बे इतिहास में यदि प्रगति, पुनरुत्थान और सुधार के दौर आये हैं तो अवनति, विघटन, और ह्रास के युग भी आये।

"अंग्रेजों के प्रभुत्व के साथ ही भारत में राजनीतिक अव्यवस्था का जो दौर शुरू हुआ उससे समाज को अस्थिरता और असुरक्षा के दौर से गुजरना पड़ा और उसके अंदर एक प्रकार की जड़ता आ गई। जो कमजोर थे उन पर बलवान अपनी धौंस जमातें, गरीबों का दमन हो रहा था, राह चलतों को लूटा जा रहा था और सभी ओर अराजकता का तांडव नृत्य हो रहा था।"[1]

उस समय निःसन्देह भारतीय समाज राजनीतिक घटनाओं के प्रति उदासीन रहा और आगे कठिन राजनीतिक समय के प्रभावों को उन्होंने भाग्यवादी बनकर झेला। उनकी इस उदासीनता के बड़े दुर्भाग्यपूर्ण परिणाम निकले। भारतीय समाज और भी छोटे दायरे में सिमट गया और उनका सामाजिक जीवन अधिकाधिक जड़ और निष्क्रिय बन गया। सामाजिक व्यवस्थाओं, परम्पराओं और प्रभावों ने कठोर तथा ठोस रूप धारण करना शुरू कर दिया। इसका एक मुख्य कारण था धर्मों का और अधिक रूढ़िवादी हो

जाना।'' समाज का धार्मिक दृष्टिकोण लकीर का फकीर बन गया। धर्म का मतलब था कड़े नियम और प्रतिबन्ध, यानी क्या खाओ और क्या न खाओ, किसे छुओ और किस से दूर रहो, किस तरह के बर्तन में कहाँ खाना पकाओ या खाओ'' धार्मिक शुद्धता बनाये रखने के लिये लोग एक दूसरे के प्रति सामाजिक रूप से असहिष्णु हो गये थे।

एकेश्वरवाद और 'सर्व खल्विंद ब्रह्म' के सिद्धान्त वाले सर्वेश्वरवाद में विकास और आस्था रखने वाले लोग थे, लेकिन अधिकांश लोग बलि, झाड़–फूँक, जादू–टोने विभिन्न पूजाओं और तांत्रिक क्रियाओं आदि में विश्वास रखते थे।

दूसरी तरफ ''17वीं शताब्दी में हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच उपजा वैमनस्य 20 वीं शती के मध्य तक चलता रहा। दोनों प्रमुख सम्प्रदायों को सामाजिक सांस्कृतिक जीवन में आपसी सद्भाव के स्थान पर एक दूसरे से अलग–थलग रहने की प्रवृत्ति उत्पन्न हो गई। मुस्लिम समाज अपनी ही रूढ़ियों के दायरें में सिमट गया।''[2]

जब धर्मों ने आंतरिक सत्य से अधिक बाह्यरूपों को महत्त्व देना शुरू किया तो धार्मिक अंधविश्वास, सामाजिक जीवन के सभी पहलुओं पर छाने लगे। पंडित वर्ग धर्मग्रन्थ के आध्यात्मिक मूल्यों को महत्त्व नहीं देते थे। लेकिन समाज उनक आदेशों का पालन करता था।'' ये वर्ग किसी भी सामाजिक बुराई को शास्त्रोचित बताकर इसे धार्मिक कार्य का रूप दे सकते थे। बाल–बध

ा, बाल–विवाह, बहु–विवाह, विधवाओं को जीवित जला देना आदि अन्य सामाजिक बुराईयों को शास्त्रोचित और धार्मिक क्रियायें करार दे दिया गया। इसी प्रकार जात–पाँत, अस्पृश्यता, महिलाओं को पर्दे में रखने और गुलाम प्रथा जैसी सामाजिक प्रणालियाँ शास्त्रोंचित समझी गई।" इसलियें उन्हें विधि ा सम्मत और गौरव की बात मान लिया गया।

प्रारम्भ में अंग्रेजों का मानना यह था कि भारत पर शासन करने के लिये भारतीयों से सामाजिक दूरी बनाये रखना आवश्यक है। इस कारण अंग्रेजों ने भारतीय दुर्व्यवस्था को दूर करने का कोई प्रयत्न नहीं किया। लेकिन ऐसी विषम परिस्थितियों में भी कुछ ऐसी ऐतिहासिक शक्तियाँ सक्रिय थीं जिसमें भविष्य में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आने वाले थे। ये शक्तियाँ दो प्रकार की थी। पहली शक्ति पश्चिम की आधुनिक संस्कृति के भारत पर प्रभाव से अवतरित हुई। दूसरी शक्ति का जन्म इस सम्पर्क के खिलाफ भारतीय जनता की प्रतिक्रिया से हुआ।" इन दोनों शाक्तियों के सम्मिलित प्रभाव से 19 वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में भारत के सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन में एक ऐसे आन्दोलन का श्रीगणेश हुआ और सम्पूर्ण भारत में एक ऐसी जागृति आई जिसे विद्वानों ने भारतीय पुनर्जागरण के नाम से पुकारा है।"

अंग्रेज व्यापारियों के साथ आये धर्म प्रचारकों के कारण भारतीय पुनर्जागरण को काफी बल मिला। पहला अनेक प्रयत्नों से देश में अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार हुआ जिससे पाश्चात्य ज्ञान एवं विचार भारतीयों तक पहुँचने लगे और उनमें जागरण की चिन्तनधारा फूटने लगी। दूसरे जब ईसाई

मिशनरियों ने भारतीयों को ईसाई बनाना शुरू किया तो इसके विरुद्ध भारतीय समाज की तीखी प्रतिक्रिया हुई और सभी अपने धर्मों की रक्षा के प्रयत्न में जुट गये।"[3]

भारतीय पुनर्जागरण लाने में उन कतिपय यूरोपीय विद्वानों का भी हाथ था जो भारत की प्राचीन संस्कृति की उपलब्धियों से प्रभावित थे। वे चाहते थे कि भारत का वह गौरवमय अतीत पुनः वापस आये और भारत का सामाजिक एंव सांस्कृतिक विकास हो। ऐसे यूरोपीय विद्वानों में विलियम जोन्स का नाम उल्लेखनीय है। उन्होंने 1784 ई० में कलकत्ता में 'एशियाटिक सोसायटी' की स्थापना की। इस सोसायटी के विद्वानों ने खोज निकाला कि प्राचीन काल में भारत ने एक ऐसी महान सभ्यता को जन्म दिया था जो संसार की महानतम् सभ्यताओं में से एक थी।"

19 वीं शती के पूर्वार्द्ध में अंग्रेजी शासन की अपनी कुछ आवश्यकताओं के चलते अंग्रेजो ने भारतीयों के सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में अपनी प्रारम्भिक अहस्तक्षेप की नीति को धीरे–धीरे समाप्त करना शुरू किया। जवाहरण लाल नेहरू ने अपनी पुस्तक 'भारत एक खोज' में लिखा–भारत के प्रतिक्रियावादियों के साथ इस स्वाभाविक गठजोड़ के कारण ब्रिटिश शासन अनेक बुरी प्रथाओं और कर्मकाण्डों का रक्षक तथा सार्थक बन गया। हालांकि वह इसकी निन्दा करता है। समाज सुधार के सम्बन्ध में "अंग्रजों की स्थिति' एक तरफ कुँआ दूसरी तरफ खाई, वाली थी।" अंग्रेज इस सम्बन्ध में पूरी

तटस्थ भी नहीं रहे, बल्कि सामाजिक बुराइयों को संरक्षित भी किया। राजनीतिक लाभ के लिये जातिवाद तथा साम्प्रदायिकता को प्रोत्साहित करना उनक़ी इसी नीति का परिणाम था।

समाज जैसे जीवित अवयव में 'पुनर्जीवन' का सवाल नहीं उठता अतः उसकी उन्नति के लिये 'सुधार ही एक मात्र विकल्प है।"[4] अतः सुधारों के सम्बन्ध में विचार में परिवर्तन आवश्यक हो गया। अब अतीत पर अनावश्यक निर्भरता के बजाय मानव, विवेक, तर्क और समसामयिक उपयोगिता को ही सुधारों का आवश्यक आधार माना गया।

सबसे पहले सामाजिक सुधार की जागृति बंगाल से प्रारम्भ हुई। सामाजिक सुधारकों ने सुधार के लिये कई प्रणालियों का प्रयोग किया। प्रथम आंतरिक सुधार प्रणाली की शुरूआत राजा राम मोहन राय द्वारा की गई। इस प्रणाली के सुधारकों का यह विश्वास था कि किसी भी सुधार को प्रभावशाली होने के लिये यह आवश्यक है कि वह समाज के अन्दर से ही हो अर्थात् लोगों के अंदर जागरूकता की भावना पैदा हो। यह कार्य सुधारकों ने साहित्य प्रकाशन द्वारा तथा विभिन्न सामाजिक समस्याओं पर परिचर्चा का आयोजन इत्यादि करके किया। राजा राममोहन राय ने सती प्रथा (1829) के विरुद्ध प्रचार किया। इसी प्रकार ईश्वरचन्द्र विद्यासागर द्वारा विधवा विवाह तथा मालावारी द्वारा विवाह के न्यूनतम आयु बढ़ाने का प्रयास आदि कार्य किये गये।"

दूसरी प्रणाली कानूनी हस्तक्षेप द्वारा प्रभाव लाने के विश्वास पर आध
ारित थी। बंगाल के केशव चन्द्र सेन, महाराष्ट्र के रानाडे, तथा आंध्र प्रदेश में वीरेन्द्र लिंगम जैसे सुधारकों का मानना था कि सुधार के प्रयास तब तक सफल नहीं हो सकते जब तक कि उन्हें राज्य का कानूनी सहयोग प्राप्त न हो। इसलिये इन नेताओं ने विधवा विवाह, विवाह की न्यूनतम आयु बढ़ाना जैसे सुधारों के लिये कानूनी सहयोग की माँग की।

तीसरी प्रणाली प्रतीकात्मक बदलाव लाने की थी। इस प्रणाली से सुध
ारात्मक प्रयास करने वाले लोगों ने परम्पराओं रूढ़ियों आदि का बहिष्कार किया और समाज की पुरानी मान्यताओं के खिलाफ विद्रोह किया। इन सुध
ारकों पर पश्चिमी विचारधारा का बहुत अधिक प्रभाव था। उन्होंने सामजिक समस्याओं के प्रति समझौता न करने वालों की क्रान्तिकारी प्रवृत्ति का प्रदर्शन किया।

यह प्रवृत्ति हेनरी विवियन डेरोजियों के यंग बंगाल आंदोलन तक ही सीमित थी। इनका नारा था– वह जो तर्क नहीं करेगा, धर्मान्ध है, वह जो नहीं कर सकता, वेवकूफ है और जो नहीं करता गुलाम है।''

चौथी प्रवृत्ति सामाजिक कार्यों के द्वारा सुधार की थी, जैसे ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन, अलीगढ़ आन्दोलन की गतिविध
ियों से स्पष्ट है। इन लोगों का मानना था कि बुद्धिजीवियों के बौद्धिक चिंतन का तब तक कोई अर्थ नहीं है। जब तक कि उसका व्यवहार में प्रयोग

न हो। जैसे प्रो0 कर्वे ने विधवा विवाह की वकालत के लिये प्रवचनों तथा किताबों का प्रकाशन करके ही खुश नहीं थे, बल्कि उन्होंने अपने आपको विधवा से विवाह कर इस समस्या से एकरूप कर लिया।

20वीं शताब्दी में पश्चिमी शिक्षा की प्रगति और राजनीतिक चेतना बढ़ती जाने से देश में एक नया वातावरण पैदा हो गया। सामाजिक समस्याओं को समुचित महत्त्व देने के काम में समाचार–पत्रों ने भी लाभकारी योग दिया। जिन विधान–मण्डलों में भारतीय निर्वाचित होकर पहुँचे वे जन आवश्यकताओं पर विचार के मंच बन गये और अंत में स्वाधीनता प्राप्ति के साथ ही सामाजिक समस्याओं पर पूरी तरह नये दृष्टिकोण से देखा जाने लगा।

1893 में कर्वे ने पूना में एक विधवा आश्रम स्थापित किया। जिसमें विधवाओं को जीविकोपार्जन का साधन प्रदान किया जाता था। 1906 में कर्वे के सहयोग से बम्बई में भारतीय महिला विश्वविद्यालय स्थापना की।[5]

1872 के Native marriage act के प्रभावशाली न होने के कारण पारसी सुधारक बी. एम. मालाबारी के प्रयत्नों के फलस्वरूप 1891 में Age of condrny act पास हुआ जिसमें 12 वर्ष से कम आयु की कन्याओं के विवाह पर रोक लगा दी गई।" भारत सरकार ने बाल–विवाह के विरुद्ध सबसे महत्त्वपूर्ण कदम 1930 में उठाया। उस वर्ष हरविलास शारदा के प्रयत्नों से बाल–विवाह निरोधक कानून पास हुआ, जिसे 'शारदा एंक्ट' के नाम से जाना जाता है।

स्त्रियों में शिक्षा के प्रसार के लिये प्रायः सभी तात्कालिक सुधार

आन्दोलनों ने प्रयत्न किया। स्त्री–शिक्षा के प्रसार में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की देन महान थी। वे बंगाल के कम से कम 35 बालिका विद्यालयों से सम्बन्धित थे। 1879 में बैथुन कालेज प्रथम महिला कांलेज बना यही पर 1883 में कादम्बनी गांगुली और चन्द्रमुखी बोस भी पहली स्नातिका बनी।

जब बीसवीं शताब्दी में राष्ट्रीय आन्दोलन ने जोर पकड़ा तो इससे नारी मुक्ति आन्दोलन को काफी बल मिला। स्वतन्त्रता संग्राम में औरतों ने सक्रिय रूप से भाग लिया। यहाँ तक कि वे क्रान्तिकारी आन्दोलनों में भी सरीक हुई। महिलाओं ने किसान आन्दोलनों और ट्रेड यूनियन आन्दोलनों में भी भाग लिया और 1927 में 'अखिल भारतीय महिला सभा' की स्थापना एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। 1937 के हिन्दू महिला सम्पत्ति अधिकार कानून 18 में स्त्रियों को कुछ निश्चित परिस्थितियों में आर्थिक दर्जा प्रदान कराने का प्रयत्न था।" देश में नारी आन्दोलन के उद्‌भव और विकास से नारी मुक्ति–आन्दोलन की प्रक्रिया बहुत तेज हो गई। इस तीव्रता को बढ़ाने के लिये गाँधी जी, नेहरू सरदार बल्लभ भाई पटेल एनीबेसेण्ट, सरोजनी नायडु, आदि लोगों ने बहुत सहयोग किया।

1950 के भारतीय संविधान ने महिलाओं और पुरुषों को बराबरी का दर्जा दिया। 1956 के हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम ने लड़की को पिता की सम्पत्ति का उसके पुत्र के साथ बराबरी हकदार करार किया। संविधान ने पुरुष और स्त्री दोनोंके लिये बहु विवाह निषिद्ध कर दिया। दहेज प्रथा को

भी समाप्त करने का प्रयत्न किया गया है।" हालाकिं इस दिशा में अब तक बहुत सफलता नहीं मिली है।

अंग्रेजी प्रशासनिक व्यवस्था के साथ भारत में कानून का शासन और कानून के सम्मुख समानता के सिद्धान्त का प्रवेश हुआ। इससे सामाजिक समानता को बल मिला, जातिवाद और असमानता की भावना को धक्का लगा। राष्ट्रीय अन्दोलन जब प्रारम्भ हुआ तो स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये जातीय भेद भाव की समाप्ति और व्यापक सामाजिक समता अनिवार्य शर्त बन गये। इस प्रकार शुरू से ही राष्ट्रीय कांग्रेस ने सभी जातिगत विशेषाधिकारों और छुआछूत का विरोध किया तथा सभी भारतीयों के लिये समान नागरिक अधिकार, जाति–धर्म लिंग के भेद–भाव के बिना सभी को अपने व्यक्तित्व के विकास के लिये समान अधिकार एवं स्वतंत्रता की माँग की।"

इस दिशा में विशेषकर छुआछूत समाप्त करने और दलित एवं अछूत वर्ग के उद्धार के लिये गाँधी ने भी भरसक प्रयत्न किया। उन्होंने अछूतों को हरिजन अर्थात् भगवान का आदमी और कालिपराज या अश्वेतजन को उजली पराज/ रानी पराज कहा। उन्होंने उनकी भलाई के लिये हरिजन नामक एक साप्ताहिक पत्र निकाला और 'हरिजन सेवक संघ' की स्थापना की।

सामाजिक जाग्रति और शिक्षा के प्रसार से नीची जातियों में भी जाग्रति आई। उन्हें मौलिक मानव अधिकारों का ज्ञान हुआ और वे स्वयं अपने अधि

ाकारों की रक्षा के आगे आये। ऐसे आन्दोलन के नेताओं में डॉ0 भीम राव अम्बेडकर का नाम उल्लेखनीय है। वे आजीवन जाति प्रथा के खिलाफ विशेषकर ऊँची जातियों की नीची जातियों पर मनमानी के विरूद्ध लड़ते रहे। अपने उद्दश्यों की प्राप्ति के लिये उन्होंने 'ऑल इण्डिया डिं प्रेस्ड क्लास फैडरेशन' की स्थापना की। दक्षिण भारत में जातीय कट्टरता और छुआछूत अपनी चरम सीमा पर था। 1920 के बाद वहाँ गैर–ब्राह्मण जातियों ने एक 'सेल्फ रेसपेक्ट आन्दोलन' चलाया और अपनी स्थिति सुधारने की कोशिश की।. मंदिर में प्रवेश और ऐसे ही अन्य निषेधों के खिलाफ उन्होंने अनेक सत्याग्रह किये। जिनमें प्रमुख श्री नारायण गुरु थे उनका प्रमुख नारा 'मानव के लिये एक धर्म, एक जाति, तथा एक ईश्वर।'' ज्योतिराव फुले ने 1873 में सत्य शोधक समाज की स्थापना की उनका उद्देश्य था कि समाज के कमजोर वर्ग को सामाजिक न्याय दिला सके।[6]

इन सबके बावजूद भी स्वतन्त्रता प्राप्ति तक इस दिशा में सरकार का सहयोग न मिलने के कारण जातीय कट्टरता एवं अस्पृश्यता का अंत नहीं हो पाया। भारत की स्वाधीनता के साथ ही सदियों से चली आ रही भयंकर सामाजिक बुराई अस्पृश्यता को तुरन्त समाप्त करने के लिये कदम उठाये गये। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 17 में अस्पृश्यता खत्म की जाती है और किसी भी रूप में इसके पालन की मनाही की जाती है। 1950 के जातीय अयोग्यता उन्मूलन कानून 21 में व्यवस्था है कि जाति से बाहर कर दिये

जाने पर किसी भी व्यक्ति की सम्पत्ति छीनी नहीं जा सकती या उसे उत्तराधि
ाकार से वंचित नहीं किया जा सकता।

सामाजिक कानूनों की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि आम तौर पर समाज से किस प्रकार का सहयोग मिल रहा है। यह सहयोग किस हद तक मिलेगा। यह इस बात पर निर्भर करेगा कि लोगों का मानसिक और शैक्षणिक विकास कितना हुआ है। 20वीं शताब्दी के बाद के वर्षों में सामाजिक उदारता में काफी तेजी हुई है, लेकिन आंतरिक रूप से सामाजिक चेतना इतनी बढ़ गई है कि अब ये प्रणालियाँ और प्रथायें बेकार हो चुकी हैं।

1947 के बाद समाज का ढाँचा पूर्णतः विश्रृंखलित था। सभी जातियाँ परस्पर विद्वेष की आग में जल रहीं थीं। एक दूसरे की बुराई करना ही उनका उद्देश्य था। दृष्टिकोण की यह संकीर्णता उन्हें निरन्तर अधोगति की ओर ले जा रही थी। ब्राह्मण अपने अतीत गौरव गर्व में चूर, देश में वर्तमान अन्य जातियों को हेय दृष्टि से देखते थे। इनसे समाज में व्याप्त छुआछूत और अन्धविश्वास की भावना को वृद्धि–प्रोत्साहन मिलता था। ये पुरानी परम्पराओं और रूढ़ियों के पोषक एवं समर्थक थे। इतर जातियों को अपने से निम्न और पतित समझने के कारण इनके अत्याचार बराबर उन पर बढ़ते ही जा रहे थे इससे अन्य जातियों में बड़ा असन्तोष फैल रहा था। ब्राह्मण ही उस समय समाज के कर्णधार थे। सामाजिक नीतियों का निर्धारण करना

उनके ही हाथ में था। शिक्षा दीक्षा की ओर उनका ध्यान नहीं था, केवल ब्राह्मण कुल में जन्म लेना ही उनके लिये सबसे बड़े स्वाभिमान और श्रेष्ठता की बात थी। इनकी इसी विभेद नीति के कारण अन्य सभी निम्न जातियाँ अपने–अपने कार्यों के प्रति उदासीन होती जा रहीं थीं। ब्राह्मण नवीनता के प्रतिद्वन्द्वी थे वे अपने प्राचीन गुरुत्व और पापाचार के संरक्षण में व्यस्त थे। क्षत्रिय अपने वीरत्व को भूल विसार, विदेशी शासकों की चाटुकारिता करने में ही अपनी भलाई देख रहे थे। वैश्यों के व्यापार में भी अंग्रेजों की शोषण नीति के कारण अब कोई लाभ नहीं रह गया था।

ब्राह्मणों की संकीर्ण मनोवृत्ति के कारण सामाजिक उन्नति में बड़ी बाध ा पड रही थी। कोई भी व्यक्ति स्वेच्छया समुद्र यात्रा नहीं कर सकता था। यदि कोई नियम को तोड़ समुद्र यात्रा करता भी था तो उसे समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता था। इससे अन्य देशों से भारतीयों का सम्बन्ध स्थापित नहीं हो पाता था। धर्मीयता और जातीयता के कारण समाज में एक क्रान्ति सी उत्पन्न हो गयी थी। सम्पूर्ण हिन्दू समाज दो वर्गों में विभक्त था उच्चवर्ग और निम्न वर्ग। उच्चवर्ग के लोग जातीयता और प्राचीनता के शोषक–समर्थक थे, निम्न वर्ग के लोग इनका कड़ा विरोध कर रहे थे। आपसी एकता और संगठन बिलकुल समाप्त हो गया था। चारों ओर फूट और विद्वेष के बादल आकाश में मँड़रा रहे थे इसके साथ ही समाज में व्यभिचार और नशाखोरी भी जोरों से फैल रही थी। ब्रिटिश शासक भी अपनी सत्ता और

शोषण नीति को स्थायी बनाये रखने के लिये कूटनीति से काम ले रहे थे। भारतीयों को आलसी और अकर्मण्य बनाने के लिये उनकी ओर से बड़े पैमाने पर मादक वस्तुओं का प्रचार किया जा रहा था और भेदनीति को अपना कर यहाँ की दो प्रमुख जातियों हिन्दू और मुसलमान को आपस में लड़ाया जा रहा था। इस प्रकार समाज में पूरी तरह अशान्ति छायी हुयी थी।

इस समय स्त्रियों की दशा बड़ी ही दयनीय थी। पर्दा प्रथा के प्रचलन के कारण वे घर की चार दीवारी में बन्द रहती थीं जिससे उनका बौद्धिक और मानसिक विकास नहीं हो पाता था, साथ ही पतियों के दुर्व्यवहार से उन्हें अनेक कष्ट झेलने पड़ते थे। वे एक दासी की भाँति अपना जीवन व्यतीत करती थीं। पतियों के द्वारा उन्हें सदैव भर्त्सना और ताड़ना मिलती रहती थी। लड़कियों को पढ़ाना भी उस समय हेय समझा जाता था। लड़कों को शिक्षा भी उस समय बहुत सीमित थी। यदि कभी कोई लड़की पढ़ भी गयी तो उसकी शादी होने में बहुत परेशानी होती थी। पढ़ी–लिखी लड़की से लोग शादी करने में एतराज करते थे। इसके अतिरिक्त समाज में बाल विवाह बृद्ध विवाह बहुविवाह आदि कुप्रथायें भी फैली थीं। बचपन में ही लड़के लड़कियों की शादी कर दी जाती थी। जिससे उनका शारीरिक पतन तो होता ही था, उनका आगामी विकास भी रुक जाता था। दहेज प्रथा के प्रचलन के कारण निर्धन माता–पिता अपनी फूल जैसी कोमल सुकुमार अल्पवयस्क कन्याओं की शादी वृद्ध पुरुषों से कर देते थे जिससे समाज में विधवाओं

की संख्या बढ़ती जा रही थी। बहुविवाह करने की उस समय एक परिपाटी सी बन गयी थी। एक साथ कई स्त्रियाँ रखने में लोग अपनी शान समझते थे। इससे स्त्रियों की इज्जत भी कम होती थी और उन पर अत्याचार भी अधिक किये जाते थे। इन कुरीतियों को दूर करने के लिये समाज सुधारकों ने बड़े प्रयत्न किये। सन 1872 में केशवचन्द्र सेन के प्रयास से बालविवाह और बहुविवाह पर सरकार की ओर से प्रतिबंध लगाया गया आगे चलकर पारसी सुधारक एम0 वी0 मालवारी तथा अन्य सुधारकों के प्रयत्न से सन् 1891 में सहवास कानून (एज आफ कन्सेन्ट एक्ट) पास हुआ जिसके द्वारा विवाह करने की आयु पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। पर यह प्रतिबन्ध न तो जनता द्वारा मान्य ही हुआ और न सरकार में। और न इसे लोगों को बाध्य ही किया। राजपूताना तथा देश के कुछ अन्य भागों में कन्या विवाह की परेशानियों से बचने के लिये कन्याओं का बध कर दिया जाता था। कन्या के जन्म लेते ही मातायें उसे विष देकर मार डालती थीं। कभी–कभी वंशवृद्धि के लिये पुत्रों की बलि भी दी जाती थी। दहेज के लोभ में लोग विवाह करते थे और पत्नियों को मार डालते थे। काली चण्डी आदि की उपासना के लिये तान्त्रिक मत वाले नर बलि चढ़ाते और नर माँस का प्रसाद लेते थे। इस प्रकार समाज में बहुत सी कुप्रथायें फैली थीं। सरकार ने इस नृशंस प्रथाओं को सर्वप्रथम 1795 ई0 में बन्द करने का प्रयत्न किया पर कोई विशेष सुधार नहीं हुआ। इसके बाद 1802 ई0 में सरकार ने पुनः कानून

बनाया और उसे कड़ाई से लागू भी किया पर ये प्रथायें पूर्णतः बन्द नहीं हुईं।

19 वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में बंगाल राजपूताना और दक्षिणी भारत में सतीप्रथा विशेष रूप से प्रचलित थी। पति के मरने के बाद स्त्री यदि स्वेच्छया सती नहीं होती थी तो उसे जबरदस्ती चिता में धकेल दिया जाता था। यदि कभी कोई स्त्री सती होने से बच भी गयी तो उसे बड़ा कष्टमय जीवन व्यतीत करना पड़ता था। न तो वह अच्छे वस्त्र ही पहन सकती थी और न अच्छा खाना ही खा सकती थी। समाज उसे गिरी नजरों से देखता था उसका जीवित रहना मृतक के समान ही था। राजाराममोहन राय ने इस प्रथा के विरोध में एक बहुत बड़ा आन्दोलन प्रारम्भ किया जिसके परिणाम स्वरूप 1829 ई0 में सरकार द्वारा इस प्रथा को दण्डनीय घोषित किया गया। सरकार द्वारा रोक लगाये जाने से यह सती प्रथा तो बहुत कम हो गयी पर समाज में विधवाओं की समस्या सामने आ खड़ी हुयी । वृद्ध विवाह प्रथा के प्रचलन से समाज में विधवाओं की संख्या यों ही बढ़ रही थी इस सती प्रथा पर सरकारी रोक लगा दिये जाने से इसकी संख्या बड़ी तेजी से बढ़ने लगी। अठारह, बीस, साल की विधवाओं को भारस्वरूप अपना जीवन यापन करते देख ईश्वर चन्द्र विद्यासागर ने विधवा विवाह का आन्दोलन चलाया जिसे सन् 1856 में सरकार ने वैध करार दिया। फिर भी हिन्दुओं की अतिशय धर्मान्धता के कारण इस दिशा में कोई विशेष सुधार नहीं हुआ।

अछूत वर्ग का निर्माण हिन्दू वर्ण व्यवस्था के संगठन में लोग शताब्दियों के क्षयकारी घुन का परिणाम है। इस वर्ग के सदस्य समाज के श्रेष्ठतर वर्गों पर उदर पोषण हेतु आश्रित रहते आये हैं। उस समय देवालयों तथा मठों के द्वारा इस वर्ग के लिये बन्द रहते थे। कुछ प्रान्तों में इस श्रेणी के मनुष्यों को सवर्ण हिन्दुओं से बचकर चलने का आदेश था।

हिन्दू सामाजिक संगठन की तीन प्रमुख विशेषतायें हैं। सन्तुलित वर्णव्यवस्था, सम्मिलित परिवार प्रथा तथा आत्मनिर्भर गाँव। आंग्ल प्रमुख वृद्धि के साथ रेल, तार, पोत, तथा चित्रपट आदि के आगमन ने वर्गीय पवित्रता तथा अपवित्रता की परिधियों को तोड़ दिया पदों के मोह से कुटुम्ब के सदस्यों को स्थानान्तरण करना पड़ा। तथा सामूहिक परिवार पद्धति खण्ड–खण्ड होने लगी। आर्थिक पराभव ने गाँवों की आत्मनिर्भरता छीन ली। घोर व्यक्तिवादी पश्चिमी सभ्यता ने वर्ण व्यवस्था की नींव हिला दी।

सामाजिक स्वतन्त्रता के अभाव को दूर करने का कुछ प्रयत्न इस युग की समाज सुधार सम्बन्धी संस्थाओं, ब्रह्म समाज प्रार्थना समाज, रामकृष्ण मिशन आदि में किया लेकिन इनमें भी कहीं दलगत संकीर्णता है। कहीं व्यर्थ का रूढ़िवाद तथा कहीं एक नवीन प्रकार का कटटरपन है अतः जहाँ इन समाज सुधार सम्बन्धी संस्थाओं ने कुछ रूढ़ियों का इन्यूलन यिा वहाँ कुछ नई रूढ़ियों के विष वृक्षों के बीज भी बो दिये।

अंग्रेजो ने व्यापार के माध्यम से अपने देश को वैभव सम्पन्न एवं धनवान बनाने के उद्देश्य से स्वर्ण देश भारत में प्रवेश किया था। लेकिन जब शासन

सूत्र ही उनके हाथ में आ गया तब फिर उनकी अर्थ लिप्सा का मार्ग कौन रोक सकता था। उन्होंने यहाँ के अधिकांश अन्न को इंग्लेण्ड भेजने का कार्य प्रारम्भ किया। जनता कष्टों में पड़ी कराहती थी दुर्मिक्षों का ताँता बँधा हुआ था। यातायात के अनेक साधन सुलभ हो जाने पर भी दुर्भिक्ष ग्रस्त क्षेत्रों में अन्न पहुँचाने की व्यवस्था नहीं हो पाती थी। इसका मुख्य कारण इेश की आर्थिक दुर्दशा थी। लोगों को भूख से तड़प–तड़प कर प्राण त्यागने पड़ते थे।

19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अकालों का ताँता लग गया था। हैजा, प्लेग जैसी महामारियों से हजारों की संख्या में लोग मरने लगे थे। चेचक प्लेग आदि अनेक भंयकर रोग तथा भूचाल आदि भौतिक तथा दैवी आपदाओं का सामना करते–करते मनुष्य हताश हो गया था। अर्थाभाव के कारण अपने संकटों के निवारण का मार्ग वे ढूँढ़ नहीं पाते थे। परिवार के सभी सदस्यों के श्रम में लगे रहने पर भी लोगों को अन्न, वस्त्र के लिये तरसना पड़ता था। शीतकाल की दाँत किटकिटा देने वाली रातें चार–चार व्यक्तियों को एक ही रजाई में काट देनी पड़ती थी। दिन प्रतिदिन भारतीय सम्पत्ति क्षीण होती जा रही थी। किसान दिन भर श्रम करके भी भरपेट अन्न नहीं पाते थे। वे अपनी छाती पत्थर का बना भूख से तड़पते अपने बच्चों को देखते रहते थे।

आर्थिक परिस्थिति में सुधार का कोई मार्ग न सूझने पर वे पूर्व जन्म

में अपने द्वारा किये गये कर्मों के लिये पश्चाताप करते थे। यह आर्थिक दुखस्था उत्तरोत्तर बढ़ती ही गयी। भूमि व्यवस्था के जमीदारी प्रथा पर आश्रित हो जाने के कारण देश की जनता जो अधिकतर ग्रामों में बसी हुयी थी, आर्थिक संकटों में पिसकर न केवल ग्रामवासिनी जनता का जीवन ही आर्थिक विपन्नता से ग्रस्त नहीं था। बल्कि उसका शिक्षित समुदास जो शहरों में निवास करता था, भी इससे तबाह एवं परेशान था पर्याप्त शैक्षणिक योग्यता प्राप्त कर लेने पर भी उन्हें नौकरी नहीं मिलती थी जिससे इस समुदाय में बेकारों की संख्या दिन व दिन बढ़ती जा रही थी।

तात्पर्य यह है कि इस समय भारतीय जनता का जीवन आर्थिक विपन्नता से ग्रस्त था। मशीनों के आविष्कार एवं मिलों की स्थापना से भारतीय कुटीर उद्योग नष्ट हो गये थे जिससे इसमें लगे लोग बेरोजगार हो जाने से कृषि पर निर्भर रहने लगे थे। परिणामतः कृषि पर आश्रित व्यक्तियों की संख्या काफी बढ़ गयी थी। कृषि की स्थिति अच्छी नहीं थी। अनावृष्टि एवं जंगलों के कट जाने से पैदावार बहुत कम हो गयी थी। लेकिन इस स्थिति मं लगान कम नहीं हुआ था। बल्कि बहुत बढ़ गया था। कृषक साल में जो कुछ पैदा करता था वह लगान में ही समाप्त हो जाता था। ऐसी स्थिति परिस्थिति में जीवन जीने के लिये उसे महाजनों से कर्ज लेने के लिये बाध्य होना पड़ता था और यह कर्ज दिनों दिन बढ़ता ही जा रहा था। यहाँ तक कि भारतीय कृषक कर्ज में ही पैदा होते जीवन जीते और मर जाते

थे। मँहगाई भी कई गुना अधिक हो गयी थी। विदेशी वस्तुओं के प्रचार प्रसार के लिये देशी वस्तुओं पर बराबर कर लगते जा रहे थे।

समाज में रिश्वतखोरी भी बढ़ती जा रही थी सरकारी कर्मचारी बिना रिश्वत लिये कोई काम नहीं करते थे। कचहरी और पुलिस विभाग तो रिश्वतखोरी में सबसे आगे थे। विदेशियों की नकल उतारने और फैशन परस्ती करने में भी देश का बहुत सा धन व्यय हो रहा था।

सन् 1906 में डिप्रैस्ड क्लासेज मिशन सोसायटी स्थापित हुयी जिसने समाज के दलित वर्ग के उद्धार के लिये अनेक कार्य किये इसी प्रकार इण्डियन सोशल कान्फ्रेन्स के द्वारा भी दलित वर्गों की उन्नति, सामज में स्त्रियों की दशा में सुधार, बालविवाह निषेध और जाति–भेद को दूर करने के प्रयास किये गये। सन् 1917 ई0 में अंग्रेजी संसद में भारत की व्यवस्थापिका सभाओं में स्त्रियों के प्रतिनिधित्व की माँग हुयी। यह घटना स्त्री समाज की जाग्रति का परिणाम है। इस समय तक कलकत्ता का चितरंजन सेवा सदन पूजा का सेवा सदन और महर्षि कर्वे का विश्वविद्यालय स्थापित हो चुका था। ये संस्थायें एक स्वस्थ समाज–रचना का उद्देश्य लेकर चल रही थीं। समाज की इन विषम परिस्थितियों से लोगो को मुक्त करने के लिये समाज सुधारकों की ओर से बराबर प्रयत्न हो रहे थे। पर सरकार के असहयोग के कारण प्रगति बड़ी मन्थर गति से हो रही थी।

भारतीय हिन्दू समाज परिवार में न केवल नारी बल्कि अदृश्य समझी

जाने वाली जातियों के साथ–साथ किसानों, मजदूरों की स्थिति, सामाजिक और आर्थिक दोनों दृष्टियों से दयनीय थी। शोषण–कार्य मात्र किसानों मजदूरों तक ही सीमित नहीं था। हिन्दू समाज में वर्णाश्रम व्यवस्था के अन्तर्गत स्पश्य समझी जाने वाली जाति वालों के साथ सवर्ण हिन्दुओं का व्यवहार अच्छा नहीं होता था। उन्हें गाँव से बाहर कुटिया बनाकर रहने के लिये विवश किया जाता था। समाज में मन्दिरों में प्रवेश की उन्हें सख्त मनाही थी। धार्मिक अनुष्ठानों में भाग लेने से उन्हें रोक दिया गया था। सार्वजनिक जीवन में सवर्ण हिन्दुओं के कुयें से जल लेने, विद्यालय में पढ़ने, छात्रावासों में ठहरने सड़को पर चलने, अच्छे वस्त्र तथा आभूषण धारण करने आदि की सुविधाओं से वंचित कर दिया गया था। तात्पर्य कि हिन्दु होते हुये भी हिन्दु धर्म के प्रति आस्था भाव रखते हुये भी उन्हें सब प्रकार के अधिकारों से वंचित कर, सवर्ण हिन्दुओं ने घोर नारकीय घृण्य जीवन जीने के लिये विवश कर दिया था। इन सभी कुव्यवस्थाओं के परिणाम स्वरूप उनकी जीवन स्थिति दिनों–दिन बिगड़ती ही गयी। जब देश में पुनरुत्थान की लहर आई, समाज सुधारकों का ध्यान इन विधर्मी बन रहे शूद्रों की ओर गया। देश में जब ब्रिटिश शासकों के विरुद्ध स्वातन्त्र्य आन्दोलन छिड़ा। देश हितैषी राजनीतिक नेताओं विशेषकर महात्मा गाँधी जवाहर लाल नेहरू का भी ध्यान देश में फैली कट्टर जाति प्रथा, अस्पृश्यता, एवं अदर्शनीयता की ओर आकृष्ट हुआ। समाज राष्ट्र धर्म संस्कृति अर्थ, शिक्षा के सभी दरवाजे उनके लिये पुनः खुल

गये।

तत्कालीन समाज न केवल कुरीतियों कुव्यवस्थाओं का आगार था वरन उनकी शिक्षा शिक्षण पद्धति भी दोषपूर्ण थी जिससे समाज की बजाय प्रगति करने के अधःपतन की स्थिति थी।

इस प्रकार सामाजिक स्थिति के प्रत्येक पहलू में पाश्चात्य सभ्यता संस्कृति शिक्षा के सम्पर्क से परिवर्तन हुआ। यह परिवर्तन कहीं तो सुधार के रूप में हुआ और कहीं क्रान्ति के रूप में।

सामाजिक प्रस्थिति के विभिन्न तत्वों में आर्थिक कारकों को भी महत्व दिया जाता रहा है। अतः हम यहाँ पर संक्षेप में निदर्श की आर्थिक प्रास्थिति में महत्व के सन्दर्भ में विद्वानों द्वारा प्रस्तुत विचारों की समीक्षा करने का प्रयास कर रहे हैं।

प्रत्येक समाज की संस्कृति के अनिवार्य अंगो में एक ओर जहाँ उसके सांस्कृतिक तत्व महत्वपूर्ण होते है वही दूसरी ओर समाज की अर्थव्यवस्था भी महत्वपूर्ण होती है, कार्लमार्क्स, थर्सटीन वेवलेन, लेनिन तथा अन्य मार्क्सवादी समर्थकों ने आर्थिक संरचना को समाज के केन्द्रक के रूप में स्वीकार किया है। कार्लमार्क्स के ही शब्दों में–"सामाजिक परिवर्तन के लिए आर्थिक कारण ही चल है।"

व्यक्तित्व विकास और आर्थिक संरचनाओं के अन्तर्सम्बन्धों को *Guevera* ने अपनी पुत्री को लिखे गये एक पत्र में स्पष्ट किया है–

" ....I grww up in a different society where men were enemies of one another, your have the good Fortunr of living in different time and you must live up this paivilege."

कार्लमार्क्स आर्थिक कारकों को समाज परिवर्तन के लिये महत्वपूर्ण स्वीकार करते हुये दुनिया के इतिहास को वर्ग संघर्ष का इतिहास निरूपित किया है। वे आर्थिक कारकों को नाभिकीय भूमिका के कारण ही सभ्यता के उदय को स्वीकार करते है। उन्हीं के शब्दों में–

"No antagonism, no progress, this is the law that civilization has followed up to ourdays."

उत्पादक शक्तियों के विकास के परिणाम स्वरूप वर्ग चेतन का विकास होता है। वर्ग चेतना के विकास में जब मजदूर की समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। तब वह अपनी उत्पादन क्षमता को बढ़ाकर उद्योगों को विकसित स्वरूप प्रदान करता है। इस प्रकार समाज में आर्थिक क्षमताओं एवं वर्ग चेतना के आधार पर सभ्यता और समाज के विकास की कल्पना मार्क्सवादी दार्शनिक करते है।

रावर्ट सी. टक्कर ने कार्ल मार्क्स की आर्थिक मान्यताओं की व्यवस्था करते हुये बतलाया कि "मार्क्स एवं अन्य के लिये सामाजिक परिवर्तन का अर्थ केवल कल्पनावाद के स्तर पर सामाजिक जड़ता से है।" मार्क्स के

आर्थिक निर्णायकवाद की आलोचना करते हुये अन्य समाज वैज्ञानिकों ने मार्क्सवाद को आलोचना करते हुये अन्य समाज वैज्ञानिकों के मार्क्सवाद को 'अर्धसत्य' के रूप में कहकर सम्बोधित किया है।

अमेरिकन अर्थशास्त्री आर्थिक कारकों को समाज के लिए परिवर्तन के कारक के रूप में स्वीकार करते है किन्तु वे वर्ग संघर्ष अथवा केवल उत्पादन के साधन एवं उत्पादन के तरीकों सम्पूर्ण मान्यता प्रदान नहीं करते। उनके अनुसार 'समाज का विकास उदविकसित गति से होता है संघर्ष से नहीं।

भारतीय समाज के प्रवर्तक डा. राममनोहर लोहिया आर्थिक एवं सामाजिक संरचनाओं के महत्व को बतलाते हुये " दुनिया के इतिहास को वर्ग और वर्ण के दौलत का इतिहास निरूपित करते हैं।"

मानव की सम्पूर्ण संस्कृति उसके पर्यावरण से प्रभावित होती है और पर्यावरण की भौतिक संस्कृति के विभिन्न प्रतिमानों को निर्मित करने एवं उनके वाहक बनने की भूमिका निभाती है। भौतिक संस्कृति से ही अर्थव्यवस्था का निर्माण होता है जो कि समाज की संरचना को प्रभावित करता है। नृतत्व शास्त्रियों में हर्स्काविट्स, टायलर एवं हॉबल आदि इससे सहमत है।

अतः यह आवश्यक है कि किसी भी समुदाय के अध्ययन के लिये उसकी आर्थिक संरचना को समझा जाये।

आर्थिक स्थिति— भारत के लोंगो का आर्थिक जीवन आमतौर पर भौगोलिक भौतिक और मौसम की परिस्थितियों पर निर्भर करता था। साथ

ही यह सामाजिक संस्थाओं और शताब्दियों से चली आ रही प्रथाओं तथा धार्मिक आस्थाओं पर निर्भर था। सदियों से यहाँ के निवासियों की मूल जीवन पद्धति एक निश्चित आर्थिक प्रणाली से स्थिर हो चुकी थी और ये प्रणाली प्राचीन काल से मध्ययुग तक बराबर चली आ रही थी। हमेशा से भारत एक समृद्ध देश माना जाता रहा है जहाँ एक क्षेत्र में अकाल व अभाव भी असाधारण घटनायें न थी। इतने विशाल देश में अनाज की आपूर्ति एवं अकाल जैसी अनियमिततायें स्वाभाविक थी। पर इस अनियमितता को स्थाई स्वरूप बिट्रिश सरकार की अन्यायपूर्ण आर्थिक नीतियों ने दिया। भारतीय इतिहास में ब्रिट्रिश युग विश्व आर्थिक संक्रमण काल में था। इसके बाद क्या लाभ–हानि हुई उसका एक विवरण 1885 से 1947 ई0 तक के भारत के आर्थिक जीवन का उद्योग, कृषि आदि तथ्यों के आधार पर निम्नवत प्रस्तुत किया गया है।

19 वीं सदी के अन्तिम चतुर्थांश में भारत एक पिछड़ी अर्थ व्यवस्था वाला देश था। यद्यपि उस पर विश्व के सर्वाधिक विकसित और उद्योगीकृत देश का राज था। एक तो देश, विदेशी राजनैतिक हस्तक्षेप से पीड़ित था दूसरी ओर परंपरावादी तकनीकि ने कृषि और उद्योगों को जड़ बना दिया था। अतः निम्न उत्पादकता व अतिरिक्त पैदावार की लक्ष्मण रेखा लाँघने मे असमर्थ भारतीय अर्थतंत्र किस प्रकार विदेशी साधनों व तकनीकि का सामना कर पाता। यद्यपि 19वीं सदी औद्यौगिक पूंजी का काल माना जाता है, पर उभरते अंग्रेज पूंजीपतियों एवं उद्योग पतियों ने जिस द्रुतगति से भारत की

कृषि, उद्योग, करनीति, मुद्रा प्रणाली, पर अधिकार किया उसने भारत को हीन दशा में ला खड़ा किया। लार्ड विलियम बेंटिक ने 1834 में ही इस भावी दुर्दशा का व्यापार के इतिहास में जोड़ नहीं। भारतीय बुनकरों की हड्डियाँ भारत के मैदानों में बिखरी पड़ी हैं।"[7]

उपर्युक्त कथन यद्यपि शिल्प के सन्दर्भ में कहा गया है पर लगभग यही स्थिति हर क्षेत्र में थी। कहने का तात्पर्य यह नहीं कि भारत की अर्थ व्यवस्था पतनोन्मुखी थी। वस्तुतः भारत के लिये इस समय आर्थिक पिछड़ापन का दौर था जिसके मध्य परम्परावादी व आधुनिक साधनों की खाई थी। भारत में यह पिछड़ापन उतना ही नया था। जितना कि ब्रिटिश शासन। भारतीय संदर्भ मे औपनिवेशिक शासन द्वारा उत्पन्न इसी विरोधाभास में भारतीय अर्थव्यवस्था (1885–1947) की वास्तविक स्थिति के विन्दु निहित हैं। 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में भारत में ब्रिटिश नीतिकी अधिकाधिक आलोचना की गई। भारतीयों ने भी साम्राज्यवाद के आर्थिक सिद्धान्तों को चुनौती के रूप में स्वीकार कर अपने मत प्रकट किये। इसीलिये यह काल 'आर्थिक राष्ट्रवाद' के नाम से जाना जाता है। दादा भाई नौरोजी और आर० सी दत्त जैसे राष्ट्रवादी आर्थिक चिंतको ने विदेशी शासन और भारत के बढ़ते जा रहे पिछड़ेपन के मध्य सम्बन्ध खोजने का प्रयास किया। नौरोजी ने अपनी अर्थ मीमांसा में तीसरा चरण 'वित्तपूँजीवाद' (1886–1947) का काल बताया है। जिसमें उन्होंने ब्रिटिश पूँजी का व्यापक पैमाने पर नियोजन सार्वजनिक ऋणों,

रेल निर्माण, सिंचाई, बागवानी आदि में बताया। परन्तु यदि हम उद्योग की विस्तृत चर्चा करे तो इस काल में निरूउद्योगीकरण के अन्तर्गत व्यक्ति शिल्प कर्म छोड़कर कृषि की ओर उन्मुख हो गये। परन्तु यदि उद्योगों की स्थापना पर दृष्टि डालें तो यह बात तर्क संगत नहीं लगती। टाटा आयरन एण्ड स्टील कंपनी (1907), हुगली पर बाली मिल्ज की स्थापना (1870) चीनी उद्योग के क्षेत्र में (1930–40) अग्रणी भूमिका, 1937 में कलकत्ता के पास एल्युमिनियम केन्द्रो की स्थापना।

आर्थिक समीक्षाकारों ने इस अवस्था को नव उद्योगीकरण काल से प्रस्तुत किये जाने का प्रयास किया। यदि हम 1900–1904 ई0 तक औद्योगिक आय पर विचार करें तो यह राष्ट्रीय आय के 100 पैसों में से 13 पैसे, 1925–29 में 17 पैसे से कम था। दरअसल भारत में औद्योगिकरण की इस प्रक्रिया की शुरूआत बेहद आश्चर्य जनक हुई। इसे समझने के लिये सूती कपड़े का उदाहरण लेते है। 1880–1885 के दशक में सूती कपड़ा उद्योग पहले की अपेक्षा तीव्र गति से बढ़ा था पर 1895–1914 का चरण इस उद्योग के लिये अनुकूल नहीं था। संमवतः इसका कारण भारतीय सूती वस्त्र के उद्योग को जापान के रूप में एक प्रतिद्वन्दी मिल गया था। अगले चरण में 1914–22 में महायुद्ध का प्रभाव एवं गाँधी जी के 1921 के असहयोग आन्दोलन मे विदेशी वस्त्रों को पुनर्जीवित कर दिया। इस प्रकार परवर्ती वर्षों में इस उद्योग में अत्यधिक तेजी देखी गई जो भारत की अर्थव्यवस्था में

व्यापक बदलाव के संकेत देते है।

भारत की कृषि के आधुनिक न हो पाने में यद्यपि बहुत से सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक कारणों का पाया जाना माना जाता है। भारत में कृषि की उत्पादकता तो अभी भी स्थिर रही और निरंतर बढ़ती जनसंख्या ने गरीबी को जन्म दिया। भूराजस्व चूँकि कृषि क्षेत्र से प्राप्त आय की सबसे बड़ी मद थी इस कारण ब्रिटिश सरकार इस पर निरंतर नियंत्रण व प्रयोग करती रहती थी। सरकार ने कृषि का वाणिज्यीकरण कर दिया। कृषि में आई इस जड़ता को डेनियल थारनर को शब्दों में "1890–1947 का काल कृषि की स्थिरता का काल था। यदि हम कृषि के राजनैतिक इतिहास पर चर्चा करें तो पायेंगे कि भारत में उपजने वाली नगदी फसलों की लिप्सा और अत्यधिक भूराजस्व प्राप्ति ने अंग्रेजी को नैतिक पतन की पराकण्ठा तक पहुँचा दिया। बात चाहे निलहे सरकारों की हो या जबरन लगान वसूली के विरोध में गाँधी जी के खेडा व चंपारण आंदोलन हो। ब्रिटिश सरकार का औपनिवेशिक चरित्र सर्वत्र उजागर होता है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि 1900–1947 के बीच भारत में प्रति एकड उपज की वास्तविक मात्रा घटी थी। हो सकता है कि मिट्टी के कटाव, खाड़ बीज, व अनुपजाऊपन इसके कारण हो पर वास्तविकता में उन्नत बीज, सुधरे औजार व रासायनिक उर्वरकों के वावजूद उक्त कमी आई। वस्तुतः यह ब्रिटिश सरकार का कृषि के प्रति अन्याय था जो कभी–कभी दंगों के रूप में भी सामने आ जाता

था। उदाहरणार्थ पावना दंगे (1873), दक्कन (1875), असम (1894) आदि।

सामान्यतः यह विद्रोह औपनिवेशिक चरित्र के खिलाफ थे जिसमें इन्हें दोहरे शोषण का सामना करना पड़ता था। एक ओर सरकार का शोषण व दूसरी तरफ विचौलियों व साहूकारों की ऋणग्रस्तता। इन दंगों व अनियमितता से निपटने के लिये सरकार ने काश्तकारी कानून भी बनाये।

(1) 1881 –पश्चिमोन्तर प्रांत लगान अधिनियम

(2) 1883 –मध्यप्रांत काश्तकारी विधेयक

(3) 1885 –बंगाल, पंजाब काश्तकारी कानून

(4) 1886 –अवध लगान अधिनियम।

इसके अलावा 1900 में पंजाबी भूमि हस्तांरण, 1904 सहकारी ऋण समितियाँ, 1905 कृषि अन्वेषण संस्था आदि ने कृषि के प्रति सरकारी नीतियों को प्रमाणित किया। इनके अलावा एक अन्य मुहिम तेजी से चल रही थी वा थी। गाँधी जी द्वारा कृषकों व मजदूरों का राष्ट्रीय आन्दोलन से जोड़ने की प्रवृत्ति आगे चलकर यही प्रवृति अपने विशाल रूप में 1936 में प्रकट हुई जब लखनऊ में स्वामी सहजानद ने अखिल भारतीय किसान सभा का गठन किया। 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन के बाद तो किसानों ने स्वतंत्रता प्राप्ति तक लगान देना ही बन्द कर दिया था।

1885 से स्वतंत्रता प्राप्ति तक भारतीय भूमि व्यवस्था पर सरकारी कर नीति में समय–समय पर फेरबदल होते रहे पर वास्तविकता में राजस्व वसूली

को तीन बिन्दुओं पर सकेतिक कर सरकार ने समय, काल, पात्र के आध ार पर व्यवस्था लागू की। ये तीन विन्दु थे–

(1) राजस्व के लिए जिम्मेवार कौन होगा (जमींदार या रैययत)

(2) राजस्व कितना होगा (नेट उत्पादनदर से या पुराने मूल्यों से)

(3) राजस्व का निर्धारण कब होगा (एक बार या समयांतरालों पर)

कई प्रयोगों के दौर से गुजरी भारतीय कर नीति 1857 के गदर पर खर्च, ब्रिटिश अधिकारियों के व्यय व चाँदी के मूल्य में गिरावट के फलतः सरकार ने 1882 में अस्थाई बंदोवस्त लागू किया। पर आर0 सी दत्त ने स्थाई बंदोवस्त की माँग की जिसका समर्थन भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने भी किया। अंततः यह माँग 1947 तक आते–आते स्वतंत्रता आन्दोलन में समाहित हो गई। इसी क्रम में 1882 के बाद चावल के अलावा सभी प्रधान कृषि उत्पाद बिना बाधा के निर्यातित होते थे। विल्सन के बजट के प्रायः 60 वर्ष बाद निर्यात शुल्क शुरू हुआ। कच्चे चमड़े पर (1919) पटसन व चाय पर (1922), कच्ची रुई पर (1932) में यह शुल्क लगाया गया।

कृषि में आई इस अनियमितता ने अकालों को जन्म दिया। 1943 के अकाल की छाया बंगाल की चेतना पर आसानी से नहीं जायेगी। भारत में बिट्रिश शासन का दूसरा चरण शुरू होने तक देश में गरीबी इतनी गहरी जड़ें जमा चुकी थी कि लोगों को मुश्किल से दो वक्त की रोटी भी नहीं मिल पा रही थी। लोगों के पास इतना अनाज संग्रह न था कि फसल

न होने की दशा में जिंदा रह सकें। प्रकृति भी हमेशा की तरह अनिश्चित ही रही। 19 वीं सदी के उत्तरार्द्ध व 20वीं सदी के प्रारम्भ में कई अकाल पड़े। उपर्युक्त विवरिणित बंगाल के अकाल के 'मानव निर्मित अकाल'[62] कहा जाता है। 1888–89 में बिहार के उत्तरी जिलों, 1896–97 में भारत के उत्तर व दक्षिण, 1900 ई0 1908 में देश के विभिन्न भागों में 1942 में शरद ऋतु में तटवर्ती बंगाल व उड़ीसा में आई समुद्री लहरों के कारण अकाल की स्थिति आ गई।

अकाल की इस स्थिति से निपटने के लिये सरकार ने धीमे कदम उठाये। लायल कमीशन (1897) मैक्डोनल आयोग (1900) इन्हीं धीमी गति की समीक्षा के लिये गठित की गई थी। चूँकि सरकार का मुख्य ध्येय व्यावसायिक था अतः अकाल के नाम पर मानव कल्याण को सहजता से स्वीकार करना उसने उचित न समझा। पर बाद में सरकार ने इसके लिये कुछ प्रयास किया। वस्तुतः यह अकाल सरकारी नीतियों का ही परिणाम था। परम्परागत खाद्य फसलों के स्थान पर जबरन नकदी फसलों का उत्पादन, अनाजों का बाहर निर्यात एवं अत्यधिक लगान वसूली ने साधारण कृषक को दास की स्थिति में ला खड़ा किया। जिसमें न तो मानवीय प्रतिकार की क्षमता थी और न ही प्राकृतिक आपदाओं से निपटने का सामर्थ। इस प्रकार कृषि का क्षेत्र पूर्णरूप से ब्रिटिश नीति निर्देशों पर चल रहा था। जिसने प्राचीन कृषि प्रधान देश को अभी तक के भंयकतरतम अकालों से परिचित कराया।

कृषि, उद्योग, मुद्रा, कर–प्रणाली आदि बिन्दुओं के अतिरिक्त यदि हम राष्ट्रीय आय को आर्थिक प्रगति का मापदण्ड माने तो न्यायोचित होगा। वस्तुतः आर्थिक प्रगति का मापन इसी आय के माध्यम से होता है। ऐसा नहीं है कि स्वतंत्रता के पूर्व इस दिशा में कोई सार्थक प्रयत्न न किया गया है। 1871 में भारत उपसचिव ग्रोटउफ ने भारत की औसत वार्षिक आय 2 पाउण्ड स्टलिंग या 20 रूपये बताई थीं जो बाद में भारतीयों द्वारा भी पुष्टि की गई।

औपनिवेशिक शासन के शिकंजे में जकड़े विभिन्न देशों में उससे मुक्ति पाने के लिए जो आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक आंदोलन चले, उन सबके मुकाबले भारत के आंदोलन को उपनिवेशवाद के आर्थिक वर्चस्व व शोषण की प्रकृति व चरित्र की समझ सबसे ज्यादा थी। संभवतः यही कारण था कि 1947 ई0 में स्वतंत्रता के बाद भारत ने अपने आर्थिक तंत्र को सुविकसित करने के लिए उसके सकारात्मक एवं नकारात्मक पहलुओं पर विचार कर एक निश्चित रूप रेखा तैयार की। गरीबी, बेरोजगारी, विभाजन की त्रासदी कृषि की छिन्न भिन्न अव्यवस्था, उद्योगों के पतन को अपनी नियतिफल मानकर विभाजित भारत ने अपनी बुद्धिकौशल योग्य नेतृत्व, व जीबटता से आज लगभग विकसित होने की दशा प्राप्त कर ली है। पर इस सम्पूर्ण प्रक्रिया के पीछे जिन कारकों का योगदान है वे निम्नवत हैं।

14/15 अगस्त 1947 ई0[8] को भारत का दो प्रभुसत्ता संपन्न राज्यों

में विभाजन किया जाना एक अत्यंत महत्वपूर्ण राजनीतिक घटना थी। स्वतंत्र आस्तित्व में आने पर भारत संघ और पाकिस्तान पर विभाजन के आर्थिक प्रभाव हानिकारक हुए। करोड़ों लोग अपने घरों से उजड़ गये और लाखों सांप्रदायिक दंगों की चपेट में आ गये। प्राकृतिक सीमाओं से बँधी एक भूमि कई युगों से जो सुसंगठित आर्थिक जीवन विकसित कर पाई थी। वह विभाजन की एक झकझोर देने वाली घटना से छिन्न–भिन्न हो गई। आंतरिक व्यापार और वाणिज्य अस्त–व्यस्त हो गया। परिवहन व संचार प्रणालियाँ टूट गईं। उद्योगों के कच्चे माल व कृषि को अनियमितता के दौर से गुजरना पड़ा। माँग व पूर्ति, उत्पादन व कृषि साधनों हेतु, क्षेत्रीय साधनों पर निर्भरता बढ़ गई। कुल मिलाकर असंतुलन बुरी तरह विगड़ गया और दोनों विभाजित हिस्सों को अपनी खोई प्रतिष्ठा व आर्थिक एकता के दुष्परिणाम भुगतने पड़े।

विभाजन से देश की लगभग 23 प्रतिशत भूमि एवं 20 प्रतिशत जनसंख्या को मिलाकर पाकिस्तान का गठन हुआ। इस भूमि के चले जाने का सबसे बड़ा असर यह हुआ कि खाने–पीने की चीजों और कच्चेमाल में कमी आ गई। बंगाल का पूर्वी भाग एवं पंजाब का पश्चिमी प्रांत जो पाकिस्तान को मिले थे, वे बहुत उपजाऊ थे। इस समय भारत में चावल उत्पादन 2 करोड़ 84 लाख टन से 2 करोड़ 17 लाख टन रह गया तथा गेहूँ 93 लाख टन से 49 लाख 70 हजार टन रह गया। अनाज की इस कमी का यदि पता लगाया जाये तो इसमें 2 कारक प्रमुख माने जा सकते हैं। प्रथम तो विघटित

भारत का क्षेत्र तो 23 प्रतिशत गया पर जनसंख्या 20 प्रतिशत गई। इससे जनसंख्या का दवाब बढ़ा दूसरा स्वयं स्वास्थ संवधी कमी से जूझता भारत अपनी जनसंख्या को नियंत्रित न कर पाया। इस समय सिंचित क्षेत्र का 68 प्रतिशत पाकिस्तान के पास था।

इन सारी समस्याओं को ध्यान में रखकर 1946 में पंड़ित जवाहर लाल नेहरू ने लिखा था "कि हमारी लगभग सभी समस्यायें या तो अंग्रेजी शासन के फलस्वरूप अथवा उनकी नीतियों के सीधे परिणाम हैं। भारतीय रियासतें, अल्पसंख्याकों के प्रश्न, विदेशी अथवा स्थानीय निहितस्वार्थ– उद्योगों की कमी कृषि की अनदेखी सामाजिक सेवाओं में अत्यधिक पिछड़ापन और सबसे बड़ी दुख की बात भारतीय लोगों की दरिद्रता....।[9] ऐसा नहीं है कि भारत ने इस दिशा में स्वयं कुछ प्रयत्न न किया हो। 1938 में गठित राष्ट्रीय योजना समिति के प्रयत्नों का ही परिणाम था कि योजना आयोग, एन0 डी0 सी0 जैसी संस्थाओं का गठन हुआ। यदि हम स्वतंत्रता के पश्चात भारत की कृषि विकास की अवस्थाओं पर नजर डालें तो 1950–1966 तक इस काल में कृषि मुख्यरूप से परंपरागत पद्धति पर चलती रही जिसकी विशेषतायें निम्न हैं। 2 अक्टूबर 1952 से सामुदायिक विकास कार्यक्रम आरंभ कर संस्थागत सुधारों को महत्व दिया गया। जिसका प्रारम्भ क्षेत्र नागौर (राजस्थान) था। स्थानीय उपलब्ध साधनों एवं जनसहयोग से कृषि उत्पादकता बढ़ाने के प्रयास, परम्परागत बीजों का प्रयोग, कुछ स्थानों पर विशेष फसलों का उत्पादन, सघन

कृषि वृद्धि, मानसून, सिंचाई इसके प्रमुख बिन्दु थे।

1967 के बाद उच्च किस्म के बीज (एच0 बाई0 वी0) विशिष्ट सिंचाई, सुविधाओं, भूमि संरक्षण के प्रयास, कीटनाशक दवाओं के प्रयोग कृषि विपणन, कृषि उत्पाद एवं वित्त ऋण की उपलब्धता ने 1970 के दशक में कृषि के क्षेत्र में क्रान्तिकारी बदलाव किये। यद्यपि ये प्रयास अनायास ही नहीं हो गये इसके लिये भारत सरकार ने भूमि सुधारों के लिये कई प्रमुख कदम उठाये इसमें प्रमुख कदम था जमींदारी प्रणाली को समाप्त करना। जमींदारी उन्मूलन अधिनियम वी0 20 को लागू कर सरकार ने 150 सालों से चली आ रही इस सामंती प्रथा की प्रतिरूप प्रणाली को समाप्त कर दिया। 1947 में केन्द्र सरकार ने राज्य सरकारों को ये निर्देश दिया कि वे अपने क्षेत्र में इस प्रणाली को समाप्त करें। इसी के अनुसार विभिन्न राज्यों ने इसके विरुद्ध कानून बनाये। जमींदारों ने इस कानून के खिलाफ संविधान के अनुच्छेदों का सहारा लेने की कोशिश की पर 1952 ई0 में उच्चतम न्यायालय ने उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश व बिहार को, कुछ अंशों तक छोड़कर यह कानून लागू कर दिया। इसे ध्यने का कारण बढ़ती भूमि अनियमितायें व खेत मजदूर व दासत्वपर। 1951 में 'कृषि श्रम अनुसंधान समिति' के प्रतिवेदन के अनुसार ग्रामीण जनसंख्या का 30 प्रतिशत खेत मजदूर था।[10]

ऐसा नहीं है कि सरकार ने जमींदारों के प्रति अन्याय किया है। सरकार ने व राज्य विधान मण्डलों ने (अपवाद–कश्मीर) इस विचौलिये वर्ग की समाप्ति हेतु 4 अरब 50 करोड़ रूपये की मुआवजा राशि दी जिससे राज्य सरकारों

का वित्तीय बोझ बढ़ा।

1—उत्तर प्रदेश— 1जुलाई 1952 (संपत्ति का आठ गुना मुआवजा)

2—मध्य प्रदेश— 1951 (एबीलेशन आफ प्रोप्राइटरी) मुआवजा आय के अनुसार

3—बिहार— 1950 (एक्वीजशन आफ जमींदारी एक्ट) मुआवजा 3—20 गुना)

4—प0 बंगाल— एस्टेट एक्वीजीशन एक्ट 1953

5—मद्रास— एस्टेट एवीलीशन एक्ट 1950

इस भूस्वामी विचालिये वर्ग को समाप्त करना अपने आप में से एक बड़ा कदम था। पर, यह इतना क्रान्तिकारी नहीं था कि इच्छित भूमि—सुधार हो सके। इसी असंतोष ने 1970 के दशक में कई जगह किसानों को प्रभावित किया।

इस अंसतोष के खिलाफ 1960—70 के दशक में सरकार व निजी बुद्धिवेन्ताओं ने कृषि को संरचनात्मक परिवर्तन की बात उठाई। पूँजीवादी तरीके से खेती को प्रोत्साहन देना इस काल की विशेषता है। 1969 में देनियल थार्नर व 1970 में अशोक रूद्र ने इसे परिभाषित करके कहा कि किसान यदि किसी को स्वामित्त न देकर, भाड़े के मजदूरों से खेती कराकर, उत्पादन का बड़ा भाग बाजार में लाता है तो यह मानना पड़ेगा कि खेती पूँजीवादी तरीके से हो रही है। पर यह तरीका बाद में काफी विवादित हो गया। इसके अलावा कृषि और अकाल के सम्बन्ध में 1970 के दशक में प्रोफेसर अमर्त्यसेन का अन्वेषण महत्त्वपूर्ण सावित हुआ। जिससे भारत जैसे विकासशील

देश में इस आपदा से निपटने का साधन खोजा गया।

अर्थ व्यवस्था का दूसरा क्षेत्र उद्योग जहाँ स्वतंत्रता के भारत ने सबसे प्रभावी कदम उठाये, एक नियोजित कार्यक्रम का परिणाम था। 15 मार्च 1950 को 'योजना आयोग' का गठन कर तत्कालीन प्रधानमंत्री ने भारत को विकास की नई दिशा दी। तभी से ऐसी परम्परा बन गई कि योजना के लिये ध ान तभी उपलब्ध होगा जब उसे योजना आयोग से स्वीकृति मिल जाये। अब कार्य–सूचियों में अधिक सामंजस्य स्थापित कर वे सब राज्य सरकारें सुसंगठित योजना बनाने लगीं। इस कार्य से योजना में निवेश के कार्यो को महत्व मिल गया। निवेश का यह क्रम आज तक अनवरत जारी है यदि हम 1948 में भारत में विदेशी पूंजी निवेश व आज की निवेश पर तुलना करें तो जमीन आसमान का फर्क है।

1948 में भारत में विदेशी पूँजी निवेश (करोड़ रुपये में)

औद्योगिक पदार्थो का निर्माण	–	719
व्यापार मर्चेन्ट कंपनियाँ	–	643
परिवहन, बिजली आदि	–	312
खनिज निकालना	–	115
चाय, काफी, रबड़ के बगीचे	–	523
अन्य	–	246
कुल	–	2558

स्रोत– Reserve Bank of Indin

कहने का ताप्पर्य योजनाओं ने भारत की आर्थिक दशा को ही बदल दिया। पंचवर्षीय योजनाओं के मूल उद्देश्य उत्पादकता में वृद्धि करना, असमानता कम करना था पर उत्पादनों के साधनों का पूर्ण राष्ट्रीयकरण और सभी उद्योगों को अपने हाथ में ले लेने की नीति बहुत वांछनीय प्रतीत नहीं हुई। इन सारी असमानताओं को ध्यान में रखकर आयोग ने एक मिश्रित अर्थव्यवस्था की सिफारिश की।

1951–1956 के मध्य योजना आयोग ने पहली पंचवर्षीय योजना प्रारम्भ की। इस योजना को पुनरुत्थान योजना भी कहा जाता है। इस योजना के दीर्घकालीन उद्देश्य उच्च आर्थिक विकास की दर प्राप्त करना था इस योजना का मुख्य उद्देश्य 'कृषि विकास' था। 'हेरद्र क्रोमर' माडल नाम से विख्यात इस योजना ने 80 लाख एकड़ भूमि पर सिंचाई, 30 बड़े पुल 636 मील की संपर्क सड़कें, 4000 मील की वर्तमान सड़क सुधार 380 मील की रेल लाइन विस्तार, 10 लाख किलोवाट बिजली का उत्पादन किया।[11] इस पंचवर्षीय योजना के अन्य उद्देश्य थे–

1– राज्य व नागरिक कार्यक्षेत्रों को स्पष्ट करना।

2– राष्ट्रीय आय में 11–12 प्रतिशत की वृद्धि करना। पर वृद्धि 17.5 प्रतिशत हुई।

3– बिजली व सिंचाई हेतु भाखड़ा नागल, हीराकुण्ड, दामोदर घाटी परियोजना

प्रारम्भ हुई।

4– अमेरिका की सहायता से सिंदरी में रासायनिक कारखाना खुला।

5–रेल इंजन हेतु चितरंजन कारखाना व जलपोतों हेतु 'स्टीम नेवीगेसन कारखाना खुला।

6– 1954 में ट्राम्बे में तेल शोधन कारखाना खुला।

कुल मिलाकर पंचवर्षीय योजना के परिणाम उल्लेखनीय रहे।

इसी क्रम में अप्रैल 1956– मार्च 1961 तक योजना आयोग ने द्वितीय पंचवर्षीय योजना का प्रारूप तैयार किया। 'भौतिकवादी योजना' के नाम से विख्यात इस योजना का मूल उद्देश्य तीव्र औद्योगीकरण था। इस 'महालनोविस' माडल कहा जाता है। दूसरी पंचवर्षीय योजना के उद्देश्यों का विवरण निम्न है।

1–राष्ट्रीय आय में 25 प्रतिशत वृद्धि

2–आधारभूत व भारी उद्योगों पर बल

3– रोजगार के अवसरों में बढ़ोत्तरी

4–आय तथा धन की असमानताओं में कमी करना

5– वड़े पैमाने पर औद्यौगीकरण हेतु राउरकेला, भिलाई, दुर्गापुर में कारखाने का निर्माण।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में रेलवे को 9 अरब रूपया और सड़कों को 2 अरब 46 करोड़ रूपया स्वीकृत किया गया। कुल मिलाकर सरकार दूसरी

योजना को सरकारी क्षेत्र के 48 अरब रुपये में ही पूरा करना चाहता था।

तीसरी पंचवर्षीय योजना की अवधि अगस्त 1961 से मार्च 1966 तक थी। इस योजना का मुख्य उद्देश्य 'आत्मनिर्भर बनाना' था। पर 2 बाहरी घटनाओं ने भारत की इस आकांक्षा पर पानी फेर दिया इससे भारत ने अपनी रक्षा क्षमता को बढ़ाने की आवश्यकता महसूस की। ये 2 कारण थे–

1–1962 भारत चीन सीमा विवाद

2–1965 भारत पाक विवाद

यद्यपि इस योजना के पिछड़ी 2 योजनाओं से बड़ा बनाया गया पर इसमें फेरबदल करने पड़े। इस योजना ने अपने लक्ष्य राष्ट्रीय आय में प्रतिवर्ष 5 प्रतिशत वृद्धि करना, राष्ट्रीय आय में वृद्धि का लक्ष्य 5.6 प्रतिशत व्यक्तिगत आय में वृद्धि का लक्ष्य 2–3 प्रतिशत निर्धारित किया। तीसरी योजना में कृषि विकास के लिये 12 अरब 80 करोड़ रूपया स्वीकृत हुआ था। इस योजना से यह स्पष्ट हो गया कि भारतीय अर्थव्यवस्था में योजना के प्रति उदासीनता, जनसंख्या में असाधारण वृद्धि व बेरोजगारी जैसी 3 प्रमुख समस्यायें घातक प्रतिफल दे रही है।

तीसरी योजना के खत्म होने पर चौथी के लिए विशेष उत्साह न रहा। आपातकालीन एक वर्षीय योजना के बाद 1969 से 1974 के लिये यह योजना बनी जिसमें नीचे से नियोजन, 14 वाणिज्यक बैकों का राष्ट्रीयकरण किया गया और व्यापार संतुलन भारत के पक्ष में रहा।

1951 से 1970 तक योजनाओं पर दृष्टि डालने से इस आयोग की क्षमता का आकलन होता है वास्तव में भारत तेज आर्थिक विकास की ओर अग्रसर था। इसके साथ साथ विशुद्ध औद्यौगिक नीति पर दृष्टिपात करें तो स्वातंत्र्योत्तर भारत ने इस दिशा में भी नीतियों का निर्माण किया। स्वतंत्रता के समय देश औद्योगिक संकट से गुजर रहा था अतः भारत सरकार ने 1947 में औद्योगिक सम्मेलन बुलाया। इसके बाद के प्रमुख चरण निम्न प्रकार हैं।

1—औद्योगिक नीति प्रस्ताव (1948) 6 अगस्त 1948 को बनी यह नीति निजी व सार्वजनिक क्षेत्र के स्पष्ट बँटवारों से संवाहीत है।

2—औद्योगिक नीति प्रस्ताव (1956) समाजवादी ढंग से समाज की स्थापना की विचारधारा (1948) औद्योगिक को इसमें बदला गया— 30 अप्रैल 1956

3—औद्योगिक लाइसेन्स प्रणाली—

4—उद्योग (विकास एवं नियमन) अधिनियम —8 मई 1952

5—हजारी रिपोर्ट— 1967

6—दत्त समिति रिपोर्ट— 1969 (सुविमलदत्त, लाइसेंस प्रणाली जाँच हेतु)

7—औद्योगिक लाइसेंस नीति 18 फरवरी 1970

8—सर्वोदय योजना— 1950 जय प्रकाश नारायण

कुल मिलाकर भारत का आर्थिक विकास मिश्रित अर्थव्यवस्था37 द्वारा पूरा किया जाना था। योजनाओं को रणनीति, लक्ष्य, साधन, संगठन का अधि

क महत्व था। इसे संविधान की समवर्ती सूची में स्थान दिया गया। इस पंचवर्षीय योजनाओं ने वास्तव में भारत के तेज आर्थिक विकास के द्वार खोल दिये। पुराने युग से नये युग में प्रवेश करते समय कठिनाइयों का बोझ पड़ना स्वाभाविक था। लेकिन योजनाओं का लक्ष्य बेहतर आर्थिक भविष्य था। यदि देश की आबादी अनुपात के हिसाब से ठीक–ठीक हो तो समृद्धि निश्चित हो सकती है। इसी पर भारत की अर्थव्यवस्था का भविष्य निर्भर करता है।

कृषि, उद्योग, व अन्य क्षेत्रों में विभिन्न कार्यक्रमों, योजनाओं व नीतियों का ही परिणाम था कि 1962, 1965, 1971 के युद्ध की विभीषिका को झेलकर भारत निरंतर विकास के पथ पर गतिशील है। यह परिणाम मात्र पन्नों पर ही नहीं है यदि हम निरंतर प्रगतिशील न होकर, परम्परागत बने रहे होते तो आज भारत की औसत आयु 1941–51 की औसत आयु से लगभग 2 गुनी न होती।

आइये अब विश्वविद्यालयीन छात्राओं के परिवार के आय के बारे में बात करें तो हम पायेगी कि भारत में प्रत्येक वर्ग के व्यक्ति के आय का कोई न कोई साधन या माध्यम निश्चित है। प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी माध्यम से जीवोपार्जन के लिए आय का साधन अपनाये हुये है फिर वह मजदूरी हो, नौकरी हो, अध्यापन हो या फिर कृषि कार्य। हम यहाँ परिवार की मासिक आय पर विचार करते हो पता चलता है। तालिका क्रमांक 10 देखें।

तालिका क्रमांक 4.1

परिवार की मासिक (प्रति व्यक्ति) आय के आधार पर निर्दश का वर्गीकरण

धर्म	500 से कम	500से 1000	1001 से 1500	1501 से 2000	2000 से अधिक	कुल
हिन्दू	1%	5%	10%	20%	30%	66%
जैन		2%	3%	10%	6%	21%
इस्लाम			2%	3%	2%	7%
ईसाई		2%	3%		1%	6%
कुल	1%	9%	18%	33%	39%	100%

तालिका क्रमांक 4.1 में 100 निदर्शित छात्राओं के परिवारों को 500 रु0 से कम मासिक आय से लेकर 2000 रु0 से अधिक आय वाले विभिन्न समूहों में वगीकृत किया है। जिसमें हिन्दु परिवारों की कुल संख्या 66 प्रतिशत है, इनमें 500 से कम आय वाले परिवारों का प्रति 1प्रतिशत, 500 से 1000 आय वर्ग के 5 प्रतिशत, 1001 से 1500 के 10 प्रतिशत, 1501 से 2000 आय वर्ग के 20 प्रतिशत तथा 2000 से अधिक आय वर्ग के परिवारों का प्रतिशत 30 है। जैन परिवारों की कुल संख्या 21 है जिसमें 500 से 1000 आय वर्ग के 2 प्रतिशत, 1001 से 1500 तक के 3 प्रतिशत, 1501 से 2000 तक के 10 प्रतिशत तथा 2000 से अधिक के 6 प्रतिशत परिवार सम्मिलित है। इस्लाम धर्म के परिवारों की कुल संख्या 7 प्रतिशत है। जिसमें 1001 से 1500 तक के 2 प्रतिशत, 1501 से 2000 तक के 3 प्रतितशत, 2000 से अधिक के आर्य वर्ग के परिवारों की संख्या 2 प्रतिशत है। जबकि ईसाई परिवारों की कुल संख्या 6 प्रतिशत है, 500 से 1000 तक के 2 प्रतिशत, 1001 से 1500 के 3 प्रतिशत तथा 2000 से अधिक वर्ग के परिवारों की संख्या 1 प्रतिशत है।

इस प्रकार विभिन्न जाति एवं धर्म की 500 रु0 से कम तक मासिक आय वाले

परिवारों का 1 प्रतिशत, 500 से 1000 रु0 मासिक आय वाले 9 प्रतिशत, 1001 से 1500 रु0 मासिक आय वाले 18 प्रतिशत, 1501 से 2000 रु0 मासिक आय वाले 33 प्रतिशत 2000 रु0 से अधिक मासिक आय वाले परिवारों का प्रतिशत 39 है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1–चोपड़ा, पुरी, दास, भारत का सामाजिक सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास, पृ0 77

2–हंटर, डब्ल्यू, डब्ल्यू, हिंद इंडिया मुसलमान्स (1969)

3–शुक्ला आर. एल., आधुनिक भारत का इतिहास, पृ0 343

4–शुक्ला आर. एल., आधुनिक भारत का इतिहास, पृ0 344

5–ग्रोवर यशपाल, आधुनिक भारत का इतिहास, पृ0 282

6–ग्रोवर यशपाल, आधुनिक भारत का इतिहास, पृ0

7–बी. एल. ग्रोवर, औपनिवेशिक शासन के अधीन भारतीय अर्थव्यवस्था, पृ0 448

8–विपिन चन्द्रा, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, पेज न0 399

9–जवाहर लाल नेहरू, डिस्करवी आफ इण्डिया, पेज 284

10–सव्यसाची, भट्टाचार्य, आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास, पेज 72

11–पुरी, दास, चोपड़ा– भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, पेज 219
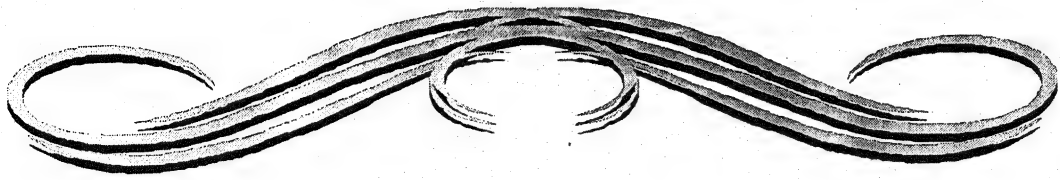
अध्याय पंचम

विश्वविद्यालयी छात्राओं
का
स्त्री स्वातन्त्र्य पर दृष्टिकोण
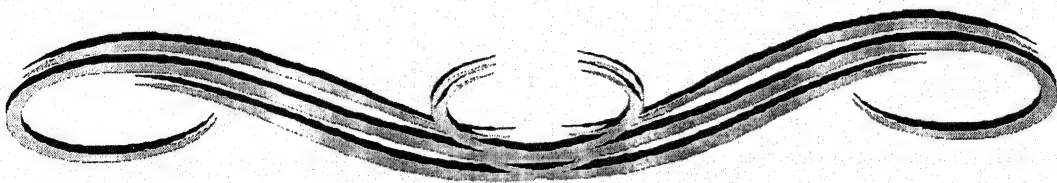
पंचम अध्याय

आज के आधुनिक परिवेश में युवतियों की बराबरी दर्जे की बात आम है। जबकि आज की युवतियाँ युवकों से आगे निकलने की होड़ में शामिल है। मनोवैज्ञानिक डॉ0 अरुण कुमार बताते है कि लड़कियों को लड़कों जैसा बनकर रहना आजकल कुछ ज्यादा ही अच्छा लगने लगा है है मेरे हिसाब से इसके पीछे दो बड़े कारण हैं। पहला लड़की का किसी मेल कैरेक्टर से प्रभावित होना। वह उसका पिता, चाचा, पड़ोसी या कोई सेलिब्रिटी भी हो सकता है। जैसे मान लीजिए, किसी को जॉन अब्राहम वेहद पसन्द है, तो वह उसके जैसा बिहेव करना या दिखना शुरू कर दती है। दूसरा, यदि किसी लड़की को पुरुषों ने नुकसान पहुँचा हो तो भी वह उन्हीं के जैसा व्यवहार करने लगती है, सिर्फ यह दिखाने के लिए कि मैं भी स्ट्रांग हूँ। डॉ. पी एस दास की सोच इस मामले में थोड़ी अलग है। उनका कहना है कि ये सिर्फ जगाने का चलन है। और जब चलन की बयार बहती है तो कइयों को साथ लपेटती जाती है। यही वजह है कि लड़कियाँ लड़को की तरह व्यवहार करने लगी है।

बराबरी के दर्जे की बात अब पुरानी हो चली है। अब तो जमाना और भी तेज चलने का है और शायद् यही वजह है कि इन दिनों लड़कियाँ बिन्दास स्टाइल में रहने और खाने–पीने तो लगी ही हैं यहाँ तक कि व्यवहार भी लड़को की तरह करने लगी है।

लड़किया पहले से ज्यादा ओपन हो गयी है। अब जिम को ही लीजिये कुछ साल पहले तक यहाँ पुरुषों को एकछत्र राज माना जाता था, लेकिन अब स्थिति इसके एकदम उलट है। लड़कियाँ भी उतनी ही तल्लीनता और मेहनत के साथ

वर्कआउठ करती नजर आती हैं, जितने कि लड़के। कह सकते हैं कि लड़कियाँ अब नाजुक–सी छुईमुई वाली इमेज को तोड़ रही हैं।

इस बारे मे फिटनेस एक्सपर्ट डॉ. सोम तुगनैट बताते हैं, लड़कियों की संख्या जिस में बढ़ती ही जा रही है। इसके पीछे वजह साफ है कि वे पूरी तरह से फिट दिखना चाहती है। आपको शायद हैरानी हो कि जिम में जाने वाली कुछ लड़कियाँ तो लड़कों की ही तरह मसल्स बनाने की कोशिश भी करने लगी हैं। उन्हें लड़कों जैसा दिखना पसन्द है। तो वहीं ग्रांड स्लेम (फिटनेस उत्पाद बनाने वाली कम्पनी) के एम. डी. रमन सूद का कहना है, 'लड़कयाँ अब इस धारणा को तोड़ना चाहती है कि वे शारीरिक रूप से किसी से कमजोर हैं। अगर वे फिअ होंगी तो और ज्यादा बेहतर तरीके से काम कर पाएंगी। इससे उन्हें तरक्की मिलेगी और वे सबसे आगे निकल जाएंगी।''

हम भी बाइक चला सकती है। दूसरों से अलग दिखने की चाहत लड़कियों में बाइक का क्रेज तेजी से बढ़ा रही है। वैसे उनके शौक को पूरा करने के लिए कई कंपनियों से स्कूटी, काइनेटिक सरीखे टू व्हीलर मार्केट में उतारे हैं, पर इन दिनों उनके दिमाग पर बाइक ही छाई हुई है। उन्हें हैवी बाइक के बजाय स्प्लैंडर, हीरो–होंडा, पल्सर ज्यादा भा रही है। कुछ के लिए बाइक चलाना अपने ईगो को संतुष्ट करना है, तो कुछ के लिए दूसरों के सामने अपनी एक अलग पर्सनेलिटी का रौब जमाना भी है। यह क्रेज कहाँ जाकर थमेगा, कहा नहीं जा सकता।

हर क्षेत्र में कड़ी टक्कर दे रही महिलाओं को नाइट ड्यूटी से भी परहेज नहीं। अब कॉल सेंटर और प्रिंट व इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में काम करने वाली लड़कियों को ही लीजिए। वह धड़ल्ले से और काफी संख्या में नाइट ड्यूटीकरती हैं, जबकि पहले ऐसा नहीं था। पहले संचार विभाग या एयरपोर्ट सरीखी सरकारी

नौकरियों या होटल इंडस्ट्री में ही लड़कियाँ नजर आती थीं। नाइट ड्यूटी करने वाली महिलाओं का मानना कि जब पुरुष नाइट ड्यूटी कर सकते हैं तो हम क्यों नहीं?

लड़कियाँ पहले से ज्यादा ओपन हो गयी है। वे हर क्षेत्र में काम कर रही है। लड़कों के साथ उनका इंटरैक्शन पहले से ज्यादा बढ़ गया है इसलिए वे बिल्कुल उस तरह की लैंग्वेज बोलती हैं, जिस तरह लड़के। 'अरे यार', 'चल यार', 'देख लेंगे', 'उसकी तो.........' जैसे शब्दों के प्रयोग के साथ वे अब उन शब्दों का इस्तेमाल से भी नहीं चूकतीं, जो भाषा में असभ्य माने जाते हैं। दूसरा, वे हर विषय पर खुलकर बात करती हैं। उनकी भाषा में किसी किस्म का शर्मीलापन व छिपाव नजर नहीं आता, क्योंकि उन्हें यह महसूस होने लगा है कि कहीं अपनी भोली–भाली इमेज की वजह से वह प्रोफेशनली दूसरों से पिछड़ न जायें।

लड़कियों का हेयर स्टाइल भी लड़कों जैसा हो गया है। यही वजह है कि छोटे बाल रखना ट्रेंडी माना जा रहा है खुद हेयर एक्सपर्ट जावेद हबीब भी यही मानते है, 'दुनिया ग्लोबली चेंज हो रही है। सीमाएँ खत्म हो गई हैं। प्रोफेशनलिज्म बढ़ा है और किसी के पास इतना समय नहीं है कि वह बालों को ही संभालता फिरे। जिस तरह लड़कों के बाल छोटे होते हैं और वे उन्हें आसानी से मेंटेन कर लेते हैं, उसी तरह लड़कियाँ भी छोटे बाल रखने लगी हैं, ताकि वह मोर यंग और प्रोफेशनल लिख संके। स्लीक, मशरूम, वैज और चॉट कट्स के अलावा कई कट्स ऐसे भी हैं, जिनमें उनका लुक लड़की जैसा ही दिखता है पर बाल छोटे होते हैं।

लड़कियों को रफ–टफ इमेज ज्यादा अट्रैक्ट कर रही है। यही वजह हैं कि वह खुद भ टॉमबॉय की तरह ही रहना चाहती हैं। इस बारे में डिजाइनर मंजू ग्रोवर

बताती है, 'लड़कियों की पसंद में तेजी से बदलाव देखा जा रहा है। लड़कों की तरह ड्रेसअप करना उन्हें भाने लगा है। जींस–टी–शर्ट और बेल्ट के साथ बूट पहने वह ज्यादा दिख रहीं है। इसके पीछे वजह सिर्फ इतनी सी है कि वे इमसें ज्यादा कंफर्टेबल महसूस करती हैं।'

बदलते परिवेश में आज की लड़यिकों ने नवीन सोपानों को छुआ है फिल्मों ने, टी0 वी0, औद्योगिक क्षेत्र, खेल, शिक्षा के क्षेत्र में समग्र रूप से उन्नति की है।

किन्तु चिन्ता जनक बात है कि लड़कियों ने इस स्वतंत्र्यता का गलत उपयोग करना प्रारम्भ कर दिया है। आजकल लगातार समाचार पत्रों में यह पढ़ने को मिलता है कि 18 बर्षीय युवति अपने प्रेमी के साथ भाग गयी। आज होटल या गेस्ट हाउस के रूम नम्बर गगग में एक प्रेमी और प्रेमिका सैक्स इंकैडिल में पकड़े गये। तो यह चिन्ता जनक न होगा। उन अभिभावकों के ह्रदय पर क्या असर पड़ता होगा जिन्होंने अपनी लडत्रकियों पर किसी प्रकार का दबाब या सीमाओं में नहीं बधा। उनके ह्रदस की परिस्थिति को क्या लड़कियाँ समझ सकती है।

और जब से मोबाइल फोन चले है तब से यह स्थिति और जटिल हो गयी है। आम तौर पर युवक युवतियाँ मोबाइल पर वार्ता करम अश्लील सन्देशों का आदान–प्रदान करते है और अश्लील फोटो भेजते देखे गये है।

वहीं पुरुषों के प्रति एक "नया सर्वे कहता है सेक्स" "क्या आप जानते हैकि जब किसी पुरुष की किसी महिला से पहली मुलाकात होती है तो सबसे पहले पुरुष के मन में क्या विचार आता है? नए शोध पर भरोसा करें तो पुरुष पहली ही मुलाकात में महिला के साथ यौन संबंध की बात सोचने लगते हैं। शोध के मुताबिक शारीरिक आकर्षण मर्दों को कहीं अधिक प्रभावित करता है। महिलाओं के मन में भी पहली मुलाकात में सेक्स का विचार उठता है लेकिन ऐसी महिलाओं की

तादाद काफी कम है। शोधकर्ता मॉरिस लेवेस्क और उनके दूसरे सहयोगी शोधकर्ताओं के मुताबिक अधिकतर पुरुष पहली मुलाकात में ही अपने हाव–भाव से यौन चेष्टा का इजहार कर देते है। कुछ पुरुष तो खुलेआम अपनी इस इच्छा का इजहार करने से नहीं चूकते। शोधकर्ताओं के मुताबिक कई बार मुलाकात के दौरान वे बातचीत को सेक्स से केन्द्रित कर महिला की झिझक दूर करने की कोशिश करते हैं ताकि यौन सम्बन्धों की बात पर सहमति बन सके। इस शोध के पीछे महिलाओं और पुरुषों की यौन चेष्टा का अध्ययन करने का उद्देश्य छिपा था। साथ ही इसके पीछे स्त्रीत्व एवं पुरुषत्व दोनोंका आकलन करना भी था इस शोध के तहत शाधकर्ताओं ने एक दूसरे के लिए अजनबी रहे पुरुषों और महिलाओं को मेज पर आमने–सामने बिठाया। उन्हें पाँच मिनट तक एक दूसरे से घुलने–मिलने का मौका दिया गया। शोधकर्ताओं ने उन्हें कॉलेज जीवन के सकारात्मक और नकारात्मक पहलुओं के बारे में बातचीत करने की छूट दी। इन जोड़ियों को अलग करने के बाद इनका मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया गया। पुरुषों से उनकी अज्ञात क्षणिक पार्टनर के बारे में पूछा गया। अधिकतर ने अपनी महिला पार्टनर के यौन आकर्षण की चर्चा की। अधिकांश ने उनकी मानसिक सोच कम, शारीरिक आकर्षण की अधिक चर्चा की।"[1]

अपने शोध में मैने भी कुछ ऐसी ही चर्चा लड़कियों से की हैं। जैसे शादी के पहले वह यौन सम्बन्ध बनाना चाहती है या नहीं। बना चुकी है या नहीं। शादी से पहले यौन सम्बन्ध के बारे मे उनकी अपनी व्यक्तिगत राय क्या है। सौन्दर्य प्रसाधन का प्रयोग मात्र उपयोग या आकर्षण का केन्द्र है। सौन्दर्य प्रसाधनों का प्रयोग शिक्षा सत्र में करके आना चाहिए या नहीं। कॉलेज समय में परिधान कैसा पहन कर आना चाहिए। आदि नाना प्रकार के प्रश्न किये है।

तालिका क्रमांक 5.1

शादी से पहले लड़को से शारीरिक सम्बन्ध बनाने चाहिये या नहीं

(संकाय)	हाँ	नहीं	अनिश्चित	कुल
विज्ञान	9	35	2	46
वाणिज्य	2	12	0	14
कला	10	20	0	30
तकनीक	1	8	1	10
कुल	22	75	3	100

अतः तालिका क्रमांक 5.1 से यह ज्ञात होता है कि विज्ञान संकाय की 9 प्रतिशत युवतियाँ विवाह से पूर्व युवकों से यौन सम्बन्ध बनाये हुए है। किन्तु 35 प्रतिशत नहीं और 2 प्रतिशत अनिश्चित है। वाणिज्य संकाय की 2 प्रतिशत युवतियाँ विवाह से पूर्व युवकों से यौन सम्बन्ध बनाये हुए है, किन्तु 12 प्रतिशत नहीं। कला संकाय की 10 प्रतिशत युवतियाँ विवाह से पूर्व युवकों से यौन सम्बन्ध बनाये हुए है, किन्तु 20 प्रतिशत नहीं। तकनीक संकाय में 1 प्रतिशत युवतियाँ विवाह के पूर्व युवकों से यौन सम्बन्ध बनाये हुये है किन्तु 8 प्रतिशत नहीं और 1 प्रतिशत अनिश्चित है।

तालिका क्रमांक 5.2

एड्स के बारे में जानकारी है या नहीं

(संकाय)	हाँ	नहीं	कुल
विज्ञान	48%	6%	54%
वाणिज्य	11%	3%	14%
कला	11%	5%	16%
तकनीकि	13%	3%	16%
कुल	83%	17%	100%

तालिका क्रमांक : 5.2 में निदर्शित छात्राओं से जानने का प्रयत्न किया कि वे एड्स के बारे जानती है या नहीं । विज्ञान संकाय की कुल 54% छात्राओं में से 48% उत्तर 'हाँ' तथा 6% का 'नहीं' है। वाणिज्य संकाय की कुल 14% छात्राओं में से 11% उत्तर 'हाँ' तथा 3% का 'नहीं' है। कला संकाय की कुल 16% छात्राओं में से 11% उत्तर 'हाँ' तथा 5% का 'नहीं' है। तकनीकि संकाय की कुल 16% छात्राओं में से 13% उत्तर 'हाँ' तथा 3% का 'नहीं' है।

इस प्रकार विभिन्न संकायों की 100% छात्राओं में से 83% का उत्तर 'हॉ' तथा 17% छात्राओं का उत्तर 'नहीं' है।

तालिका क्रमांक : 5.3

यौन सम्बन्ध बनाते समय कण्डोम का प्रयोग करेगी या नहीं

(संकाय)	हाँ	नहीं	अनिश्चित	कुल
विज्ञान	45%	3%	6%	54%
वाणिज्य	11%	1%	2%	14%
कला	13%		3%	16%
तकनीकि	13%	1%	2%	16%
कुल	82%	5%	13%	100%

तालिका क्रमांक : 5.3 में निदर्शित छात्राओं से ज्ञात करने की कोशिश की वह यौन सम्बन्ध बनाते समय कण्डोम का प्रयोग करेगी या नहीं। विज्ञान संकाय की कुल 54% छात्राओं में से 45% उत्तर 'हाँ' तथा 6% का 'अनिश्चित' है। वाणिज्य संकाय की कुल 14% छात्राओं में से 11% उत्तर 'हाँ' तथा 1% का 'नही' है तथा 2% छात्राओं का उत्तर अनिश्चित है। कला संकाय की कुल 16% छात्राओं में से 13% उत्तर 'हाँ' तथा 3% का 'अनिश्चित' है। तकनीकि संकाय की कुल 16% छात्राओं में से 13% उत्तर 'हाँ' तथा 1% का 'नही' तथा 2% का उत्तर अनिश्चित है।

इस प्रकार विभिन्न संकायोंकी 100% छात्राओं में से 82% का उत्तर 'हाँ' तथा 5% छात्राओं का उत्तर 'नही' तथा 13% छात्राओं का उत्तर अनिश्चित है।

तालिका क्रमांक : 5.4

बाइक चलाना चाहेगी या नहीं

(संकाय)	हाँ	नहीं	अनिश्चित	कुल
विज्ञान	48%	3%	3%	54%
वाणिज्य	13%	1%		14%
कला	11%	1%	4%	16%
तकनीकि	13%		3%	16%
कुल	85%	5%	10%	100%

तालिका क्रमांक : 5.4 के अनुसार हमने यह जानने की कोशिश की है कि आज कल की रफ एण्ड टफ लाइफ में वह वाइक चलाना चाहेगी या नहीं। अतः उक्त तालिका से यह परिणाम निकलता है कि विज्ञान संकाय की कुल 54% छात्राओं में से 48% उत्तर 'हाँ' तथा 3% का उत्तर 'नहीं' तथा 3% 'अनिश्चित' है। वाणिज्य संकाय की कुल 14% छात्राओं में से 13% उत्तर 'हाँ' तथा 1% का 'नहीं' है। कला संकाय की कुल 16% छात्राओं में से 11% उत्तर 'हाँ' तथा 1% का 'नहीं' तथा 4% का उत्तर 'अनिश्चित' है। तकनीकि संकाय की कुल 16% छात्राओं में से 13% उत्तर 'हाँ' तथा 3% का उत्तर 'अनिश्चित' है।

इस प्रकार विभिन्न संकायोंकी 100% छात्राओं में से 85% का उत्तर 'हाँ' तथा 5% छात्राओं का उत्तर 'नहीं' तथा 10% छात्राओं का उत्तर अनिश्चित है।

तालिका क्रमांक :5.5

महाविद्यालय में सौन्दर्य प्रसाधन का प्रयोग करना चाहिए या नहीं।

(संकाय)	हाँ	नहीं	अनिश्चित	कुल
विज्ञान	52%		2%	54%
वाणिज्य	14%			14%
कला	16%			16%
तकनीकि	16%			16%
कुल	98%		2%	100%

तालिका क्रमांक : 5.5 में निदर्शित छात्राओं से जानने का प्रयास किया कि क्या महाविद्यालय में सौन्दर्य प्रसाधन का प्रयोग करना चाहिए या नहीं। विज्ञान संकाय की कुल 54% छात्राओं में से 52% उत्तर 'हाँ' तथा 2% का 'अनिश्चित' है। वाणिज्य संकाय की कुल 14% छात्राओं का उत्तर 'हाँ' है। कला संकाय की कुल 16% छात्राओं का भी उत्तर 'हाँ' है।

इस प्रकार विभिन्न संकायों की 100% छात्राओं में से 98% का उत्तर 'हाँ' तथा 2% छात्राओं का उत्तर अनिश्चित है।

तालिका क्रमांक : 5.6

कक्षा में पुरुष मित्र के साथ बैठना चाहिए या नहीं।

(संकाय)	हाँ	नहीं	अनिश्चित	कुल
विज्ञान	35%	13%	6%	54%
वाणिज्य	8%	4%	2%	14%
कला	7%	5%	4%	16%
तकनीकि	8%	5%	3%	16%
कुल	58%	27%	15%	100%

तालिका क्रमांक : 5.6 में निदर्शित छात्राओं से यह ज्ञात किया है कक्षा में पुरुष मित्रों के साथ बैठना चाहिए या नहीं। विज्ञान संकाय की कुल 54% छात्राओं में से 35% उत्तर 'हाँ', 13% का नहीं तथा 6% का 'अनिश्चित' है। वाणिज्य संकाय की कुल 14% छात्राओं में से 8% उत्तर 'हाँ' तथा 4% का 'नहीं' है तथा 2% छात्राओं का उत्तर अनिश्चित है। कला संकाय की कुल 16% छात्राओं में से 7% उत्तर 'हाँ' तथा 5% का 'नहीं' तथा 4% का उत्तर 'अनिश्चित' है। तकनीकि संकाय की कुल 16% छात्राओं में से 8% उत्तर 'हाँ' तथा 5% का 'नहीं' तथा 3% का उत्तर अनिश्चित है।

इस प्रकार विभिन्न संकायों की 100% छात्राओं में से 58% का उत्तर 'हाँ' तथा 27% छात्राओं का उत्तर 'नहीं' तथा 15% छात्राओं का उत्तर अनिश्चित है।

तालिका क्रमांक : 5.7

बाइक पर दोनों और पैर करके बैठना चाहिए या नहीं

(संकाय)	हाँ	नहीं	अनिश्चित	कुल
विज्ञान	45%	3%	6%	54%
वाणिज्य	11%	1%	2%	14%
कला	13%	.	3%	16%
तकनीकि	13%	1%	2%	16%
कुल	82%	5%	13%	100%

तालिका क्रमांक : 5.7 में हमने यह जानने कि कोशिश की है कि बाइक पर दानों और पैर करके बैठना चाहिए या नहीं। विज्ञान संकाय की कुल 54% छात्राओं में से 45% उत्तर 'हाँ' तथा 6% का 'अनिश्चित' है। वाणिज्य संकाय की कुल 14% छात्राओं में से 11% उत्तर 'हाँ' तथा 1% का 'नहीं' है तथा 2% छात्राओं का उत्तर अनिश्चित है। कला संकाय की कुल 16% छात्राओं में से 13% उत्तर 'हॉ' तथा 3% का 'अनिश्चित' है। तकनीकि संकाय की कुल 16% छात्राओं में से 13% उत्तर 'हाँ' तथा 1% का 'नहीं' तथा 2% का उत्तर अनिश्चित है।

इस प्रकार विभिन्न संकायोंकी 100% छात्राओं में से 82% का उत्तर 'हाँ' तथा 5% छात्राओं का उत्तर 'नहीं' तथा 13% छात्राओं का उत्तर अनिश्चित है।

तालिका क्रमांक : 5.8

एक से अधिक पुरुष मित्र बनाना पसंद करेगी

(संकाय)	हाँ	नहीं	अनिश्चित	कुल
विज्ञान	40%	12%	2%	54%
वाणिज्य	8%	2%	4%	14%
कला	11%	3%	2%	16%
तकनीकि	10%	5%	1%	16%
कुल	69%	22%	9%	100%

तालिका क्रमांक : 5.8 में हमने यह जानने की कोशिक की है कि क्या वह एक से अधिक पुरुष मित्र बनाना पसन्द करेगी । विज्ञान संकाय की कुल 54% छात्राओं में से 40% उत्तर 'हाँ', 12% का नहीं तथा 2% का 'अनिश्चित' है। वाणिज्य संकाय की कुल 8% छात्रओं का उत्तर 'हाँ' 2% नहीं तथा 4% का अनिश्चित है। कला संकाय की कुल 11% छात्राओं का उत्तर 'हाँ' है 3% नहीं तथा 2% अनिशिचित है। तकनीकि संकाय की कुल 16% छात्राओं में से 10% उत्तर 'हाँ' 5% का नहीं तथा 1% का उत्तर अनिश्चित है।

इस प्रकार विभिन्न संकायों की 100% छात्राओं में से 69% का उत्तर 'हाँ', 22% नहीं तथा 9% छात्राओं का उत्तर अनिश्चित है।

तालिका क्रमांक : 5.9

बारात में पुरुष मित्रों के साथ नाचना पसन्द करेगी

(संकाय)	हाँ	नहीं	अनिश्चित	कुल
विज्ञान	35%	6%	13%	54%
वाणिज्य	8%	4%	2%	14%
कला	7%	4%	5%	16%
तकनीकि	8%	3%	5%	16%
कुल	58%	17%	25%	100%

तालिका क्रमांक : 5.6 में निदर्शित छात्राओं से यह ज्ञात किया है कक्षा में पुरुष मित्रों के साथ बैठना चाहिए या नहीं। विज्ञान संकाय की कुल 54% छात्राओं में से 35% उत्तर 'हाँ', 6% का नहीं तथा 13% का 'अनिश्चित' है। वाणिज्य संकाय की कुल 14% छात्राओं में से 8% उत्तर 'हाँ' तथा 4% का 'नहीं' है तथा 2% छात्राओं का उत्तर अनिश्चित है। कला संकाय की कुल 16% छात्राओं में से 7% उत्तर 'हाँ' तथा 4% का 'नहीं' तथा 5% का उत्तर 'अनिश्चित' है। तकनीकि संकाय की कुल 16% छात्राओं में से 8% उत्तर 'हाँ' तथा 3% का 'नहीं' तथा 5% का उत्तर अनिश्चित है।

इस प्रकार विभिन्न संकायों की 100% छात्राओं में से 58% का उत्तर 'हाँ' तथा 17% छात्राओं का उत्तर 'नहीं' तथा 25% छात्राओं का उत्तर अनिश्चित है।

तालिका क्रमांक : 5.10

देर रात तक बाहर घूमना पसन्द करेगी या नहीं

(संकाय)	हाँ	नहीं	अनिश्चित	कुल
विज्ञान	48%	3%	3%	54%
वाणिज्य	10%	1%	3%	14%
कला	10%	2%	4%	16%
तकनीकि	8%	5%	3%	16%
कुल	76%	11%	13%	100%

तालिका क्रमांक : 5.10 के माध्यम से यह जानने की कोशिश की है देर रात तक बाहर घूमना पसन्द करेगी या नहीं। विज्ञान संकाय की कुल 54% छात्राओं में से 48% उत्तर 'हाँ' तथा 3% का उत्तर 'नहीं' तथा 3% 'अनिश्चित' है। वाणिज्य संकाय की कुल 14% छात्राओं में से 10% उत्तर 'हाँ', 1% का 'नहीं' तथा 3% अनिश्चित है। कला संकाय की कुल 16% छात्राओं में से 10% उत्तर 'हाँ' तथा 2% का 'नहीं' तथा 4% का उत्तर 'अनिश्चित' है। तकनीकि संकाय की कुल 16% छात्राओं में से 8% उत्तर 'हाँ', 5% नहीं तथा 3% का उत्तर 'अनिश्चित' है।

इस प्रकार विभिन्न संकायोंकी 100% छात्राओं में से 76% का उत्तर 'हाँ' तथा 11% छात्राओं का उत्तर 'नहीं' तथा 13% छात्राओं का उत्तर अनिश्चित है।

तालिका क्रमांक : 5.11

इण्टरनेट के माध्यम से कामुक चित्र देखना पसन्द करेगी

(संकाय)	हाँ	नहीं	अनिश्चित	कुल
विज्ञान	34%	18%	2%	54%
वाणिज्य	8%	4%	2%	14%
कला	10%	6%	%	16%
तकनीकि	8%	6%	2%	16%
कुल	60%	34%	6%	100%

तालिका क्रमांक : 5.10 के माध्यम से यह जानने की कोशिश की है कि क्या वह इण्टरनेट के माध्यम से कामुक चित्र देखना पसन्द करेगी। विज्ञान संकाय की कुल 54% छात्राओं में से 34% उत्तर 'हाँ' तथा 18% का उत्तर 'नहीं' तथा 2% 'अनिश्चित' है। वाणिज्य संकाय की कुल 14% छात्राओं में से 8% उत्तर 'हाँ', 4% का 'नहीं' तथा 2% अनिशिचित है। कला संकाय की कुल 16% छात्राओं में से 10% उत्तर 'हाँ' तथा 6% का 'नहीं' है। तकनीकि संकाय की कुल 16% छात्राओं में से 8% उत्तर 'हाँ', 6% नहीं तथा 2% का उत्तर 'अनिश्चित' है।

इस प्रकार विभिन्न संकायोंकी 100% छात्राओं में से 60% का उत्तर 'हाँ' तथा 34% छात्राओं का उत्तर 'नहीं' तथा 6% छात्राओं का उत्तर अनिश्चित है।

तालिका क्रमांक : 5.12

पुरुष मित्र के साथ एक कमरे में रहना पसन्द करेगी

(संकाय)	हाँ	नहीं	अनिश्चित	कुल
विज्ञान	48%	3%	3%	54%
वाणिज्य	10%	1%	3%	14%
कला	10%	2%	4%	16%
तकनीकि	8%	5%	3%	16%
कुल	76%	11%	13%	100%

तालिका क्रमांक : 5.12 में हमने यह जानने कि कोशिश की है कि क्या वह बदलते परिवेश के साथ अपने पुरुष मित्र के साथ एक कमरे में रहना पसन्द करेगी या नहीं। विज्ञान संकाय की कुल 54% छात्राओं में से 48% उत्तर 'हाँ' तथा 3% का उत्तर 'नहीं' तथा 3% 'अनिश्चित' है। वाणिज्य संकाय की कुल 14% छात्राओं में से 10% उत्तर 'हाँ', 1% का 'नहीं' तथा 3% अनिश्चिंत है। कला संकाय की कुल 16% छात्राओं में से 10% उत्तर 'हाँ' तथा 2% का 'नहीं' तथा 4% का उत्तर 'अनिश्चित' है। तकनीकि संकाय की कुल 16% छात्राओं में से 8% उत्तर 'हाँ', 5% नहीं तथा 3% का उत्तर 'अनिश्चित' है।

इस प्रकार विभिन्न संकायोंकी 100% छात्राओं में से 76% का उत्तर 'हाँ' तथा 11% छात्राओं का उत्तर 'नहीं' तथा 13% छात्राओं का उत्तर अनिश्चित है।

तालिका क्रमांक : 5.13

आप अपने सहपाठियों के साथ कार में अकेले रात को घूमना पसन्द करेगी

(संकाय)	हाँ	नहीं	अनिश्चित	कुल
विज्ञान	6%	35%	13%	54%
वाणिज्य	4%	8%	2%	14%
कला	4%	7%	5%	16%
तकनीकि	3%	8%	5%	16%
कुल	17%	58%	25%	100%

तालिका क्रमांक : 5.13 में निदर्शित छात्राओं से यह ज्ञात किया है कि क्या वह अपने सहपाठियों के साथ कार में अकेले रात को घूमना पसन्द करेगी। विज्ञान संकाय की कुल 54% छात्राओं में से 6% उत्तर 'हाँ', 35% का नहीं तथा 13% का 'अनिश्चित' है। वाणिज्य संकाय की कुल 14% छात्राओं में से 4% उत्तर 'हाँ' तथा 8% का 'नहीं' है तथा 2% छात्राओं का उत्तर अनिश्चित है। कला संकाय की कुल 16% छात्राओं में से 4% उत्तर 'हाँ' तथा 7% का 'नहीं' तथा 5% का उत्तर 'अनिश्चित' है। तकनीकि संकाय की कुल 16% छात्राओं में से 3% उत्तर 'हाँ' तथा 8% का 'नहीं' तथा 5% का उत्तर अनिश्चित है।

इस प्रकार विभिन्न संकायों की 100% छात्राओं में से 17% का उत्तर 'हाँ' तथा 58% छात्राओं का उत्तर 'नहीं' तथा 25% छात्राओं का उत्तर अनिश्चित है।

तालिका क्रमांक : 5.14

मासिक धर्म के समय सहवास करेगी।

(संकाय)	हाँ	नहीं	अनिश्चित	कुल
विज्ञान	13%	35%	6%	54%
वाणिज्य	2%	8%	4%	14%
कला	5%	7%	4%	16%
तकनीकि	5%	8%	3%	16%
कुल	25%	58%	17%	100%

तालिका क्रमांक : 5.13 में निदर्शित छात्राओं से यह ज्ञात किया है कि क्या मासिक धर्म के समय सहवास करना पसन्द करेगी। विज्ञान संकाय की कुल 54% छात्राओं में से 13% उत्तर 'हाँ', 35% का नहीं तथा 6% का 'अनिश्चित' है। वाणिज्य संकाय की कुल 14% छात्राओं में से 2% उत्तर 'हाँ' तथा 8% का 'नहीं' है तथा 4% छात्राओं का उत्तर अनिश्चित है। कला संकाय की कुल 16% छात्राओं में से 5% उत्तर 'हाँ' तथा 7% का 'नहीं' तथा 4% का उत्तर 'अनिश्चित' है। तकनीकि संकाय की कुल 16% छात्राओं में से 4% उत्तर 'हाँ' तथा 8% का 'नहीं' तथा 3% का उत्तर अनिश्चित है।

इस प्रकार विभिन्न संकायों की 100% छात्राओं में से 25% का उत्तर 'हाँ' तथा 58% छात्राओं का उत्तर 'नहीं' तथा 17% छात्राओं का उत्तर अनिश्चित है।

तालिका क्रमांक : 5.15

गर्भ धारण के पश्चात पति के अतिरिक्त पुरुष मित्रों से सहवास करेगी।

(संकाय)	हाँ	नहीं	अनिश्चित	कुल
विज्ञान	13%	35%	6%	54%
वाणिज्य	2%	8%	4%	14%
कला	5%	7%	4%	16%
तकनीकि	5%	8%	3%	16%
कुल	25%	58%	17%	100%

तालिका क्रमांक : 5.14 में निदर्शित छात्राओं से यह ज्ञात किया है कि क्या गर्भ धारण के पश्चात् पति के अतिरिक्त पुरुष मित्र से सहवास करेगी। विज्ञान संकाय की कुल 54% छात्राओं में से 13% उत्तर 'हाँ', 35% का नहीं तथा 6% का 'अनिश्चित' है। वाणिज्य संकाय की कुल 14% छात्राओं में से 2% उत्तर 'हाँ' तथा 8% का 'नहीं' है तथा 4% छात्राओं का उत्तर अनिश्चित है। कला संकाय की कुल 16% छात्राओं में से 5% उत्तर 'हाँ' तथा 7% का 'नहीं' तथा 4% का उत्तर 'अनिश्चित' है। तकनीकि संकाय की कुल 16% छात्राओं में से 4% उत्तर 'हाँ' तथा 8% का 'नहीं' तथा 3% का उत्तर अनिश्चित है।

इस प्रकार विभिन्न संकायों की 100% छात्राओं में से 25% का उत्तर 'हाँ' तथा 58% छात्राओं का उत्तर 'नहीं' तथा 17% छात्राओं का उत्तर अनिश्चित है।

तालिका क्रमांक : 5.16

विवाह के पश्चात् अपने पुरुष मित्र से सम्बन्ध बनाये रखेगी ।

(संकाय)	हाँ	नहीं	अनिश्चित	कुल
विज्ञान	6%	35%	13%	54%
वाणिज्य	4%	8%	2%	14%
कला	4%	7%	5%	16%
तकनीकि	3%	8%	5%	16%
कुल	17%	58%	25%	100%

तालिका क्रमांक : 5.16 में निदर्शित छात्राओं से यह ज्ञात किया है कि क्या वह विवाह के पश्चात् अपने पुरुष मित्र से सम्बन्ध बनाये रखेगी। विज्ञान संकाय की कुल 54% छात्राओं में से 6% उत्तर 'हाँ', 35% का नहीं तथा 13% का 'अनिश्चित' है। वाणिज्य संकाय की कुल 14% छात्राओं में से 4% उत्तर 'हाँ' तथा 8% का 'नहीं' है तथा 2% छात्राओं का उत्तर अनिश्चित है। कला संकाय की कुल 16% छात्राओं में से 4% उत्तर 'हाँ' तथा 7% का 'नहीं' तथा 5% का उत्तर 'अनिश्चित' है। तकनीकि संकाय की कुल 16% छात्राओं में से 3% उत्तर 'हाँ' तथा 8% का 'नहीं' तथा 5% का उत्तर अनिश्चित है।

इस प्रकार विभिन्न संकायों की 100% छात्राओं में से 17% का उत्तर 'हाँ' तथा 58% छात्राओं का उत्तर 'नहीं' तथा 25% छात्राओं का उत्तर अनिश्चित है।

तालिका क्रमांक : 5.17

बीयर बार में नौकरी करेगी।

(संकाय)	हाँ	नहीं	अनिश्चित	कुल
विज्ञान	4%	8%	2%	14%
वाणिज्य	6%	35%	13%	54%
कला	3%	8%	5%	16%
तकनीकि	4%	7%	5%	16%
कुल	17%	58%	25%	100%

तालिका क्रमांक : 5.17 में निदर्शित छात्राओं से यह ज्ञात किया है क्या वह बीयर बार में काम करेगी। विज्ञान संकाय की कुल 14% छात्राओं में से 4% उत्तर 'हाँ', 8% का नहीं तथा 2% का 'अनिश्चित' है। वाणिज्य संकाय की कुल 54% छात्राओं में से 6% उत्तर 'हाँ' तथा 35% का 'नहीं' है तथा 13% छात्राओं का उत्तर अनिश्चित है। कला संकाय की कुल 16% छात्राओं में से 3% उत्तर 'हाँ' तथा 8% का 'नहीं' तथा 5% का उत्तर 'अनिश्चित' है। तकनीकि संकाय की कुल 16% छात्राओं में से 4% उत्तर 'हाँ' तथा 7% का 'नहीं' तथा 5% का उत्तर अनिश्चित है।

इस प्रकार विभिन्न संकायों की 100% छात्राओं में से 17% का उत्तर 'हाँ' तथा 58% छात्राओं का उत्तर 'नहीं' तथा 25% छात्राओं का उत्तर अनिश्चित है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1–हिन्दूतान समाचार पत्र दैनिक, लखनऊ, मंगलवार 13 जून 2006 पृ0 16
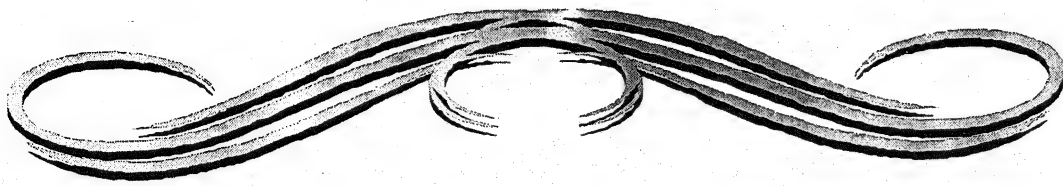
अध्याय षष्ट

स्त्री स्वातन्त्र्य पर समाज का दृष्टिकोण
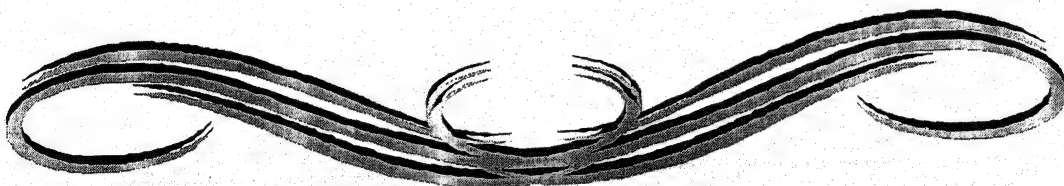
अध्याय षष्ट

किसी भी समाज के विकास की प्रक्रियाओं में आने वाले अवरोधक तत्वों को शिक्षा के अध्ययन से दूर किया जा सकता है। यह विचार अत्यंत प्राचीन काल से समाज में चला आ रहा है। नोबुल पुरुस्कार प्राप्त भारतीय अर्थशास्त्री अमर्त्य सेन ने भी शिक्षा के महत्व का उल्लेख किया है। इसलिए स्त्री स्वातांत्र्य के विषय में स्त्रियों के दृष्टिकोण जानना अनिवार्य है।

प्रस्तुत अध्याय में हम विश्वविद्यालय की शिक्षित छात्राओं के दृष्टिकोण की विवेचना प्रस्तुत कर रहे है।

अध्याय षष्ट

तालिका क्रमांक : 6.1

स्त्री द्वारा नौकरी के आधार पर निर्दश का वर्गीकरण

विषय (संकाय)	बहुत अच्छा	अच्छा	खराब	बहुत खराब	कुल
विज्ञान	30%	23%		1%	54%
वाणिज्य	13%	1%			14%
कला	6%	10%			16%
तकनीकि	7%	9%			16%
कुल	56%	43%		1%	100%

तालिका क्रमांक : 6.1 में 100 निदर्शित छात्राओं से जानने का प्रयत्न किया है कि आप स्त्रियों द्वारा नौकरी करने को किस प्रकार मानती है। विज्ञान संकाय की कुल 54% छात्राओं में से 30% का बहुत अच्छा, 23% का अच्छा तथा 1% छात्राओं का उच्चर बहुत खराब है। वाणिज्य संकाय की कुल 14% छात्राओं में से 13% का बहुत अच्छा, तथा 1% छात्राओं का उत्तर अच्छा है। काल संकाय की कुल छात्राऐं 16% है जिनमें 6% का उत्तर बहुत अच्छा तथा 10% का उत्तर अच्छा है। तकनीकि संकाय की कुल छात्राऐं 16% है जिनमें 7% का उत्तर बहुत अच्छा है तो 9% छात्राओ का उत्तर अच्छा है।

इस प्रकार विभिन्न विषयों (संकाय) की 56 प्रतिशत का बहुत अच्छा तथा 43 प्रतिशत का 'अच्छा' उत्तर है।

तालिका क्रमांक : 6.2

भारतीय धर्म और सामाजिक मान्यता के अनुसार स्त्रियों द्वारा रोजगार संबंधी आधार पर निर्दश का वर्गीकरण

विषय (संकाय)	हाँ	नहीं	कुल
विज्ञान	30%	24%	54%
वाणिज्य	10%	4%	14%
कला	10%	6%	16%
तकनीकि	11%	5%	16%
कुल	61%	39%	100%

तालिका क्रमांक : 6.2 में 100 निदर्शित छात्राओं से जानने का प्रयत्न किया कि क्या आप ऐसा मानती है कि भारतीय धर्म और सामाजिक मान्यता स्त्रियों के रोजगार करने के पक्ष में है। विज्ञान संकाय की कुल 54% छात्राओं में से 30% उत्तर 'हाँ' तथा 24% का 'नहीं' है। वाणिज्य संकाय की कुल 14% छात्राओं में से 10% उत्तर 'हाँ' तथा 4% का 'नहीं' है। कला संकाय की कुल 16% छात्राओं में से 10% उत्तर 'हाँ' तथा 6% का 'नहीं' है। तकनीकी संकाय की कुल 16% छात्राओं में से 11% उत्तर 'हाँ' तथा 5% का 'नहीं' है।

इस प्रकार विभिन्न संकायों की 100% छात्राओं में से 61 प्रतिशत का सकारात्मक तथा 39 प्रतिशत का नकरारात्मक उत्तर है।

तालिका क्रमांक : 6.3

भारतीय महिलाओं द्वारा नौकरी में संलग्नता उचित/अनुचित के आधार पर निर्देश का वर्गीकरण

विषय (संकाय)	हाँ	नहीं	लागू नहीं होता	कुल
विज्ञान	4%	20%	30%	54%
वाणिज्य	2%	2%	10%	14%
कला	1%	5%	10%	16%
तकनीकि	2%	3%	11%	16%
कुल	9%	30%	61%	100%

तालिका क्रमांक : 6.3 में 39 निदर्शित छात्राओं से जानने का प्रयत्न किया कि भारतीय महिलाओं द्वारा नौकरी के कार्य में संलग्नता को क्या समाज उचित ठहराता है। विज्ञान संकाय की कुल 54% छात्राओं में से 4% उत्तर 'हाँ' तथा 20% का 'नहीं' तथा 30% छात्राओं पर लागू नहीं होता। वाणिज्य संकाय की कुल 14% छात्राओं में से 2% उत्तर 'हाँ' तथा 2% का 'नहीं' तथा 10% छात्राओं पर लागू नहीं होता। कला संकाय की कुल 16% छात्राओं में से 1% उत्तर 'हाँ' तथा 5% का 'नहीं' तथा 10% छात्राओं पर लागू नहीं होता। तकनीकि संकाय की कुल 16% छात्राओं में से 2% उत्तर 'हाँ' तथा 3% का 'नहीं' तथा 11% छात्राओं पर लागू नहीं होता।

विभिन्न संकायों की 9 प्रतिशत का सकारात्मक तथा 30 प्रतिशत का नकारात्मक तथा 61% छात्राओं पर लागू नहीं होता।

तालिका क्रमांक : 6.4

नौकरी करने वाली स्त्रियों के संबंध में समाज का दृष्टिकोण के आधार पर निदर्श का वर्गीकरण

विषय (संकाय)	बहुत अच्छी	अच्छी	खराब	बहुत खराब	लागू नहीं होता	कुल
विज्ञान		5%	15%	34%		54%
वाणिज्य		0%	2%	12%		14%
कला		0%	5%	11%		16%
तकनीकि		1%	2%	13%		16%
कुल		6%	24%	17%		100%

तालिका क्रमांक : 9.4 में हमने 30 निदर्शित छात्राओं से जानने का प्रयास किया कि नौकरी करने वाली स्त्रियों को समाज किस दृष्टि से देखता है। विज्ञान संकाय की कुल 20% छात्राओं में से 5% का उत्तर 'अच्छी' है जबकि 15% का 'खराब', 34% पर लागू नहीं होता है। वाणिज्य संकाय की कुल 14% छात्राओ में से 2% का उत्तर खराब तथा 12% पर लागू नहीं होता। कला संकाय की कुल 5% छात्राओं का उत्तर 'खराब', 11% छात्राओं पर लागू नहीं होता है। तकनीकि संकाय की कुल 3% छात्राओं में से 1% का उत्तर 'अच्छी' तथा 2% का 'खराब', तथा 13% छात्राओं पर लागू नहीं होता।

इस प्रकार विभिन्न संकायों की 6 प्रतिशत का सकारात्मक एवं 24 प्रतिशत का नकारात्मक तथा 70 प्रतिशत छात्राओं पर लागू नहीं होता।

तालिका क्रमांक : 6.5

पौराणिक मानदण्डों की स्वीकृति/अस्वीकृति के आधार पर निदर्श का

वर्गीकरण

क्र0	पौराणिक मानदण्ड	हाँ	नहीं	कुल
अ	स्त्री पुरूष की दासी हैं।	5%	95%	100%
ब	स्त्री ढोर, गवार, शूद्र और पशु के समान - ताड़ना की अधिकारिणी है।	100%		100%
स	माँ और बहिन के रूप में स्त्री पूज्य है।	94%	6%	100%
ड	पत्नी के रूप में स्त्री पुरूष से निम्न है।	8%	92%	100%
क	स्त्री को परिवार में कोई अधिकार नहीं मिलना चाहिए।	2%	98%	100%
ख	स्त्री पुरूष की तुलना में अल्पबुद्धि होती है।	7%	93%	100%
ग	स्त्री पुरूष की तुलना में शारीरिक दृष्टि से कमजोर होती है।	61%	39%	100%

तालिका क्रमांक : 6.5 पौराणिक मानदण्डों स्वीकृति/अस्वीकृति के आधार पर निदर्श पर वर्गीकरण किया है।

स्त्री पुरूष की दासी है। विभिन्न संकाय की 5 प्रतिशत छात्राओं का उत्तर सकारात्मक तथा 95 प्रतिशत का नकारात्मक है।

स्त्री ढोर, गवार, शूद्र और पशु के समान ताड़ना की अधिकारिणी है। सभी अर्थात् 100 प्रतिशत छात्राओं का उत्तर नहीं है।

माँ और बहिन के रूप में स्त्री पूज्य है। 94 प्रतिशत छात्राओं का उत्तर हाँ है। जबकि 6 प्रतिशत का उत्तर नहीं है।

पत्नी के रूप में स्त्री पुरूष से निम्न है। 8 प्रतिशत छात्राओं का उत्तर सकारात्मक तथा 92 प्रतिशत का नकारात्मक है।

स्त्री को परिवार में कोई अधिकार नही मिलना चाहिए। 2 प्रतिशत छात्राओं का उत्तर हाँ है तथा 98 प्रतिशत का उत्तर नहीं है।

स्त्री पुरूष की तुलना में अल्पबुद्धि होती है। 7 प्रतिशत का उत्तर हाँ तथा 93 प्रतिशत का उत्तर नहीं है।

स्त्री पुरूष की तुलना में शारीरिक दृष्टि से कमजोर होती है। इस संबंध में 61 प्रतिशत छात्राओं का उत्तर हाँ तथा 39 प्रतिशत का नही है।

तालिका क्रमांक : 6.6

चरित्र संबंधी दौहरे मानदण्डों के आधार पर निर्दश का वर्गीकरण

विषय (संकाय)	हाँ	नहीं	कुल
विज्ञान	20%	34%	54%
वाणिज्य	6%	8%	14%
कला	9%	7%	16%
तकनीकि	6%	10%	16%
कुल	41%	59%	100%

तालिका क्रमांक : 6.6 में 100 निदर्शित छात्राओं से जानने का प्रयत्न किया कि भारतीय समाज में चरित्र संबंधी मानदण्ड स्त्री और पुरूष के संदर्भो में अलग–अलग है, क्या आप इन मानदण्डों को स्वीकार करती है? विज्ञान संकाय की कुल 54% छात्राओं में से 20% उत्तर 'हाँ' तथा 34% का 'नहीं' है। वाणिज्य संकाय की कुल 14% छात्राओं में से 6% उत्तर 'हाँ' तथा 8% का 'नहीं' है। कला संकाय की कुल 16% छात्राओं में से 9% उत्तर 'हाँ' तथा 7% का 'नहीं' है। तकनीकि संकाय की कुल 16% छात्राओं में से 6% उत्तर 'हाँ' तथा 10% का 'नहीं' है।

इस प्रकार विभिन्न संकाय की 41 प्रतिशत छात्राओं का उत्तर 'हाँ' तथा 59 प्रतिशत छात्राओं का उत्तर 'नहीं' है।

तालिका क्रमांक : 6.7

स्त्री और पुरूष दोनों के चरित्रों को समान रूप से विवाहेत्तर यौन संबंधों के आधार पर निदर्श का वर्गीकरण

(संकाय)	हाँ	नहीं	कुल
विज्ञान	52%	2%	54%
वाणिज्य	14%		14%
कला	15%	1%	16%
तकनीकि	14%	2%	16%
कुल	95%	5%	100%

तालिका क्रमांक : 6.7 में निदर्शित छात्राओं से जानने का प्रयत्न किया है कि क्या स्त्री और पुरूष दोनों के चरित्र को समान रूप से विवाहेत्तर यौन संबंधों के आधार पर मापना चाहिए। विज्ञान संकाय की कुल 54% छात्राओं में से 52% उत्तर 'हाँ' तथा 2% का 'नहीं' है। वाणिज्य संकाय की कुल 14% छात्राओं का उत्तर 'हाँ' है। कला संकाय की कुल 16% छात्राओं में से 15% उत्तर 'हाँ' तथा 1% का 'नहीं' है। तकनीकि संकाय की कुल 16% छात्राओं में से 14% उत्तर 'हाँ' तथा 2% का 'नहीं' है।

इस प्रकार विभिन्न संकायों की 95% छात्राओं का उत्तर 'हाँ' तथा 5% छात्राओं का उत्तर 'नहीं' है।

तालिका क्रमांक : 6.8

विवाहेत्तर यौन संबंधों का चरित्र मापन से कोई रिश्ता नहीं होना चाहिए

(संकाय)	हाँ	नहीं	कुल
विज्ञान	29%	25%	54%
वाणिज्य	4%	10%	14%
कला	7%	9%	16%
तकनीकि	5%	11%	16%
कुल	45%	55%	100%

तालिका क्रमांक : 6.8 में निदर्शित छात्राओं से जानने का प्रयत्न किया है कि विवाहेत्तर यौन संबंधों का चरित्र मापन से कोई रिश्ता नहीं होना चाहिए। विज्ञान संकाय की कुल 54% छात्राओं में से 29% उत्तर 'हाँ' तथा 25% का 'नहीं' है। वाणिज्य संकाय की कुल 14% छात्राओं में से 4% उत्तर 'हाँ' तथा 10% का 'नहीं' है। कला संकाय की कुल 16% छात्राओं में से 7% उत्तर 'हाँ' तथा 9% का 'नहीं' है। तकनीकि संकाय की कुल 16% छात्राओं में से 5% उत्तर 'हाँ' तथा 11% का 'नहीं' है।

इस प्रकार विभिन्न संकाय की 100% छात्राओं मे से 45% का उत्तर 'हाँ' तथा 55% छात्राओं का उत्तर 'नहीं' है।

तालिका क्रमांक : 6.9

स्त्री के चरित्र में विवाहेत्तर यौन संबंधों को प्रमुख आधार माना जाना चाहिए

(संकाय)	हाँ	नहीं	कुल
विज्ञान	8%	46%	54%
वाणिज्य	3%	11%	14%
कला	4%	12%	16%
तकनीकि	5%	11%	16%
कुल	20%	80%	100%

तालिका क्रमांक : 6.9 में निदर्शित छात्राओं से जानने का प्रयत्न किया है कि क्या स्त्री के चरित्र में विवाहेत्तर यौन संबंधों को प्रमुख आधार माना जाना चाहिए। विज्ञान संकाय की कुल 54% छात्राओ में से 8% उत्तर 'हाँ' तथा 46% का 'नहीं' है। वाणिज्य संकाय की कुल 14% छात्राओं में से 3 उत्तर 'हाँ' तथा 11 का 'नहीं' है। कला संकाय की कुल 16% छात्राओं में से 4% उत्तर 'हाँ' तथा 12% का 'नहीं' है। तकनीकि संकाय की कुल 16% छात्राओं में से 5% उत्तर 'हाँ' तथा 11% का 'नहीं' है।

इस प्रकार विभिन्न संकायों की 100% छात्राओं में से 20% का उत्तर 'हाँ' तथा 80% छात्राओं का उत्तर 'नहीं' है।

तालिका क्रमांक : 6.10

चरित्र संबंधी दौहरे मानदण्ड' के संबंध में छात्राओं के सुझाव

क्र0	सुझाव	कुल
1	आपसी विश्वास व भरोसा होना जरूरी है।	1%
2	विवाहेत्तर यौन संबंध आधारत तो है लेकिन सिर्फ इस आधार पर किसी के पूर्ण चरित्र का अवलोकन नहीं किया जा सकता है।	1%
3	स्त्री और पुरूष का चरित्र मापन समान रूप से होना चाहिए।	6%
4	लागू नहीं होता	92%
कुल		100%

तालिका क्रमांक : 6.10 में चरित्र संबंधी दौहरे मानदण्ड के संबंध में छात्राओं के सुझाव के आधार पर वर्गीकरण प्रस्तुत किया है। उरक्त तालिका से स्पष्ट है कि कुल 8% में से 1% छात्रा का सुझाव–आपसी विश्वास व भरोसा होना जरूरी है, 1% का सुझाव है कि विवाहेत्तर यौन संबंध आधार तो है लेकिन सिर्फ इस आधार पर किसी के पूर्ण चरित्र का अवलोकन नही किया जा सकता, जबकि 6% छात्राओं का सुझाव है कि स्त्री और पुरूष का चरित्र मापन समान रूप से होना चाहिए। बाकी 92% छात्राओं पर लागू नहीं होता।

तालिका क्रमांक : 6.11

क्या आप सोचती है कि भारतीय समाज में स्त्री को पूर्ण आजादी है?

(संकाय)	हाँ	नहीं	कुल
विज्ञान	3%	51%	54%
वाणिज्य	1%	13%	14%
कला		16%	16%
तकनीकि	2%	14%	16%
कुल	6%	94%	100%

तालिका क्रमांक : 6.11 में निदर्शित छात्राओं से जानने का प्रयत्न किया है कि क्या आप सोचती है कि भारतीय समाज में स्त्री को पूर्ण आजादी है। विज्ञान संकाय की कुल 54% छात्राओं मे से 3% उत्तर 'हाँ' तथा 51% का 'नहीं' है। वाणिज्य संकाय की कुल 14% छात्राओं में से 1% उत्तर 'हाँ' तथा 16% का 'नहीं' है। कला संकाय की कुल 16% छात्राओं का 'नहीं' है। तकनीकि संकाय की कुल 16% छात्राओं में से 2% उत्तर 'हाँ' तथा 14% का 'नहीं' है।

इस प्रकार विभिन्न संकायों की 100% छात्राओं में से 6% का उत्तर 'हाँ' तथा 94% छात्राओं का उत्तर 'नहीं' है।

तालिका क्रमांक : 6.12

स्त्रियों को पूर्ण आजादी किस प्रकार प्राप्त हो सकती है?

क्र0	सुझाव	कुल
1	स्त्रियों को पूर्ण आजादी तभी मिलेगी, जब स्त्रियाँ खुद को कमजोर नही समझेगी। जिस दिन उन्हें अपने अंदर की मजबूती का अहसास होगा, उनको आजादी खुद बखुद मिल जायेगी।	1%
2	अगर सभी स्त्रियाँ शिक्षित व स्वालंबी है तथा आत्मनिर्भर हो।	1%
3	बराबरी का दर्जा प्राप्त करके स्त्रियों को पूर्ण आजादी प्राप्त हो सकती है।	1%
4	शिक्षा के प्रसार तथा संस्कारों व नैतिकता के प्रति जागरूक होकर	1%
5	लागू नहीं होता	96%
	कुल	100%

तालिका क्रमांक : 6.12 में छात्राओं द्वारा स्त्रियों को पूर्ण आजादी प्राप्त करने हेतु सुझाव के आधार पर वर्गीकरण प्रस्तुत किया है। उक्त तालिका से स्पष्ट है कि कुल 4% छात्राओं में से 1% का सुझाव–स्त्रियों को पूर्ण आजादी तभी मिलेगी, जब स्त्रियाँ खुद को कमजोर नहीं समझेंगी। जिस दिन उन्हें अपने अंदर की मजबूती का अहसास होगा, उनको आजादी खुद–ब–खुद मिल जायेगी, 1% का सुझाव है कि अगर सभी स्त्रियाँ शिक्षित व स्वालंबी हो तथा आत्मनिर्भर हो, 1% का सुझाव है कि बराबरी का दर्जा प्राप्त करके

स्त्रियों को पूर्ण आजादी प्राप्त हो सकती है, 1% का सुझाव है कि शिक्षा के प्रसार तथा संस्कारों व नैतिकता के प्रति जागरूक होकर पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त की जा सकती है। बाकी 96% छात्राओं पर लागू नहीं होता है।

तालिका क्रमांक : 6.13

स्त्रियों की पूर्ण आजादी संबंधी मानदण्डों के आधार पर निदर्श का वर्गीकरण

क्र0	मानदण्ड	हाँ	नहीं	कुल
अ	चरित्र संबंधी मानदण्डों के बदलने से	77	23%	100%
ब	पुरूषों में यह समझ विकसित होने पर कि स्त्रियाँ उनके समकक्ष है।	99%	1%	100%
स	स्त्रियों के शिक्षा स्तर बढ़ने से	100%		100%
ड.	स्त्रियों के अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होने से	100%		100%
इ	स्त्रियों के संगठित आंदोलन से	75%	25%	100%
	सार्वभौमिक निदर्श	100%	100%	100%

तालिका क्रमांक : 6.13 में स्त्रियों की पूर्ण आजादी संबंधी विभिन्न मानदण्डों के आधार पर निदर्श का वर्गीकरण किया है। निदर्शित छात्राओं के इन मानदण्डों के संबंध में विचार इस प्रकार है।

क्रमांक 'अ' चरित्र संबंधी मानदण्डों के बदलने से, विभिन्न संकायों की 77 प्रतिशत का सकारात्मक तथा 23 प्रतिशत छात्राओं का जबाव नकारात्मक है।

क्रमांक 'ब' पुरूषों में यह समझ विकसित होने पर कि स्त्रियाँ उनके समकक्ष है, इसका उत्तर विभिन्न छात्राओं में से 99 प्रतिशत ने हॉ दिया तथा 1 प्रतिशत का उत्तर नहीं है।

क्रमांक 'स' स्त्रियों का शिक्षा स्तर बढ़ने से, इसका उततर सभी अर्थात् 100 छात्राओं ने हाँ दिया है।

क्रमांक 'ड.' स्त्रियों के अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होने से। सभी छात्राओं का

उत्तर 'हाँ' है।

क्रमांक 'इ' स्त्रियों के संगठित आंदोलन से। विभिन्न संकायों की 75 प्रतिशत छात्राओं का उत्तर हाँ जबकि 25 प्रतिशत का नहीं है।

तालिका क्रमांक : 6.14

क्या स्त्रियाँ ही स्त्रियों की स्वतंत्रता में बाधक है?

(संकाय)	हाँ	नहीं	कुल
विज्ञान	52%	2%	54%
वाणिज्य	13%	1%	14%
कला	15%	1%	16%
तकनीकि	14%	2%	16%
कुल	94%	6%	100%

तालिका क्रमांक : 614 में निदर्शित छात्राओं से जानने का प्रयत्न किया कि क्या स्त्रियाँ ही स्त्रियों की स्वतंत्रता में बाधक है? विज्ञान संकाय की कुल 54% छात्राओं में से 52% उत्तर 'हाँ' तथा 2% का 'नहीं' है। वाणिज्य संकाय की कुल 14% छात्राओं में से 13% उत्तर 'हाँ' तथा 1% का 'नहीं' है। कला संकाय की कुल 16% छात्राओं में से 15% उत्तर 'हाँ' तथा 1% का 'नहीं' है। तकनीकि संकाय की कुल 16% छात्राओं में से 14% उत्तर 'हाँ' तथा 2% का 'नहीं' है।

इस प्रकार विभिन्न संकायों की 100% छात्राओं में से 94% का उत्तर 'हाँ' तथा 6% छात्राओं का उत्तर 'नहीं' है।

तालिका क्रमांक : 6.15

क्या स्त्रियां ही स्त्रियों में बाधक है? यदि हॉ तो स्त्रियों को इन प्रकरणों के लिए कैसे रोका जाना चाहिये?

क्र0	सुझाव	कुल
1	स्त्री अपने अधिकार के प्रति जागरूक होकर, आत्मविश्वास व निडर बनकर अपने अधिकार प्राप्त कर सकती है।	6%
2	स्त्री को स्वयं की स्थिति से अन्य स्त्रियों की स्थिति समझना चाहिये और स्त्रियों के साथ वो अन्याय नहीं करना चाहिये जो स्वयं उसके साथ हुये हैं क्योंकि सास भी कभी बहु थी।	4%
3	डर के नहीं, सिर उठाकर, इस पुरूष प्रधान समाज से अपने अधिकार छीन लेने चाहिये।	1%
4	स्त्री और पुरूष में सामाजिक दृष्टि से होने वाले भेदभाव को समाप्त करके	3%
5	स्त्रियों द्वारा स्वयं को समझकर। जो कि उचित शिक्षा व कार्य व्यवहार से संभव है।	1%
6	लागू नही होता	85%
	कुल	100%

तालिका क्रमांक : 6.15 में निदर्शित छात्राओं से जानने का प्रयत्न किया कि क्या स्त्रियाँ ही स्त्रियों की स्वतंत्रता में बाधक है और यदि हॉ तो स्त्रियों के इन प्रकरणों के लिए कैसे रोका जाना चाहिए, इस संबंध में छात्राओं के सुझाव के आधार पर वर्गीकरण प्रस्तुत किया है। उक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि कुल 15% छात्राओं में से 6% का सुझाव है कि स्त्री अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होकर, आत्मविश्वास व निडर बनकर अपने अधि

ाकार प्राप्त कर सकती है, 4% का सुझाव है कि स्त्री को स्वयं की स्थिति से, अन्य स्त्रियों की स्थिति समझनी चाहिये और अन्य स्त्रियों के साथ वो अन्याय नही करना चाहिये जो स्वयं उसके साथ हुये है क्योंकि सास भी कभी बहु थी। 1% का सुझाव है कि डर के नहीं, सिर उठाकर इस पुरूष प्रधान समाज से अपने अधिकार छीन लेने चाहिये, 3% का सुझाव है कि स्त्री और पुरूष मं सामाजिक दृष्टि से होने वाले भेदभाव को समाप्त करके तथा 1% का सुझाव है कि स्त्रियों द्वारा स्वयं को समझकर जो कि उचित शिक्षा व कार्य व्यवहार से संभव है। बाकी 85% छात्राओं पर लागू नहीं होता।

तालिका क्रमांक : 6.16

क्या आप सोचतीं है कि शिक्षित महिलाएँ अपने अधिकार के प्रति अशिक्षित महिलाओं की अपेक्षा अधिक जागरूक रहती है?

(संकाय)	हाँ	नहीं	कुल
विज्ञान	54%		54%
वाणिज्य	14%		14%
कला	16%		16%
तकनीकि	16%		16%
कुल	100%		100%

तालिका क्रमांक : 6.16 में निदर्शित छात्राओं से जानने का प्रयत्न किया कि क्या आप सोंचती है कि शिक्षित महिलाएँ अपने अधिकार के प्रति अशिक्षित महिलाओं की अपेक्षा अधिक जागरूक रहती है? विभिन्न संकायों की सभी छात्राओं का उत्तर सकारात्मक अर्थात् हॉ है।

विज्ञान संकाय की कुल 54% छात्राओं का उत्तर 'हाँ' है। वाणिज्य संकाय की कुल 14% छात्राओं का 'नहीं' है। कला संकाय की कुल 16% छात्राओं का उत्तर 'हाँ' है। तकनीकि संकाय की कुल 16% छात्राओं का उत्तर भी 'हाँ' है।

तालिका क्रमांक : 6.17

क्या शिक्षा प्रणाली में कुद सुधार होने से महिलाओं को जागरूक किया जा सकता है? यदि हॉ तो क्या सुधार होने चाहिये?

क्र0	सुझाव	कुल
1	सोचने समझने की शक्ति को तीव्र करना चाहिये।	1%
2	अशिक्षित महिलाओं को शिक्षा के प्रति प्रोत्साहित किया जाना चाहिये।	3%
3	सर्वप्रथम माता–पिता को शिक्षा देनी चाहिये कि लड़की भी लड़के से कम नहीं।	1%
4	स्त्रियों को अपने निर्णय स्वयं लेने चाहिये।	1%
5	सभी अशिक्षित महिलाओं को उनके अधिकारों की जानकारी देनी चाहिये।	3%
6	शिक्षा का उद्देश्य आम जीवन की समस्याओं को सुलझाने के योग्य बनाना चाहिये।	1%
7	लागू नहीं होता	90%
	कुल	100%

तालिका क्रमांक : 6.17 में शिक्षा प्रणाली में सुधार हेतु छात्राओं के सुझाव के आधार पर वर्गीकरण प्रस्तुत किया है। उक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि कुछ 10% छात्राओं में से 1% का सुझाव–'सोचने–समझने की शक्ति को तीव्र करना चाहिये', 3% का सुझाव अशिक्षित महिलाओं को शिक्षा के प्रति प्रोत्साहित किया जाना चाहिए, 1% का सुझाव सर्वप्रथम माता–पिता को शिक्षा देनी चाहिये कि लड़की भी लड़के से कम नहीं, 1% का सुझाव स्त्रियों को अपने निर्णय स्वयं लेने चाहिए, 3% छात्राओं का सुझाव सभी अशिक्षित

महिलाओं को उनके अधिकारों की जानकारी देनी चाहिए, 1% का सुझाव शिक्षा का उद्देश्य आम जीवन की समस्याओं को सुलझाने के योग्य बनाना होना चाहिए। बाकी 90% छात्राओं पर लागू नहीं होता।

तालिका क्रमांक : 6.18

क्या शिक्षित पुरूष अशिक्षित पुरूषों की अपेक्षा महिलाओं के प्रति समहानुभूतिपूर्ण आचरण करते है?

(संकाय)	हाँ	नहीं	कुल
विज्ञान	48%	6%	54%
वाणिज्य	11%	3%	14%
कला	11%	5%	16%
तकनीकि	13%	3%	16%
कुल	83%	17%	100%

तालिका क्रमांक : 6.18 में निदर्शित छात्राओं से जानने का प्रयत्न किया कि क्या शिक्षित पुरूष अशिक्षित पुरूषों की अपेक्षा महिलाओं के प्रति समहानुभतिपूर्ण आचरण करते है? विज्ञान संकाय की कुल 54% छात्राओं में से 48% उत्तर 'हाँ' तथा 6% का 'नहीं' है। वाणिज्य संकाय की कुल 14% छात्राओं में से 11% उत्तर 'हाँ' तथा 3% का 'नहीं' है। कला संकाय की कुल 16% छात्राओं में से 11% उत्तर 'हाँ' तथा 5% का 'नहीं' है। तकनीकि संकाय की कुल 16% छात्राओं में से 13% उत्तर 'हाँ' तथा 3% का 'नहीं' है।

इस प्रकार विभिन्न संकायों की 100% छात्राओं में से 83% का उत्तर 'हॉ' तथा 17% छात्राओं का उत्तर 'नहीं' है।

तालिका क्रमांक : 6.19

दहेज प्रथा भारतीय समाज के लिए अभिशाप है

(संकाय)	हाँ	नहीं	अनिश्चित	कुल
विज्ञान	52%		2%	54%
वाणिज्य	13%		1%	14%
कला	16%			16%
तकनीकि	16%			16%
कुल	97%		3%	100%

तालिका क्रमांक : 6.19 में निदर्शित छात्राओं से जानने से दहेज संबंधी उनके विचार जानने का प्रयत्न किया उनसे पूछा कि क्या दहेज प्रथा भारतीय समाज के लिए अभिशाप है। विज्ञान संकाय की कुल 54% छात्राओं में से 52% उत्तर 'हाँ' तथा 2% का अनिश्चित है। वाणिज्य संकाय की कुल 14% छात्राओं में से 13% उत्तर 'हाँ' तथा 1% का अनिश्चित है। कला संकाय की कुल 16% छात्राओं का उत्तर 'हाँ' है। तकनीकि संकाय की कुल 16% छात्राओं का उत्तर भी 'हाँ' है।

इस प्रकार विभिन्न संकायों की 100% छात्राओं में से 97% का उत्तर 'हॉ' तथा 3% छात्राओं का उत्तर 'अनिश्चित' है।

तालिका क्रमांक : 6.20

स्त्रियों को पिता संपत्ती में पूर्ण अधिकार वास्तविक रूप से मिलना चाहिये

(संकाय)	हाँ	नहीं	अनिश्चित	कुल
विज्ञान	45%	3%	6%	54%
वाणिज्य	11%	1%	2%	14%
कला	13%		3%	16%
तकनीकि	13%	1%	2%	16%
कुल	82%	5%	13%	100%

तालिका क्रमांक : 6.20 में निदर्शित छात्राओं से ज्ञात करने की कोशिश की कि स्त्रियों को पिता संपत्ती में पूर्ण अधिकार वास्तविक रूप से मिलना चाहिये। विज्ञान संकाय की कुल 54% छात्राओं में से 45% उत्तर 'हाँ' तथा 6% का 'अनिश्चित' है। वाणिज्य संकाय की कुल 14% छात्राओं में से 11% उत्तर 'हाँ' तथा 1% का 'नहीं' है तथा 2% छात्राओं का उत्तर अनिश्चित है। कला संकाय की कुल 16% छात्राओं में से 13% उत्तर 'हॉ' तथा 3% का 'अनिश्चित' है। तकनीकि संकाय की कुल 16% छात्राओं में से 13% उत्तर 'हाँ' तथा 1% का 'नहीं' तथा 2% का उत्तर अनिश्चित है।

इस प्रकार विभिन्न संकायोंकी 100% छात्राओं में से 82% का उत्तर 'हाँ' तथा 5% छात्राओं का उत्तर 'नहीं' तथा 13% छात्राओं का उत्तर अनिश्चित है।

तालिका क्रमांक : 6.21

स्त्री की पिता, और विधवा होने पर पुत्र पर निर्भरता समाप्त होनी चाहिये

(संकाय)	हाँ	नहीं	अनिश्चित	कुल
विज्ञान	35%	13%	6%	54%
वाणिज्य	8%	4%	2%	14%
कला	7%	5%	4%	16%
तकनीकि	8%	5%	3%	16%
कुल	58%	27%	15%	100%

तालिका क्रमांक : 6.21 में निदर्शित छात्राओं से यह ज्ञात किया कि स्त्री की पिता, पति और विधवा होने पर पुत्र पर निर्भरता समाप्त होनी चाहिए। विज्ञान संकाय की कुल 54% छात्राओं में से 35% उत्तर 'हाँ', 13% का नहीं तथा 6% का 'अनिश्चित' है। वाणिज्य संकाय की कुल 14% छात्राओं में से 8% उत्तर 'हाँ' तथा 4% का 'नहीं' है तथा 2% छात्राओं का उत्तर अनिश्चित है। कला संकाय की कुल 16% छात्राओं में से 7% उत्तर 'हाँ' तथा 5% का 'नहीं' तथा 4% का उत्तर 'अनिश्चित' है। तकनीकि संकाय की कुल 16% छात्राओं में से 8% उत्तर 'हाँ' तथा 5% का 'नहीं' तथा 3% का उत्तर अनिश्चित है।

इस प्रकार विभिन्न संकायों की 100% छात्राओं में से 58% का उत्तर 'हाँ' तथा 27% छात्राओं का उत्तर 'नहीं' तथा 15% छात्राओं का उत्तर अनिश्चित है।

तालिका क्रमांक : 6.22

पुरूषों की भांति स्त्रियों को भी सामाजिक, राजनीतिक एवं अन्य कार्यो में भागीदारी करने की पूर्ण स्वतंत्रता होनी चाहिये

(संकाय)	हाँ	नहीं	अनिश्चित	कुल
विज्ञान	52%		2%	54%
वाणिज्य	14%			14%
कला	16%			16%
तकनीकि	15%		1%	16%
कुल	97%		3%	100%

तालिका क्रमांक : 6.22 में निदर्शित छात्राओं से यह जानने का प्रयास किया कि क्या पुरूषों की भांति स्त्रियों कों भी सामाजिक, राजनीतिक एवं अन्य कार्यो में भागीदारी करने की पूर्ण स्वतंत्रता होनी चाहिए। विज्ञान संकाय की कुल 54% छात्राओं में से 52% उत्तर 'हाँ' तथा 2% का 'अनिश्चित' है। वाणिज्य संकाय की कुल 14% छात्राओं का उत्तर 'हाँ' है। कला संकाय की कुल 16% छात्राओं का उत्तर 'हाँ' है। तकनीकि संकाय की कुल 16% छात्राओं में से 15% उत्तर 'हाँ' तथा 1% का उत्तर अनिश्चित है।

इस प्रकार विभिन्न संकायों की 100% छात्राओं में से 97% का उत्तर 'हाँ' तथा 3% छात्राओं का उत्तर अनिश्चित है।

तालिका क्रमांक : 6.23

स्त्रियों को आर्थिक कार्यो में निर्णय लेने की स्वतंत्रता होनी चाहिए

(संकाय)	हाँ	नहीं	अनिश्चित	कुल
विज्ञान	52%		2%	54%
वाणिज्य	14%			14%
कला	16%			16%
तकनीकि	16%			16%
कुल	98%		2%	100%

तालिका क्रमांक : 6.23 में निदर्शित छात्राओं से जानने का प्रयास किया कि क्या स्त्रियों को आर्थिक कार्यो में निर्णय लेने की स्वतंत्रता होनी चाहिए। विज्ञान संकाय की कुल 54% छात्राओं में से 52% उत्तर 'हाँ' तथा 2% का 'अनिश्चित' है। वाणिज्य संकाय की कुल 14% छात्राओं का उत्तर 'हाँ' है। कला संकाय की कुल 16% छात्राओं का भी उत्तर 'हाँ' है।

इस प्रकार विभिन्न संकायों की 100% छात्राओं में से 98% का उत्तर 'हाँ' तथा 2% छात्राओं का उत्तर अनिश्चित है।

तालिका क्रमांक : 6.24

स्त्रियों को विशेष अधिकार अर्थात् आरक्षण की अपेक्षा समान अधिकार प्राप्त होना चाहिये

(संकाय)	हाँ	नहीं	अनिश्चित	कुल
विज्ञान	48%	3%	3%	54%
वाणिज्य	13%	1%		14%
कला	11%	1%	4%	16%
तकनीकि	13%		3%	16%
कुल	85%	5%	10%	100%

तालिका क्रमांक : 6.24 में निदर्शित छात्राओं से जानने का प्रयत्न किया कि क्या स्त्रियों को विशेष अधिकार अर्थात् आरक्षण की अपेक्षा समान अधिकार प्राप्त होना चाहिए। विज्ञान संकाय की कुल 54% छात्राओं में से 48% उत्तर 'हाँ' तथा 3% का उत्तर 'नहीं' तथा 3% 'अनिश्चित' है। वाणिज्य संकाय की कुल 14% छात्राओं में से 13% उत्तर 'हाँ' तथा 1% का 'नहीं' है। कला संकाय की कुल 16% छात्राओं में से 11% उत्तर 'हाँ' तथा 1% का 'नहीं' तथा 4% का उत्तर 'अनिश्चित' है। तकनीकि संकाय की कुल 16% छात्राओं में से 13% उत्तर 'हाँ' तथा 3% का उत्तर 'अनिश्चित' है।

इस प्रकार विभिन्न संकायोंकी 100% छात्राओं में से 85% का उत्तर 'हाँ' तथा 5% छात्राओं का उत्तर 'नहीं' तथा 10% छात्राओं का उत्तर अनिश्चित है।
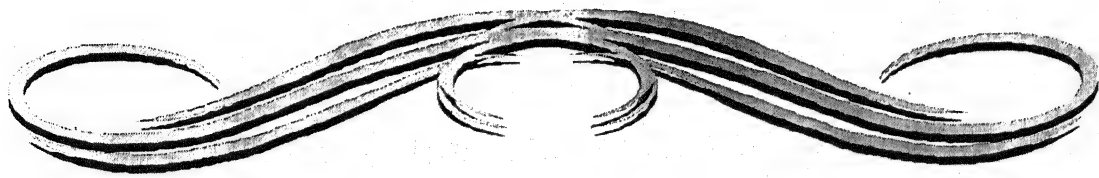
अध्याय सप्तम

हिन्दू सामाजिक व्यवस्था व दर्शन के प्रति दृष्टिकोण
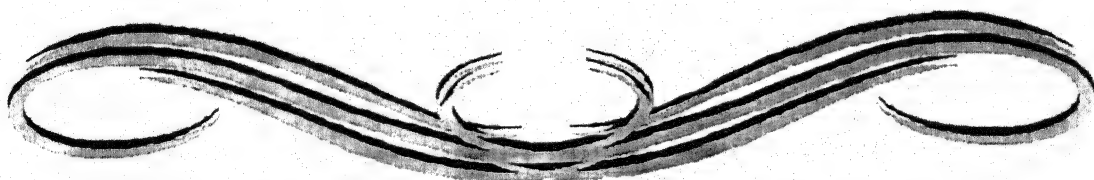
अध्याय सप्तम

हिन्दू सामाजिक व्यवस्था– मूल रूप से भारतीय सामाजिक व्यवस्था उन तत्वों से मिलकर बनी है जो समन्वयकारी प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देते हैं। यह सच है कि भारतीय सामाजिक व्यवस्था के आधार एक बड़ी सीमा तक सैद्धान्तिक हैं और व्यवहार में उनकी वास्तविक भावना से अधिकांश व्यक्ति परिचित नहीं हैं लेकिन तो भी इन आधारों ने एक ऐसे समाज के निर्माण में योग दिया है जिससे अधिकतम सामाजिक लाभ प्राप्त किये जा सकें। इनमें से कुछ प्रमुख आधारों को निम्नांकित रूप से स्पष्ट किया जा सकता है।

(1) पंच ऋण– भारतीय समाज में जीवन को त्याग के आदर्श में ढ़ालने के लिए व्यक्ति के सामने यह स्पष्ट कर दिया गया है कि उसका जीवन अनेक चर और अचर तत्वों का ऋणी है। इन ऋणों की व्याख्या इसलिए की गयी जिससे व्यक्तिवादिता को प्रोत्साहन न मिले, बल्कि व्यक्ति अन्य प्राणियों और जीवों के प्रति अने कर्तव्यों को सदैव पूरा करता रहे। इन ऋणों की संख्या पाँच बतायी जाती है।

(क) देव ऋण– प्रत्येक व्यक्ति देवताओं का ऋणी है क्योंकि जल, वायु और दूसरे बहुमूल्य पदार्थों के द्वारा देवताओं ने ही हमें जीवन दिया है इसके अतिरिक्त देवता ही हमारा पालन–पोषण करते हैं, इसलिए भी मनुष्य देवताओं का ऋणी है।

(ख) ऋषि ऋण– देवताओं के समान ही मनुष्य ऋषियों का भी ऋणी है क्योंकि उन्हीं की साधना, ज्ञान और तप की सहायता से व्यक्ति ज्ञान अर्जित कर

सका है। ऋषियों की सहायता के बिना न तो ज्ञान में वृद्धि हो सकती थी और न ही व्यक्ति को व्यक्तित्व के विकास के अवसर प्राप्त हो सकते थे।

(ग) पितृ ऋण– पितृ ऋण का तात्पर्य है माता और पिता दोनों के ऋण से है। माता–पिता हमें जन्म देते हैं और साथ ही पालन–पोषण, शिक्षा और समाजीकरण के द्वारा हमारे व्यक्तित्व का विकास करते हैं।

(घ) अतिथि ऋण– प्रत्येक व्यक्ति अनेक अवसरों पर दूसरे व्यक्तियों की सहायता से अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने में सफल होता है। इस ऋण के महत्व को स्पष्ट करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को उपनयन संस्कार (जनेऊ संस्कार) के समय भिक्षा माँगने का कार्य करना होता है। यह अतिथि ऋण के महत्व को स्पष्ट करने वाली प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति है।

(ड0) जीव ऋण– इस ऋण के द्वारा यह भी स्पष्ट किया गया कि हमारा जीवन केवल देवताओं, ऋषियों, माता–पिता और अतिथियों का ही ऋणी नहीं हैं, बल्कि हमसे पहले ही उत्पन्न हो जाने वाली अनेक वनस्पतियों तथा छोटे–छोटे जीवों का भी ऋणी है क्योंकि इन्हीं वनस्पतियों से हम शक्ति प्राप्त करते है और यही हमारे पोषण में सहायक होते हैं।

कुछ विद्वानों ने ऋणों की संख्या तीन भी बतायी है (ऋण–त्रय), लेकिन वैयक्तिक कर्तव्यों के विस्तार को देखते हुए उपर्युक्त वर्णित पंच–ऋणों की धारणा ही अधिक युक्ति–संगत प्रतीत होती है।

(2) पंच महायज्ञ– हिन्दू सामाजिक व्यवस्था में यह स्पष्ट किया गया है कि व्यक्ति को प्रत्येक कार्य स्वार्थ की भावना से नहीं, बल्कि यज्ञ पूर्ति अथवा

कर्तव्य की भावना से करना आवश्यक है। महायज्ञ वे प्रमुख दायित्व हैं जिनको पूरा करने से ही व्यक्ति पाँचों ऋणों से उऋण हो सकता है। इस प्रकार महायज्ञों की संख्या भी पाँच बताई गई है।

(अ) देव यज्ञ— इसका तात्पर्य उन सभी कर्तव्यों से जिन्हें पूरा करने से हम देवताओं के ऋण से उऋण हो सकते हैं। इस प्रकार ईश्वर की उपासना, आराधना और वन्दना करना तथा सब कुछ ईश्वर को समर्पित करना देव—यज्ञ है। यह यज्ञ व्यक्ति को अहंकार से बचाता है।

(ब) ऋषि—यज्ञ— इसके अनुसार व्यक्ति का दायित्व है कि वह ज्ञान संचित करे, उसे सुरक्षित रखे और आगे आने वाली पीढ़ियों के इस ज्ञान को हस्तान्तरित कर दे। ज्ञानी लोगों का सम्मान करना भी ऋषि यज्ञ का अंग है।

(स) पितृ—यज्ञ— प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह माता—पिता की सेवा करे और उनकी मृत्यु के बाद उनके श्राद्ध की समुचित व्यवस्था करे। इसके अतिरिक्त जिस प्रकार माता—पिता ने हमें जन्म देकर उसके पालन—पोषण किया, उसी प्रकार हम भी पुत्र अथवा सन्तान को जन्म देकर उसके पालन—पोषण का भार अपने ऊपर लें।

(द) अतिथि यज्ञ— इसके अनुसार व्यक्ति का यह दायित्व है जिस प्रकार व्यक्ति भी सदैव सम्पूर्ण समाज के कल्याण में रुचि रखें तथा प्रत्येक परिस्थिति में दूसरों की सहायता करने के लिए तैयार रहें। इसी से पारस्परिक सहायता को प्रोत्साहन मिल सकता है।

(स) जीव यज्ञ— वनस्पतियों की रक्षा करना, पशुओं और छोटे जीवों को

भोजन देना तथा सभी प्राणियों के प्रति उदारता रखना जीव यज्ञ से सम्बन्धित प्रमुख दायित्व हैं।

(3) पुरुषार्थ– विभिन्न यज्ञों का नियोजित ढंग से निर्वाह करने के लिए व्यक्ति की सभी क्रियाओं को चार प्रमुख दायित्वों के रूप में विभाजित किया गया है–अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष। इन्हीं की समन्वित व्यवस्था को हम 'पुरुषार्थ' कहते हैं। वास्तव में मोक्ष अपने आप में कोई पुरुषार्थ नहीं है बल्कि यह जीवन का चरम लक्ष्य है जिसे प्राप्त करने के लिए धर्म, अर्थ और काम जैसे पुरुषार्थ प्रमुख साधन हैं। धर्म का तात्पर्य विभिन्न परिस्थितियों से सम्बन्धित कर्तव्यों को पूरा करना है। इसका अर्थ है कि व्यक्ति के वर्ण, आश्रम, वंश और सामाजिक स्थिति के अनुसार जो भी उसके कर्तव्य हैं उन्हीं को पूरा करना उसका धर्म है। इसके अतिरिक्त यज्ञों का निर्वाह करना और ईश्वर वन्दना करना भी धर्म का अंग है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए 'अर्थ' को भी एक पुरुषार्थ के रूप में स्पष्ट किया गया। अर्थ का तात्पर्य है–आर्थिक क्रियाओं द्वारा जीविका उपार्जित करना और इस प्रकार अपने आश्रितों की आवश्यकताओं को पूरा करना। इस पुरुषार्थ के द्वारा ही व्यक्ति अतिथि–ऋण और जीव–ऋण से उऋण हो सकता है। 'काम' का तात्पर्य भोग–विलास और यौनिक लिप्सा से नहीं है बल्कि इसका तात्पर्य केवल पश्चात् भी काम को पुरुषार्थों में सबसे गौण स्थान दिया गया है। ये सभी पुरुषार्थ जीवन की पूर्णता के लिए आवश्यक है।

(4) कर्मवाद– भारतीय सामाजिक व्यवस्था में 'कर्म का सिद्धान्त' एक महत्त्वपूर्ण आधार है। कर्म का सिद्धान्त बताता है कि मनुष्य का सबसे

महत्वपूर्ण दायित्व 'कर्म' करना है। 'कर्म सभी प्रकार की सिद्धियों का आधर है। कर्म से पृथक हो जाने से मनुष्य कभी भी अपने अन्तिम लक्ष्य 'मोक्ष' को प्राप्त नहीं हो सकता। कर्म का तात्पर्य भाग्य पर निर्भर रहना नहीं हैं बल्कि फल की इच्छा किये बिना उन सभी दायित्वों को पूरा करना है जिन्हें हमने धर्म, अर्थ और काम के अन्तर्गत स्पष्ट किया है। व्यक्ति यदि फल की इच्छा से कोई कार्य करता है तो वह कर्म से दूर हो जाता है। उसे न तो ऐसे कर्म का कोई लाभ मिलता है और न ही इससे सामाजिक व्यवस्था को स्थिरता मिल पाती है। इस प्रकार कर्मवाद लोक कल्याणकारी है तथा इसका उद्देश्य व्यक्ति में नैतिक उत्तरदायित्व की भावना को विकसित करना है।

(5) पुनर्जन्म– कर्मवाद की धारणा को प्रभावपूर्ण बनाने के किए पुनर्जन्म की धारणा को विकसित किया गया। पुनर्जन्म के सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को यह विश्वास दिलाया गया कि उसे अपने द्वारा किय गये कर्मों का फल अनिवार्य रूप से भोगना पड़ता है। हम जो भी कर्म करते है। उसका कुछ फल हमें इसी जीवन में मिल जाता है, जबकि शेष कर्म 'प्रारब्ध' के रूप में हमारे आगामी जन्म को प्रभावित करते हैं। इसी के द्वारा इस जिज्ञासा का भी समाधान किया गया कि कुछ व्यक्ति वर्तमान जीवन के अच्छे कार्य करने के बाद भी निम्न स्थिति में अथवा बुरे कार्य करने के बाद भी उच्च स्थिति में क्यों हैं? पुनर्जन्म में मनुष्य ही नहीं, बल्कि देवता भी बँधे रहते हैं। अच्छे कर्मों का फल समाप्त हो जाने पर देवताओं को भी पृथ्वी पर पुनः जन्म लेना पड़ता है। इस प्रकार व्यक्ति के सभी

सुख–दुख, सफलता–असफलता, समृद्धि और निर्धनता पूर्व जन्म के कर्मों का ही परिणाम है।

सामज व्यवस्था– भारतीय सामाजिक व्यवस्था का इतिहास इतना प्राचीन है कि जब तक हम परम्परागत भारतीय सामाजिक व्यवस्था की आधारभूत विशेषताओं को नहीं समझ लेते, तब तक इस व्यवस्था को प्रभावपूर्ण बनायें रखने वाली स्तरीकरण की व्यवस्था को नहीं समझाा जा सकता। किसी भी सामाजिक व्यवस्था को समझने के लिए यह ध्यान रखना आवश्यक होता है कि (क) सामाजिक व्यवस्था में व्यक्ति तथा समूहों के अधिकारों की प्रकृति कैसी है, (ख) सामाजिक व्यवस्था किन–किन उप–व्यवसायों में विभाजित है तथा (ग) उस व्यवस्था से सम्बन्धित संस्थाएँ व्यक्ति और समूह के लिए कितनी उपयोगी हैं? भारतीय सामाजिक व्यवस्था में इस दृष्टिकोण से हमें एक अनुपम सहिष्णुता और समन्वय देखने को मिलता है। यहाँ व्यक्ति की तुलना में समाज को अधिक महत्त्व दिया गया तथा व्यक्ति के व्यवहारों को सन्तुलित बनाये रखने के लिये प्रत्येक स्थान पर उसके कर्तव्य निर्धारित कर दिये गये। इस प्रकार सम्पूर्ण भारतीय सामाजिक व्यवस्था को यद्यपि वर्ण–व्यवस्था, आश्रम–व्यवस्था, संयुक्त परिवार, गाँव पंचायत तथा जाति–प्रथा में विभाजित किया गया, लेकिन इन सभी में वर्ण–व्यवस्था को प्रमुख स्थान दिया गया। इसके अतिरिक्त सामाजिक व्यवस्था के प्रति लोगों में निष्ठा बनाये रखने के लिये समाज में धर्म को सर्वोच्च स्थान दिया गया। इतना ही नहीं, अनेक संस्कारों के माध्यम से व्यक्ति का समाजीकरण करने के भी सभी सम्भव प्रयास हुए। इस प्रकार परम्परागत भारतीय सामाजिक व्यवस्था

की आधारभूत विशेषताओं को निम्नांकित विवेचन द्वारा सरलतापूर्वक समझा जा सकता है।

(1) चार वर्णों में समाज का विभाजन– भारतीय सामाजिक व्यवस्था की धुरी वास्तव में वर्ण–व्यवस्था है। यहाँ आरम्भ से ही यह महसूस कर लिया गया था कि यदि आर्थिक आधार पर समाज का विभाजन किया गया तो लोगों में संघर्ष बहुत बढ़ जायेंगे। इस दोष से बचने के लिए यह अच्छा समझा गया कि समाज को एक–दूसरे से भिन्न स्वभाव, गुण और शारीरिक विशेषताओं वाले विभिन्न समूहों में विभाजित कर दिया जाये। इस दृष्टिकोण से सम्पूर्ण समाज को चार प्रमुख वर्णों– ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र–में विभाजित कर दिया गया। इसके साथ ही प्रत्येक वर्ण के कर्तव्य भी इस प्रकार निर्धारित कर दिये गये जिससे उनके बीच व्यर्थ की प्रतियोगिता और संघर्ष उत्पन्न न हो सकें। इस विभाजन में ब्राह्मणों का व्यवसाय सबसे अधिक पवित्र होने अथवा उनमें सबसे अधिक गुण होने के कारण उन्हें सामाजिक संगठन में सर्वोच्च स्थान दिया गया जबकि गुण और कार्य के अनुसार क्षत्रियों, वैश्यों तथा शूद्रों को क्रमशः दूसरा, तीसरा और चौथा स्थान मिला। यह नियम रखा गया कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने वर्ण के अनुसार कर्तव्य करना अनिवार्य है, लेकिन यदि कोई व्यक्ति अपने वर्ण से ऊँचे अथवा नीचे वर्ण के गुण ग्रहण कर लेता है, तो उसके वर्ण की सदस्यता में परिवर्तन भी हो सकता है। इस प्रकार वर्ण व्यवस्था ने सम्पूर्ण समाज को चार भागों में विभाजित करके सामाजिक व्यवस्था में स्थिरता का गुण उत्पन्न किया।

(2) आश्रम–व्यवस्था– कोई भी सामाजिक व्यवस्था तब तक उपयोगी

नहीं बन सकती जब तक उस समाज के सदस्यों की सामाजिक–जीवन पूरी तरह व्यवस्थित न हो। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए भारतीय समाज में व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन को 25–25 वर्षों के चार भागों में बाँट दिया गया। प्रत्येक भाग को एक एक 'आश्रम' कहा जाता है। इन चारों आश्रमों, अर्थात् ब्रह्मचर्य आश्रम, गृहस्थ आश्रम, वानप्रस्थ आश्रम तथा संन्यास आश्रम का उद्देश्य आयु के अनुरूप व्यक्ति का शारीरिक, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक विकास करना और उसे समाज का एक उपयोगी सदस्य बनाना है। ब्रह्मचर्य आश्रम में व्यक्ति का एकमात्र कर्तव्य शिक्षा अथवा ज्ञान प्राप्त करना है जिससे बौद्धिक प्रगति के द्वारा समाज को संगठित रखा जा सके। 25 वर्ष की आयु पूरी हो जाने और विवाह होने के समय से गृहस्थ–आश्रम आरम्भ होता है। इस आश्रम में व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि वह सन्तान को जन्म दे तथा विभिन्न ऋणों से उऋण होने के लिये अपने धार्मिक कर्तव्यों को पूरा करे। 50 वर्ष की आयु हो जाने पर वानप्रस्थ–आश्रम शुरू होता है जिसमें व्यक्ति को परिवार के दायित्व से अलग होकर अपना आध्यात्मिक विकास करना आवश्यक होता है। चौथा संन्यास–आश्रम है, जो आयु के अन्तिम स्वर में पूरी तरह मोक्ष प्राप्त करने के लिए रखा गया। इस आश्रम मे व्यक्ति के द्वारा यह स्पष्ट किया गया है कि व्यक्ति का जीवन अपने लिए नहीं बल्कि दूसरों के लिए है। इसी के फलस्वरूप भारतीय सामाजिक व्यवस्था में व्यक्तिवाद के स्थान पर सामूहिकता की प्रवृत्ति को अधिक प्रोत्साहन मिल सका।

(3) संयुक्त परिवार की परम्परा– बहुत प्राचीनकाल से ही संयुक्त परिवार भारतीय सामाजिक व्यवस्था की एक प्रमुख इकाई रहा है। भारत में सदैव से ऐसे

परिवारों को महत्त्व दिया गया जिसमें एक व्यक्ति के भाई, माता–पिता, विवाहित व अविवाहित पुत्र, उनकी पत्नियाँ और दूसरे रक्त सम्बन्धी साथ–साथ रहते हों। सभी सदस्य परिवार की आय का सम्मिलित रूप से उपयोग करते हों, एक ही रसोई–घर में बना भोजन करते हों तथा धार्मिक कार्यों में मिल–जुल कर हिस्सा लेते हों। ऐसे परिवारों को हम संयुक्त परिवार कहते हैं। संयुक्त परिवार में 'कर्ता' का स्थान सर्वोपरि होता है तथा सभी सदस्य कर्ता की आज्ञा का पालन करना अपना नैतिक कर्तव्य समझते हैं। संयुक्त परिवार की इन विशेषताओं से स्पष्ट हो जाता है कि इन्हीं विशेषताओं के कारण भारतीय सामाजिक व्यवस्था इतने लम्बे समय तक अपरिवर्तनशील रही और सभी व्यक्तियों का जीवन अनुशासित बना रहा।

(4) गाँव–पंचायतों का महत्त्व– भारत सदैव से एक कृषि–प्रधान देश रहा है। इसलिए यहाँ सामाजिक व्यवस्था को दृढ़ बनाने के लिए प्राचीन काल से ही गाँव–पंचायतों को अत्यधिक महत्त्व दिया गया। अनेक प्राचीन धर्म ग्रन्थों में भी इस बात का उल्लेख मिलता है कि यहाँ प्रत्येक गाँव एक आत्मनिर्भर इकाई थी और पंचायतों के द्वारा ही शासन और न्याय का कार्य किया जाता था। इस प्रकार पंचायतों के रूप में 'ग्रामीण गणतन्त्र का रूप भारत की बहुत प्राचीन विशेषता है। शासन और न्याय के लिए प्रत्येक गाँव में पाँच सम्मानित व्यक्तियों का एक संगठन होता था, इसलिए इस संगठन का नाम 'पंचायत' रखा गया। गाँव में 'पंचायत' को व्यापक अधिकार मिले हुये थे। आर्थिक क्षेत्र में पंचायत भूमि का वितरण करती थी,

ग्रामवासियों पर कर (**Tax**) लगाती थी और उन्हें वसूल करती थी। सार्वजनिक क्षेत्र में मनोरंजन की व्यवस्था करना, तालाबों और कुओं का निर्माण कराना तथा मेलों आदि की देख–रेख करना गाँव पंचायतों का ही कार्य था। न्याय के क्षेत्र में तो पंचायतों के अधिकार इतने अधिक थे कि पंचों के आदेश ईश्वरीय आदेश से कम नहीं समझे जाते थे। इसी से 'पंच परमेश्वर' की धारणा का विकास हुआ। साधारणतया यह पंच गाँव से ही अनुभवी, ईमानदार और वृद्ध पुरुष होते थे, इसलिये सभी व्यक्ति उनके आदेशों का पालन करना अपना नैतिक कर्तव्य समझते थे। इस प्रकार पंचायतों ने ग्रामीण प्रशासन में ही योगदान नहीं दिया बल्कि भारत में सामाजिक व्यवस्था की सुदृढ़ बनाने के लिए भी महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

(5) विवाह का धार्मिक स्वरूप– 'काम' अथवा 'यौन' मनुष्य की एक जैविकीय आवश्यकता है। इसके पश्चात् भी जिस समाज में 'काम' को स्वतन्त्र कर दिया गया अथवा इस पर समुचित नियन्त्रण नहीं रखा गया, वहाँ सामाजिक व्यवस्था को सुदृढ़ बनाये रखना भी कठिन हो गया। भारतीय सामाजिक व्यवस्था को इस आशंका से बचाने के लिए विवाह को धार्मिक स्वरूप प्रदान किया गया। व्यक्ति के सामने यह स्पष्ट किया गया कि विवाह का उद्देश्य यौन सन्तुष्ठि करना ही नहीं है। बल्कि सन्तान को जन्म देकर धर्म–कार्यों को पूरा करना है। इस प्रकार विवाह को 'गृहस्थाश्रम का प्रवेश द्वार' माना गया जिसके बिना व्यक्ति मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता। व्यक्ति के जीवन को अधिक अनुशासित रखने और पारिवारिक व्यवस्था को सुदृढ़ बनाये रखने के लिए विवाह को एक 'स्थायी बन्धन' तथा जन्म–जन्मान्तर के सम्बन्ध के रूप में स्पष्ट किया गया। केवल इतना ही

नहीं, विवाह की सम्पूर्ण प्रक्रिया में व्यक्ति के सामने यह स्पष्ट कर दिया जाता है कि पारिवारिक जीवन में व्यक्ति के विभिन्न कर्तव्य क्या हैं और इन कर्तव्यों को व्यक्ति किस प्रकार पूरा करेगा। विवाह के इस धार्मिक स्परूप का ही परिणाम है कि हमारे परिवार आज भी संसार के दूसरे परिवारों की अपेक्षा कहीं अधिक संगठित है और इस प्रकार भारतीय सामाजिक व्यवस्था को दृढ़ बनाने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं।

(6) धर्म की प्रधानता– भारतीय समाज सदैव से ही एक 'धर्म–प्रधान समाज' रहा है। भारतीय समाज को संगठित बनाने के लिए समय–समय पर जितनी भी व्यवस्थाओं का निर्माण हुआ, उन सभी को धार्मिक आधार पर स्पष्ट किया गया। उदाहरण के लिये वर्णों की उत्पत्ति ब्रह्मा के चार अंगों से बतलायी गयी, जातियों का निर्माण पवित्रता और अपवित्रता सम्बन्धी विचारों के आधार पर हुआ, आश्रम–व्यवस्था का सर्वोच्च लक्ष्य 'मोक्ष' रखा गया, विवाह को एक धार्मिक संस्कार कहा गया तथा संयुक्त परिवारों का सबसे बड़ा दायित्व धार्मिक कर्तव्यों की पूर्ति करना माना गया। इस प्रकार व्यक्ति को जन्म से लेकर मृत्यु तक जितनी भी संस्थाएँ प्रभावित करती हैं, सभी के पीछे धार्मिक विश्वासों की शक्ति सबसे अधिक देखने को मिलती है। ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे समाज में बहुत पहले ही यह महसूस कर लिया गया होगा कि केवल धर्म ही एक ऐसी शक्ति है जो व्यक्ति में एकता, सामूहिकता, सच्चरित्रता और उदारता के गुण उत्पन्न कर सकती है तथा समाज के सभी सदस्यों को एक नैतिक बन्धन में बाँध सकती है। इसी के फलस्वरूप भारत में आज भी धर्म व्यक्ति और समाज के जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान

लिये हैं।

(7) संस्कारों द्वारा व्यक्ति का समाजीकरण— भारतीय सामाजिक व्यवस्था में अनेक संस्कारों के द्वारा व्यक्ति का समाजीकरण करने पर बहुत बल दिया गया है। हिन्दू विचारधारा के अनुसार संस्कार वे कृत्य हैं जो व्यक्ति का परिष्कार करते हैं और उसे एक विशेष परिस्थिति के अनुसार कार्य करने का प्रशिक्षण देते हैं। इस दृष्टिकोण से एक व्यक्ति के जन्म लेने के पहले से लेकर उसकी मृत्यु के बाद तक बहुत से संस्कारों को पूरा करने का विधान रखा गया। उदाहरण के लिए गर्भाधान, पुंसवन, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, कर्ण–वेध, विद्यारम्भ, उपनयन, विवाह, अन्त्येष्टि, आदि कुछ विशेष संस्कार हैं, जिनके माध्यम से एक व्यक्ति का सम्पूर्ण जीवन व्यतीत होता है। इनमें से प्रत्येक संस्कार यह स्पष्ट करता है कि एक विशेष अवधि में व्यक्ति को क्या–क्या कार्य पूरे करने चाहिए। इससे व्यक्ति में नैतिक गुणों का विकास होता है और उसे अपने व्यक्तित्व का विकास करने के समुचित अवसर प्राप्त होते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि भारतीय सामाजिक व्यवस्था में व्यक्ति को भी समाज की एक महत्त्वपूर्ण इकाई मानकर उसके समुचित विकास का ध्यान रखा गया।

(8) प्राचीनता तथा मौलिकता— भारतीय सामाजिक व्यवस्था की प्राचीनता इसकी एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है। इसका प्राचीनता इसी बात से स्पष्ट हो जाती है कि पाँच हजार वर्ष पहले जब सम्पूर्ण संसार अज्ञानता और बर्बरता से घिरा हुआ था, तब भारत में वैदिक संस्कृति के विकास की प्रक्रिया आरम्भ हो चुकी थी। इसके साथ ही भारतीय समाज को व्यवस्थित रखने के लिए जिस सामाजिक

व्यवस्था की स्थापना की गयी उसमें मौलिकता का भी गुण है। इसका तात्पर्य है कि भारतीय सामाजिक व्यवस्था हमारे मनीषियों के लम्बे अनुभवों पर आधारित है, इसे किसी अन्य देश अथवा संस्कृति से ग्रहण नहीं किया गया। इसकी स्थापना यहाँ की विशेष सांस्कृतिक, भौगोलिक और सामाजिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए की गयी।

(9) स्थायित्व– भारतीय सामाजिक व्यवस्था में स्थायित्व का गुण है। जहाँ रोम, यूनान और मिस्र की संस्कृतियाँ तथा उन पर आधारित विशेष सामाजिक व्यवस्थाएँ पूरी तरह नष्ट हो गयीं, वहीं भारतीय सामाजिक व्यवस्था आज भी अपने मौलिक रूप को बनाये हुए है। पिछले हजारों वर्षों के इतिहास में हमारे समाज पर शक, हूण, मंगोल और कितने ही दूसरे विदेशी समूहों ने आक्रमण किये लेकिन कोई भी शक्ति हमारी सामाजिक व्यवस्था को पूर्णतया नष्ट नहीं कर सकी। हमारा सामाजिक जीवन आज भी वर्ण, कर्म, धर्म, संयुक्त परिवार तथा गाँव पंचायत की परम्परा से प्रभावित है तथा इसी को हम अपने लिए उपयोगी भी मानते रहे हैं। इस प्रकार हमारा अतीत ही वर्तमान है और वर्तमान ही भविष्य का आधार है।

(10) अनेकता में एकता– भारतीय सामाजिक व्यवस्था इस अर्थ में भी अनुपम है कि यहाँ अनेकता मे भी एकता और विभिन्नता में भी समानता देखने को मिलती है। अनेकता के दृष्टिकोण से भारत में भिन्न–भिन्न धर्मों को मानने वाले हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, इसाई, जैन और बौद्ध निवास करते हैं, प्रत्येक क्षेत्र में अलग–अलग भाषाएँ बोली जाती हैं, सभी क्षेत्रों की जलवायु एक दूसरे से भिन्न हैं, अलग–अलग प्रदेशों में जनसंख्या का घनत्व भिन्न–भिन्न हैं, सभी प्रजातियाँ की

विशेषताएँ यहाँ के निवासियों में पायी जाती हैं तथा लोगों के विश्वासों, व्यवहार के ढंगों और रीति–रिवाजों में भी महान् अन्तर है। इसके बाद भी भारत 'एक राष्ट्र' हैं। यहाँ के धार्मिक विश्वास, वर्ण–व्यवस्था, संयुक्त परिवार और सांस्कृतिक विरासत हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक सभी को एकता के सूत्र मे बाँधें हुए है। इसी कारण श्री नेहरू ने कहा था "युग–युगों से भारत की मौलिक एकता ही उसका महान् और मौलिक तत्त्व रहा है।" जोड़ का भी यही कथन था कि 'अनेकता में एकता उत्पन्न करने की भारतवासियों की योग्यता की मानव–जाति के लिए भारत की विशेष देन रही है।" यह तत्त्व भारतीय सामाजिक व्यवस्था के विशेष चरित्र को पूर्णतया स्पष्ट कर देता है।

भारत का परम्परागत आधार

भारतीय सामाजिक व्यवस्था की उपर्युक्त विशेषताओं के सन्दर्भ में यहाँ कुछ विशेष आधारों पर व्यक्ति की सामाजिक स्थिति का निर्धारण किया गया। ये आधार यद्यपि काफी सीमा तक आज भी प्रभावपूर्ण बने हुये हैं लेकिन इनकी धर्मिता अब उतनी महत्त्वपूर्ण नहीं मानी जाती। इन आधारों को संक्षेप में इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है।

(1) व्यवसाय– भारतीय समाज के लम्बे इतिहास में सामाजिक स्तरों का निर्माण व्यवसाय के आधार पर हुआ है। हमारे समाज में धर्म को सर्वोच्च स्थान मिलने के कारण उन व्यक्तियों को सर्वोच्च सामाजिक स्थिति प्रदान की गई जो धार्मिक क्रियाओं को पूरा करने में अधिक कुशल थे अथवा धार्मिक ज्ञान को

जनसाधारण तक पहुँचाते थे। व्यवसायों के संस्तरण में दूसरा स्थान प्रशासन और रक्षा–कार्य को दिया गया। इस प्रकार इस कार्य को पूरा करने वाले व्यक्तियों से दूसरी श्रेणी का निर्माण हुआ। उपयोगिता के आधार पर तीसरी श्रेणी का व्यवसाय आर्थिक क्रियाओं और पशु–पालन से सम्बद्ध था जबकि उपर्युक्त तीनों श्रेणियों की सेवा करने वाले व्यक्तियों को सामाजिक स्तरीकरण में निम्नतम स्थान दिया गया। इस प्रकार व्यवसाय के आधार पर हमारा सम्पूर्ण सामाजिक स्तरीकरण चार प्रमुख श्रेणियों में विभक्त हो गया। प्रत्येक श्रेणी अथवा स्तर को अन्य स्तरों की तुलना में अधिक अथवा कम सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक अधिकार प्रदान किये गये।

(2) जन्म– भारत में स्तरीकरण के परम्परागत आधारों में 'जन्म' का स्थान भी अत्यधिक महत्त्वपूर्ण रहा है। यह व्यवस्था की गई कि व्यक्ति और समूह की सामाजिक स्थिति आनुवंशिकता पर आधारित रहेगी तथा साधारणतया व्यक्ति की आ आनुवंशिक स्थिति में किसी परिवर्तन को मान्यता नहीं दी जायेगी। इसके पीछे सामाजिक संघर्षों को कम करने की धारणा सबसे अधिक प्रबल थी। इसके साथ ही कर्म की धारणा में विश्वास होने के कारण यह स्वीकार किया गया है कि व्यक्ति अथवा समूह की एक विशेष सामाजिक स्थिति उनके प्रारब्ध (पूर्व जन्म में किये गये कर्म के फल) का परिणाम है। ऐसी दशा में इसमें किसी तरह का परिवर्तन नहीं किया जा सकता।

(3) आयु– आयु सभी समाजों में सामाजिक स्तरीकरण का एक प्रमुख आधार रहा है लेकिन भारतीय समाज में इस आधार का महत्त्व अपेक्षाकृत कहीं

अधिक है। हमारे समाज में वृद्धावस्था अपने आप में एक सम्मानपूर्ण स्थिति है। वृद्ध व्यक्ति चाहे वह धनी हो अथवा निर्धन, योग्य हो अथवा अयोग्य, प्रत्येक व्यक्ति को उसका सम्मान करना आवश्यक है। एक वृद्ध यदि निम्न सामाजिक स्तर का सदस्य है तो भी अपने स्तर के सभी कम आयु के व्यक्तियों में उसकी सामाजिक स्थिति उच्च्य रहेगी। इसी धारणा के आधार पर परिवार और अन्य समूहों में मुखिया का पद आर्थिक साधनों के आधार नहीं, बल्कि आयु के आधार पर निर्धारित करने की परम्परा अपनायी गयी।

(4) गुण तथा स्वभाव– भारतीय साामाजिक स्तरीकरण, के अन्तर्गत विभिन्न श्रेणियों के निर्माण में व्यक्ति के गुण और स्वभाव को भी अत्यधिक महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। गुण तीन प्रकार के बताये गये हैं–सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण। सत्य, पवित्रता और संयम सतोगुण की प्रमुख विशेषताएँ है। रजोगुण में इन विशेषताओं के साथ ही भोग–विलास और सांसारिक इच्छाओं की पूर्ति का भी समावेश है। तमोगुण एक आसुरी वृत्ति है, जिसमें अपरवित्रता, छल–कपट और हिंसा प्रमुख विशेषताएँ है। महाभारत के शान्ति पर्व में यह स्पष्ट किया गया है कि आरम्भ में सभी व्यक्ति एक ही वर्ण (श्रेणी) के थे लेकिन बाद में जिनमें रजोगुण की प्रधानता हो गई, वे क्षत्रिय कहलाये, जिनमें रजोगुण और तमोगुण का मिश्रण पाया गया, वे वैश्य हो गये जबकि तमोगुण को प्रदर्शित प्रदर्शित करने वाले व्यक्ति शूद्र बने। इस प्रकार समाज की चारों श्रेणियों (वर्णों) का निर्माण उनके गुणों के आधार पर ही हुआ था। सामाजिक स्तरीकरण के इस आधार को सम्भवतः प्रमुख स्थान इसलिए दिया गया कि गुण से व्यक्ति के स्वभाव का निर्माण होता है और स्वभाव

में कोई परिवर्तन सरलता से नहीं किया जा सकता। यही तथ्य स्पष्ट करता है कि भारत में सामाजिक स्तरीकरण की व्यवस्था इतनी बन्द प्रकृति की क्यों है।

(5) प्रजातीय भिन्नता– भारतीय व्यवस्थाकारों में से बहुत कम लोगों ने ही प्रजातीय भिन्नता को भारतीय सामाजिक स्तरीकरण का आधार माना हैं, लेकिन ऐतिहासिक प्रमाणों से स्पष्ट होता है कि इस आधार की अवलेहना नहीं की जा सकती। आरम्भ से ही आर्यों (जो कॉकेशाइड स्कन्ध के थे) और द्रविड़ों (जो नीग्रॉयड स्कन्ध के थे) के बीच संघर्ष होने के फलस्वरूप प्रजातीय आधार पर सामाजिक स्तरीकरण की आवश्यकता अवश्य ही महसूस की गयी होगी। आर्य विजेता थे इसलिए उन्होंने सामाजिक स्तरीकरण में उच्च स्थान ले लिया जबकि द्रविड़ों को निम्न स्थिति का घोषित कर दिया गया। इस प्रकार सामाजिक स्तरीकरण के आधारों में प्रजातीय आधार सम्भवतः सबसे पहला आधार था। अन्य आधार तो तभी प्रभावपूर्ण बने जब स्वयं आर्यों के बीच हो स्तरीकरण की आवश्यकता महसूस की जाने लगी। इस प्रकार भारतीय सामाजिक स्तरीकरण में प्रजातीय भिन्नता भी एक महत्त्वपूर्ण आधार रहा है।

हिन्दू धर्म तथा समाज– "भारतीय सामाजिक संस्थाओं का लम्बा इतिहास सदैव से ही यहाँ के धार्मिक जीवन से प्रभावित रहा है। यद्यपि सभी परम्परागत समाजों में धर्म का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण रहता है लेकिन भारत में धर्म ने व्यक्ति की सामाजिक स्थिति को निर्धारित करने तथा सामाजिक स्तरीकरण की व्यवस्था का निर्माण करने में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है। भारत की सभी सामाजिक संस्थाओं का अन्तिम उद्देश्य धर्म के द्वारा प्रतिपादित लक्ष्यों के

अनुसार व्यक्ति को एक सामाजिक प्राणी बनाना रहा है। इस दृष्टिकोण से यह आवश्यक है कि सर्वप्रथम हिन्दू 'धर्म' की वास्तविक अवधारणा से परिचित हो जायें जिससे हिन्दू सामाजिक व्यवस्था का निरूपण किया जा सके।[1]

परम्परागत भारतीय धर्म अथवा हिन्दू धर्म अंग्रेजी के 'रिलीजन' शब्द से बिलकुल भिन्न है। 'रिलीजन' शब्द का मानवशास्त्रीय धारणा (**Anthropological concept**) केवल कुछ अलौकिक विश्वासों और अधिप्राकृतिक शक्तियों से ही सम्बद्ध है, जबकि हिन्दू धर्म कोई अलौकिक विश्वास नहीं है बल्कि यह जीवन की एक विधि है, जो व्यक्ति के उसके वास्तविक कर्तव्यों का बोध कराती है। हमारे समाज में देश, काल परिस्थिति और सामाजिक स्थिति के अनुसार जो भी व्यक्ति का कर्तव्य है, उसी को हम व्यक्ति का 'धर्म' कहते हैं। इस प्रकार हिन्दू–धर्म एक ज्ञान है, अन्धविश्वास नहीं। इस ज्ञान का मूल स्रोत स्वयं मनुष्य का अपना अन्तःकरण है। यद्यपि वेदों में 'अलौकिक' कह दिया जाता है लेकिन समाजशास्त्रीय रूप से ऐसे कथन में विश्वास नहीं किया जा सकता। वास्वत में वेदों में जो मन्त्र अथवा ऋचाएँ हैं, वे हमारी ऋषियों के लम्बे सामाजिक अनुभवों पर आधारित है। इन ऋचाओं के द्वारा अलौकिक विश्वास को प्रधानता न देकर व्यवहार के उपयोगी तरीकों की विवेचना की गयी। इन्हीं के द्वारा सामाजिक व्यवस्था के स्वरूप का निर्धारण किया गया। यह उल्लेखनीय है कि वेद हमारे ध ार्म का मूल स्रोत होते हुए भी धर्म और सामाजिक व्यवस्था का कोई व्यवस्थित विवरण नहीं देते बल्कि इनमें तो केवल ज्ञान का अथाह सागर भरा हुआ है। वेदों के आधार पर आधार धार्मिक नियमों की व्यवस्थित व्याख्या करने का कार्य,

उपनिषदों और गीता में किया गया है। इसके उपरान्त भी हिन्दू धर्म–ग्रन्थों में 'धर्म' शब्द का प्रयोग जिन विविध अर्थों में हुआ उनको संक्षेप में स्पष्ट कर देने के बाद ही हम धर्म के वास्तविक अर्थ को समझ सकते हैं।

धर्म की अवधारणा– हिन्दू धर्म ग्रन्थों 'धर्म' शब्द का उपयोग अनेक अर्थों में किया गया है। सामान्य रूप से कहा जा सकता है कि 'धर्म' शब्द का सम्बन्ध कर्तव्य, स्वभाव, करने योग्य कार्यों, वस्तु के आन्तरिक गुण तथा पवित्रता आदि से है। उदाहरण के लिए, जब हम कहते हैं कि 'गुरु का धर्म' क्या है, तो यहाँ पर हमारा तात्पर्य एक गुरू के वास्तविक कर्तव्य को जानने से होता है। इसी प्रकान्त 'सन्तों का धर्म' शब्द उसके शान्त स्वभाव का बोध करता है और जब हम कहते हैं कि 'प्रत्येक स्थिति में धर्म का पालन करो' तब यहाँ पर धर्म का तात्पर्य 'किसी विशेष परिस्थिति में करने योग्य कार्य' से है। इसी प्रकार 'पानी का धर्म बहना है' उक्ति में धर्म शब्द एक वस्तु के आन्तरिक गुण को स्पष्ट करता है। वास्तव में 'पवित्रता' का सम्बन्ध आचरण की शुद्धता से है और इसलिए इस शब्द को भी अक्सर धर्म के स्थान पर प्रयुक्त कर लिया जाता है। धर्म के इन विविध अर्थों का तात्पर्य यह नहीं है कि हिन्दू धर्म एक अस्पष्ट और भ्रमपूर्ण धारणा है बल्कि वास्तविकता यह है कि हिन्दू धर्म उन सभी परिस्थितियों, मानवीय गुणों व्यक्तियों और वस्तु के आन्तरिक गुणों का बोध कराता है जो व्यक्ति के समाजीकरण में सहायक है। निम्नांकित विवेचन में धर्म के शाब्दिक अर्थ की व्याख्या से यह कथन और अधिक स्पष्ट हो जायेगा।

'धर्म' शब्द 'धृ' धातु से बना है जिसका अर्थ है– धारण करना, बनाये रखना अथवा पुष्ट करना। इसका तात्पर्य है कि जो तत्त्व सम्पूर्ण संसार के जीवन को ध ारण करता हो, जिसके बिना संसार में व्यक्ति की स्थिति सम्भव न हो तथा जिससे सभी कुछ संयमित और सुव्यवस्थित बना रहे, वही धर्म है। इस आधार पर डॉ0 राधाकृष्णन का कथन है कि ''जिस सिद्धान्तों के अनुसार हम अपना दैनिक जीवन व्यतीत करते हैं तथा जिनके द्वारा हमारे सामाजिक सम्बन्धों की स्थापना होती है वही धर्म है, यह जीवन का सत्य है और हमारी प्रकृति को निर्धारित करने वाली शक्ति है।'' वेदों, उपनिषदों, गीता और स्मृतियों में धर्म को भिन्न–भिन्न रूप से परिभाषित किया गया है लेकिन इस सभी का लक्ष्य एक इसी सत्य को स्पष्ट करना है कि ''धर्म जीवन को सम्पूर्णता प्रदान करने की एक विधि है।'' ऋग्वेद में 'धर्म' शब्द का प्रयोग एक ऐसे तत्त्व के लिए कियागया है जो 'ऊँचा उठाने वाला' (उन्नायक) अथवा 'पालन पोषण करने वाला' (सम्पोषक) है। साथ ही कुछ स्थलों पर इसका प्रयोग 'धार्मिक क्रियाओं के नियम के अर्थ में भी हुआ है। ऐतरेय ब्राह्मण में धर्म का अर्थ 'धार्मिक कर्तव्यों के सर्वांग स्वरूप' अर्थात् जप, तप, व्रत, हवन, यज्ञ आदि से है। छन्योग्य उपनिषद में 'धर्म' का तात्पर्य विभिन्न वर्णों के कर्तव्यों से है। इस प्रकार इसके अन्तर्गत ब्रह्मचारी, गृहस्थ अथवा संन्यासी के कर्तव्यों के आधार पर ही धर्म की व्याख्या की गयी है। तैत्तरीय उपनिषद में धर्म का अर्थ जीवन के विभिन्न स्तरों (आश्रमों) से सम्बद्ध कर्तव्यों का पालन करने की ओर संकेत करता है, जबकि पूर्व मीमांसा में इसे केवल जीवन को निर्देशित करने वाला तत्त्व कहा गया है।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि धर्म का मूल सिद्धान्त आत्मज्ञान को प्राप्त कर लेना ही हैं क्योंकि आत्मा ही ईश्वर का वास्तविक निवास स्थान है। "यह ज्ञान ही कि ईश्वर प्रत्येक प्राणी के हृदय में निवास करता है, सभी धर्मों का मूल सिद्धान्त है।" इससे भी यह स्पष्ट होता है कि जो तत्त्व व्यक्तियों के चरित्र और नैतिक भावनाओं को परिष्कृत करें तथा उनमें कर्तव्य की भावना को विकसित करें, वही वास्तविक धर्म है। श्रीचारुचन्द्र चट्टोपध्याय ने उपर्युक्त विचारों को सारांश रूप में प्रस्तुत करते हुए कहा है कि "जिससे मानव जीवन के व्यावहारिक तथा अध यात्मिक पक्षों का विकास हों, जिससे सभी प्रकार का सबका और अपना हित हो, जिससे सभी सुख–सन्तोष मिले, जो जीवन में व्यवस्था, नियमबद्धता, चेतना तथा पवित्रता के द्वारा पूर्णता उत्पन्न करे, जो वेदों का निर्देश हो, वही धर्म है।" वैयक्तिक और सामाजिक दृष्टिकोण के आधार पर कहा जा सकता है कि जो तत्त्व मानव कल्याण की साधना में सहायक हैं, जिसके द्वारा मनुष्य सदैव अभय, अदीनता और आत्म–शान्ति का अनुभव करे, जिससे वास्तविक सन्तोष, वैभव और सुयश प्राप्त हो, जो तत्त्व समाज औश्र राष्ट्रमें सुव्यवस्था सम्पन्नता तथा चेतना में वृद्धि हो जाये अथवा जिससे समाज टूट जाये, वह धर्म नहीं हो सकता। इसी आधार पर आज अनेक जागरूक विद्वान स्मृतियों और पुराणों की कल्पित गाथाओं को 'धर्मशास्त्र' नहीं मानते क्योंकि इन्होंने समाज को 'धारण करने' के स्थान पर अनेक टुकड़ों में बिखरे दिया है। धर्म की यह सभी विशेषताएँ पूर्णतया स्पष्ट करती हैं कि हिन्दू ध र्म अलौकिक विश्वासों पर आधारित नहीं बल्कि इसका वास्तविक आधार वैयक्तिक और सामाजिक जीवन का संगठन है।

"धर्म की उपर्युक्त विशेषताओं के आधार पर इसके दो उद्देश्य स्पष्ट किये जा सकते हैं–(1) अभ्युदय तथा (2) निःश्रेयस्।"[2] अभ्युदय का अर्थ है कि धर्म वह तत्त्व है जो लौकिक सुख, समृद्धि और सम्पन्नता में वृद्धि करता है। निःश्रेयस् का अर्थ है पारलौकिक सफलता अथवा मोक्ष की प्राप्ति। धर्म में पारलौकिकता का तत्त्व किसी अन्धविश्वास से सम्बन्धित नहीं है बल्कि यह कर्म और पुनर्जन्म के महत्त्व को स्पष्ट करता है जिसकी हम आगे विस्तार से विवेचना करेंगे। हिन्दू धर्म का सम्बन्ध 'अभ्युदय' से होने के कारण ही यह भिन्न–भिन्न परिस्थितियों में व्यक्ति को अपने कर्तव्यों में परिवर्तन कने की कुछ छूट भी देता है। इसी आधार पर इसे एक स्थिर धारणा न मान कर एक गतिशील धारणा के रूप में स्वीकार किया जाता है। डॉ0 राधाकृष्णन का कथन है कि "हिन्दू धर्म हमें अनेक नियमों और नियमनों (REGULATIONS) से ही नहीं बाँधता बल्कि कुछ सीमाओं के अन्दर यह व्यवहारों में परिवर्तन करने की भी अनुमति प्रदान करता है। यही कारण है कि हिन्दू धर्म के नियम अलौकिक धारणा से सम्बद्ध होते हुए भी पूर्णतया लौकिक अथवा सांसारिक हैं।"

श्री काणे ने भारतीय जीवन में धर्म को परिभाषित करते हुए कहा है कि "धर्म शब्द से शास्त्रकारों का अभिप्राय किसी ईश्वरीय मत अथवा सम्प्रदाय से नहीं है बल्कि जीवन के एक ऐसे तरीके अथवा आचरण की एक ऐसी संहिता (code of conduct) से है जो एक व्यक्ति के रूप में तथा समाज का सदस्य होने के रूप में व्यक्ति की क्रियाओं को नियमित करती है तथा जिसका प्रयत्न, व्यक्तित्व का क्रमबद्ध विकास करना और व्यक्ति इस योग्य बनाना है कि वह मानव अस्तित्व के

लक्ष्य को प्राप्त कर सके।" इस प्रकार हिन्दू धर्म का रूप 'अनुशासन के माध्यम से स्वतन्त्रता' (freedom through disciplion) के सिद्धान्त पर आधारित है। श्री विवेकानन्द ने हिन्दू धर्म की धारणा को अधिक स्पष्ट करते हुए कहा है कि "अन्य धर्मों से भिन्न, हिन्दू–धर्म भिन्न–भिन्न प्रकार के मतमतान्तरों पर आधारित विश्वास से सम्बन्धित नहीं हैं, वरन् हिन्दू धर्म प्रत्यक्ष अनुभूति अथवा साक्षात्कार का धर्म है हिन्दू धर्म में आध्यात्मिकता का एक जातीय भाव निहित है। यह अनुभूति की वस्तु है, अपने द्वारा कही गयी मनमानी बात, मतवाद अथवा युक्तिमूलक कल्पना नहीं है–चाहे वह कितनी ही सुन्दर क्यों न हो। आत्मा को ब्रह्म के रूप में समझ लेना और उसका साक्षात्कार करना, यही धर्म है। धर्म केवल सुन लेने अथवा मान लेने की चीज नहीं है, बल्कि जब समस्त मन–प्राण विश्वास के साथ एक साथ हो जायें, तब इसी को हम 'धर्म' कहते है। निःस्वार्थ और कर्तव्यपरायण है, वह उतना ही अधिक आध्यात्मिक और शिव के समीप है।"[3]

हिन्दू धर्म के इस संक्षिप्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि यह वास्तव में एक व्यावहारिक धर्म है जिसका प्रमुख उद्देश्य व्यक्ति, समूह और समाज के कर्तव्यों को स्पष्ट करना, मोक्ष प्राप्ति के आदर्श द्वारा नैतिकता ओर समूह कल्याण में वृद्धि करना तथा विभिन्न परिस्थितियों से व्यक्ति को अनुकूलन करने की क्षमता प्रदान करना है। इस कथन की प्राथमिता हिन्दू धर्म के विभिन्न स्वरूपों को स्पष्ट कर देने से और अधिक स्पष्ट हो जाती है।

धर्म के विभिन्न स्परूप–हिन्दू धर्म का सार तत्त्व 'कर्तव्य की भावना' है। इस आधार पर यह भिन्न–भिन्न परिस्थितियों में व्यक्ति के कर्तव्यों का निर्धारण

भिन्न–भिन्न प्रकार से करता है। यही कारण है कि हिन्दू–धर्म के अनेक स्वरूप हैं, लेकिन सभी का अन्तिम उद्देश्य व्यक्ति के 'अभ्युदय' और 'निःश्रेयस्' से सम्बन्धि ात है। यह सर्वविदित तथ्य है कि सभी व्यक्ति सदैव समान परिस्थितियों में नहीं रहते। एक ही व्यक्ति की परिस्थितियों में परिवर्तन होता रहता है। विभिन्न व्यक्तियों की रुचियाँ, मानसिक योग्यता, कार्यक्षमता और अधिकार भी एक जैसे नहीं होते। वास्तविकता यह है कि जब एक ही आचार संहिता और एक जैसे नहीं होते। वास्तविकाता यह है कि जब एक ही आचार संहिता और एक ही साधन–प्रणाली के द्वारा सभी व्यक्तियों के व्यवहारों का रूप निर्धारित किया जाने लगता है तब ध ार्म के विघटन के तत्त्व क्रियाशील हो जाते हैं। अनेक व्यक्ति धर्म को अनुपयोगी समझकर उसकी उपेक्षा करने लगते हैं। हिन्दू धर्म हजारो वर्षों से अपने अस्तित्व को इसलिए बनाये हुए है कि इसके अन्तर्गत धर्म प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक वर्ग के लिए एक उपयोगी तथ्य बना हुआ है।

धर्म के इन विविध स्वरूपों को समझने से पहले उन अभिव्यक्तियों को समझना भी आवश्यक है जिन्हें हम 'अधर्म' में सम्मिलित करते हैं। इन्हें हम विधर्म, परधर्म, उपधर्म, छलधर्म, और धर्माभास कहते हैं। विधर्म का तात्पर्य किसी भी ऐसे कार्य से है जो एक ऐसे कार्य से है जो एक व्यक्ति के धर्म का विरोधी हो, परधर्म का तात्पर्य ऐसा कार्य करने से है जो उस व्यक्ति के लिए नहीं वरन् अन्य व्यक्तियों के लिए निर्धारित किया गया हो। उपधर्म के अन्तर्गत हम उन विचारों को सम्मिलित करते हैं जो निर्धारित आचार–नियमों के विरुद्ध हों। इसी को हम

'पाखण्ड' अथवा 'दम्भ' भी कहते हैं। छलधर्म हमारे आचरणों का वह रूप है जो ध र्म का वास्तविक रूप नहीं होता बल्कि धर्म के नाम पर उसे प्रोत्साहन दिया जाता रहता है। अन्त में, धर्माभास वह स्थिति है जिसमें व्यक्ति अपने लिए निर्धारित धर्म की अवहेलना करके ऐसे आचरणों को न्यायपूर्ण दिखाने का प्रयत्न करता है जिससे उसकी निजी इच्छाओं और हितों की पूर्ति हो सके। यह सभी रूप धर्म की दोषपूर्ण अभिव्यक्तियाँ हैं, जिनका वास्तविक धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं है। हिन्दू धर्म के वास्तविक स्वरूपों को तीन प्रमुख भागों और उनसे सम्बद्ध अनेक उपविभागों को स्पष्ट किया जा सकता है।

(1) सामान्य धर्म– सामान्य धर्म का अर्थ के उस रूप से है जो सभी के द्वारा अनुसरणीय है। व्यक्ति चाहे निम्न वर्ण का हो अथवा उच्च वर्ण का, आयु से छोटा हो अथवा बड़ा, धनी हो अथवा निर्धन, स्त्री हो अथवा पुरुष, राजा हो अथवा प्रजा, सामान्य धर्म का पालन करना सभी कर्तव्य है। यह धर्म किसी एक परिवार, समूह अथवा देश का ही नहीं होता बल्कि यह सम्पूर्ण मानव जाति का धर्म है। सामान्य धर्म का सम्बन्ध अनेक नैतिक नियमों से है और नैतिक नियम सम्पूर्ण मानव जाति के लिए समान होते हैं, इसलिए सामान्य धर्म का 'मानव धर्म भी कहा जाता है। सामान्य धर्म प्रत्येक रूप में उपयोगी है। यदि इसका पालन किसी इच्छा को लेकर किया जाता है तब इससे लौकिक कल्याण में वृद्धि होती है और निष्काम रूप से इसका पालन करने से मोक्ष अथवा निर्वाण की प्राप्ति होती है। सामान्य धर्म इस सत्य पर बल देता है कि सभी धर्मों का लक्ष्य की प्राप्ति करना है कि 'सर्वे

भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः। व्यास का कथन है कि मनुष्य से श्रेष्ठ और कुछ नहीं है।' इस प्रकार सामान्य धर्म का उद्देश्य मनुष्य की इसी श्रेष्ठता को बनाये रखना और उसे सामान्य कल्याण की ओर प्रेरित करना है।"[4]

श्रीमद्भागवत में देवर्षि नारद ने प्रह्लाद को धर्म का उपदेश देते हुए सामान्य धर्म के तीस लक्षण बताये हैं–1 सत्य, 2 दया, 3 तपस्या, 4 पवित्रता, 5 कष्ट सहने की क्षमता, 6 उचित–अनुचित का विचार, 7 मन का संयम, 8 इन्द्रियों का संयम, 9 अहिंसा, 10 ब्रह्मचर्य 11 त्याग, 12 स्वाध्याय 13 सरलता, 14 सन्तोष, 15 सभी के लिए समान दृष्टि, 16 सेवा 17 धीरे–धीरे, 18 लौकिक सुख के प्रति उदासीनता, 19 मौन, 20 आत्म–चिन्तन, 21 सभी प्राणियों में अपने आराध्य को देखना तथा उन्हें अन्न देना, 22 महापुरुषों का संग, 23 ईश्वर का गुण–गान, 24 ईश्वर–चिन्तन, 25 ईश्वर सेवा, 26 पूजा तथा यज्ञों का निर्वाह, 27 ईश्वर के प्रति दास–भाव, 28 ईश्वर वन्दना, 29 सखा–भाव, 30 ईश्वर को आत्म समर्पण। धर्म को 'सामान्य धर्म' कहा जाता है। इन सभी लक्षणों का सार यह है मानवीय गुणों का विकास, दायित्व का निर्वाह, आध्यात्मिकता और प्रत्येक वस्तुस्थिति को ईश्वर के निमित्त मानना सामान्य धर्म का आधार है। मनुस्मृति के सामान्य धर्म के 10 लक्षण बताते हुए कहा गया है:–

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।।

इन्हीं लक्षणों के आधार पर प्रस्तुत विवेचन में हम सामान्य धर्म के प्रमुख

तत्त्वों को स्पष्ट करेंगे :

(1) धृति– अपनी जीभ अथवा ज्ञानेन्द्रियों पर संयम रखना ही धृति कहलाता है। जो व्यक्ति धृति अथवा धैर्य का गुण विकसित कर लेता है। उसे हम 'धीर' कहते हैं। धीर व्यक्ति की परिभाषा देते हुए महाकवि कालिदास ने 'कुमार–सम्भवम्' महाकाव्य में कहा है कि "मन का विकार होने पर भी जिसका मन अथवा चित्त विकृति नहीं होता, वह धीर है।" यद्यपि इसकी साधना कठिन है तो भी यह सामान्य धर्म का आधारभूत लक्षण है।

(2) क्षमा– क्षमा का तात्पर्य सबल होते हुए भी उदार व्यवहार करना है। जो व्यक्ति निर्बलता अथवा कायरता के कारण अन्याय को सहन कर लेते हैं, उन्हें क्षमावान नहीं कहा जा सकता है। महाभारत में कहा गया है कि 'क्षमा सदैव श्रेयस्कर नहीं होती। गम्भीर दोषों के लिए तो दण्ड देना ही हितकर है, लेकिन सामान्य दोष को सहन करने दोषी व्यक्ति को क्षमा कर देना ही मनुष्य के लिए श्रेयस्कर है।" जब मनुष्य स्वयं को अनेक बार क्षमा कर सकता है तब दूसरे व्यक्तियों के प्रति भी यही दृष्टिकोण क्यों न अपनाया जाये? इस प्रकार धर्म का यह लक्षण एक सामान्य नीति को स्पष्ट करता है।

(3) काम और लोभ का संयम– मनुस्मृति में कहा गया है कि इन्द्रियों के विशेष संग से मनुष्य का जीवन दोषपूर्ण हो जाता है जबकि इन्द्रियों को नियन्त्रण में रखने से वही मनुष्य सिद्धि प्राप्त कर सकता है। केवल काम और लोभ को ऊपर से दबाकर मन ही मन उसका स्मरण करना और भी अधिक बुरा होता

है। गीता में इस स्थिति को 'मिथ्याचर' कहा गया है। इस प्रकार शारीरिक वासनाओं को रोककर अपने जीवन को शुद्ध और नियमित बनाना मानव धर्म है।

(4) अस्तेय– सामान्य रूप से अस्तेय का अर्थ 'चोरी न करना' है, लेकिन सामान्य धर्म के लक्षण के रूप में इसे परिभाषित करते हुए कहा गया है कि "सोये हुये, पागल, अथवा अविवेकी व्यक्ति से विविध उपायों द्वारा जल करके कोई वस्तु ले लेना ही चोरी है।" (नारदस्मृति) इसी आधार पर हिन्दू धर्म में 'पर द्रव्येषु लोष्ठवत्' का आदर्श सामने रखा गया है। महर्षि पतंजलि का कथन है कि जो व्यक्ति अस्तेय धर्म का सिद्ध कर लेता है उसके पास सम्पूर्ण समृद्धि स्वयं एकत्रित हो जाती है।

(5) शुचिता अथवा पवित्रता– पवित्रता का तात्पर्य केवल, स्नान कर लेने अथवा वस्त्रों को स्वच्छ रख लेने से नहीं है। यह तो केवल शारीरिक पवित्रता ही हुई जिसका अधिक महत्त्व नहीं है। पवित्रता का वास्तविक अर्थ मन, जीवात्मा तथा बुद्धि को पवित्र रखना है। वास्तव में सत्य बोलने से मन की शुद्धि होती है, तप के द्वारा जीवात्मा पवित्र बनती है और ज्ञान के द्वारा बुद्धि शुद्ध होती है। लेकिन जैसा कि मनुस्मृति में उल्लेख है। 'इन सभी शुद्धियों में न्याय से प्राप्त किये गये धन की शुद्धि सर्वश्रेष्ठ है क्योंकि जो धन में शुद्ध है वह वास्तव में शुद्ध है और जो मिट्टी या जल से शुद्ध है, उसे अशुद्ध मानना चाहिए।" (मनुस्मृति 5/106)। इस प्रकार जो व्यक्ति न्याय और श्रम से धन प्राप्त करके इसका उपभोग करता है उसका शरीर, मन, जीवात्मा और बुद्धि अपने आप शुद्ध हो जाती है। यह पवित्रता ही व्यक्ति

में दैवी भावनाओं का विकास करती है, जबकि अशुचि आसुरी वृत्तियों का आधार है।

(6) इन्द्रिय–निग्रह– मनुस्मृति और गीता में इन्द्रिय–निग्रह को धर्म का एक महत्त्वपूर्ण लक्षण माना गया है, क्योंकि इन्द्रियों का दमन न हो सकने पर मनुष्य के समस्त लक्ष्य अर्थहीन हो जाते हैं। गीता में इन्द्रिय–निग्रह को मानव–जीवन का वास्तविक आधार मानते हुए कहा गया है कि "इन्द्रियों पर नियन्त्रण न रखने से विषयों में आसक्ति बढ़ती है, विषय कामनाओं की पूर्ति न होने से क्रोध उत्पन्न होता है, क्रोध से मूढ़ता आती है, मूढ़ता उत्पन्न होते ही स्मृति–विभ्रम उत्पन्न हो जाता है, स्मृति का नाश होते ही बुद्धि नष्ट हो जाती है और बुद्धि का नाश होने पर मनुष्य का ही सर्वनाश हो जाता है।" इस प्रकार इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखने से ही सच्चे लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है।

(7) 'धी' अथवा 'बुद्धि'– धर्म का सातवाँ प्रमुख लक्षण बुद्धि का समुचित विकास है क्योंकि इसके बिना किसी भी कर्तव्य की पूर्ति नहीं की जा सकती। बुद्धि के विकास का तात्पर्य केवल वेदों अथवा धर्मशास्त्रों का अध्ययन कर लेना ही नहीं है बल्कि इसका तात्पर्य प्रत्येक दशा में उचित और अनुचित को समझ लेने की शक्ति प्राप्त करना है। बुद्धि का विकास राग–द्वेष की समाप्ति पर ही सम्भव है। व्यक्ति जैसे–जैसे सभी प्राणियों में अपने ही समान आत्मा होने का अनुभव करता जाता है, उसकी बुद्धि स्वयं परिपक्व होती जाती है (आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्चति सः पण्डितः)

(8) विद्या– कहा गया है कि 'नास्ति विद्यासमं चक्षु' अर्थात् विद्या से महत्त्वपूर्ण कोई दृष्टि नहीं है। शास्त्रों का पठन–पाठन अथवा सिद्धान्त को समझ लेना ही विद्या नहीं है, बल्कि वास्तव में विद्या वह है जो मनुष्य को काम, क्रोध, लोभ, मोह और मन की क्षुद्र वृत्तियों से छुटकारा दिलाती है। जिस विद्या के द्वारा मनुष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष जैसे चारों पुरुषार्थों के वास्तविक ज्ञान को प्राप्त कर लेता है, वही वास्तविक विद्या है। विद्या का तात्पर्य वास्तव में विवेक–बुद्धि को विकसित करना है। यही ज्ञान–मार्ग है जिसके द्वारा न केवल मोक्ष को प्राप्त किया जा सकता है, बल्कि मानव–कल्याण में भी सबसे अधिक योगदान किया जा सकता है।

(9) सत्य– ऋग्वेद में कामना की गयी है कि "सत्यम् वद धर्मम् चर।" वास्तव में, सत्य ही मनुष्य का परम धर्म है। सत्य का अर्थ केवल सच बोलना ही नहीं, बल्कि जो भी सब प्राणियों के लिए कल्याणकारी है, वही सत्य है। महाभारत में सत्य के तेरह रूप बताये गये हैं। इसके अनुसार पक्षपात न करना, इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखना, क्षमाशीलता, सहिष्णुता, लज्जा, बिना प्रतिकार किये हुए कष्ट को स्वीकार करने की क्षमता, दान, ध्यान, करने और न करने योग्य कार्यों को समझने का स्वभाव, धृति, दया और अहिंसा सत्य के विभिन्न रूप हैं। इससे स्पष्ट होता है कि "सत्य" के अन्दर ही सामान्य धर्म के सभी लक्षण आ जाते हैं। इसी आधार पर सत्य को सभी धर्मों का मूल आधार कहा जाता है।

(10) अक्रोध– क्रोध मन का वह भाव है जो इच्छाओं के अपूर्ण रहने पर

उत्पन्न होता है और असामान्य शारीरिक क्रियाओं के द्वारा इसकी अभिव्यक्ति होती है। क्रोध सभी अवगुणों का आधार है और क्रोध की स्थिति में सभी इन्द्रियाँ मनुष्य पर अपने आप ही अधिकार जमा लेती हैं। इस प्रकार अपने कर्तव्य की पूर्ति वही व्यक्ति कर सकता है जो क्रोध से दूर और शान्त मन से प्रत्येक स्थिति को समझने का प्रयत्न करे।

सामान्य धर्म के उपर्युक्त सभी लक्षणों से स्पष्ट होता है कि ये लक्षण किसी एक धर्म से नहीं वरन् सम्पूर्ण मानव–धर्म से सम्बद्ध है। इनके समुचित विकास से ही व्यक्ति का शारीरिक, आत्मिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक विकास हो सकता है। ये सभी लक्षण व्यक्ति के कर्तव्य की पूर्ति में सहायक हैं और इसलिए इनका सामाजिक महत्त्व भी कम नहीं है। इसी आधार पर विनोबा भावे का कथन है कि "जो व्यक्ति परहित साधना में लगा रहता है, वही मानवता को अपना धर्म बना सकता है। इस मानव धर्म की प्राप्ति में नैतिकता और आध्यात्मिकता का आश्रय अत्यधिक आवश्यक है।

विशिष्ट धर्म– हिन्दू संस्कृति की यह विशेषता है कि जहाँ इसमें एक ओर एक सर्वव्यापी मानव–धर्म का निरूपण किया गया है वहीं इस तथ्य को भी ध्यान में रखा गया है कि समय, परिस्थिति और स्थान के अनुसार सभी व्यक्तियों के लिए भिन्न–भिन्न कर्तव्यों को पूरा करना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त विभिन्न व्यक्तियों के गुण, स्वभाव, व्यवहार, आयु और सामाजिक पद में भी भिन्नता होती है। ऐसी स्थिति मे सभी व्यक्तियों का धर्म अथवा कर्तव्य एक दूसरे से कुछ भिन्न होना

आवश्यक है। उदाहरण के लिए, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के धर्म अपने–अपने वर्ण के अनुसार हैं, ब्रह्मचारी गृहस्थ, वानप्रस्थी और सन्यासी के धर्म एक दूसरे से पृथक है, स्त्री का धर्म पुरुष से भिन्न है, गुरु और शिष्य एक दूसरे से भिन्न होता है, सैनिक का धर्म एक राजा का धर्म दूसरा है, पिता और पुत्र अथवा मित्र के रूप में भी व्यक्ति का धर्म भिन्न–भिन्नं है। इस एकार समाज में दूसरे समाज में दूसरे व्यक्तियों की तुलना में एक व्यक्ति की जो स्थिति होती है और उसके सामने जिस प्रकार की परिस्थितियाँ होती है, उसके अनुसार निर्धारित होने वाले कर्तव्यों को ही विशिष्ट धर्म कहा जाता है। इस धर्म की विशेषता यह है कि व्यक्ति का विशिष्ट ध ार्म चाहे नीची स्थिति प्रदान करता हो अथवा ऊँची, लेकिन ऐसा विश्वास किया जाता है कि अपने धर्म का पालन करने से ही व्यक्ति मोक्ष का अधिकारी होता है। कुछ विद्वानों ने इस विशिष्ट धर्म को सामान्य धर्म से भी अधिक महत्त्वपूर्ण बताया है क्योंकि सामान्य धर्म से केवल व्यक्ति का परिष्कार होता है जबकि विशिष्ट धर्म का पालन सम्पूर्ण समाज को संगठित रखने में सहायक है।

विशिष्ट धर्म को 'स्वधर्म' भी कहा जाता है– क्योंकि यह एक विशेष व्यक्ति का अपना धर्म होता है, सामान्य व्यक्तियों का सामान्य धर्म नहीं। अनेक हिन्दू धर्म शास्त्रों में विशिष्ट धर्म अथवा स्वधर्म को सामान्य धर्म की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण बताया गया है और इसलिये यह विधान है कि यदि किसी परिस्थिति में स्वधर्म औश्र सामान्य धर्म में से एक का ही निर्वाह किया जा सकता हो तो स्वधर्म को ही अधिक महत्त्व दिया जाना उचित है। इस सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह उठता

है कि स्वधर्म का निर्धारण कैसे हो? क्या परिस्थिति के अनुसार व्यक्ति को स्वयं ही अपना धर्म निर्धारित कर लेने की छूट है? वास्तविकता यह है कि स्वधर्म के निर्धारण में व्यक्ति को अधिक स्वतन्त्रता नहीं दी गयी है, क्योंकि इससे तो पुनः संघर्षों में वृद्धि हो जाने की सम्भावना रहती है। यह स्वीकार किया गया कि प्रत्येक व्यक्ति के विशिष्ट धर्म को जाने का साधन भी शास्त्र ही हैं। अनेक विद्वानों का विश्वास है कि वर्तमान समय में धर्म के प्रति बढ़ती हुई उदासीनता का प्रमुख कारण यह है कि व्यक्ति अपने विशिष्ट धर्म से परिचित नहीं हाते। जब कभी कुछ विशेष परिस्थितियों में सामान्य धर्म के नियम उन्हें कठिन और अव्यावहारिक प्रतीत होने लगते हैं तब वे धर्म के प्रति ही उदासीन हो जाते हैं। वास्तविकता यह है कि हिन्दू धर्म इस विशिष्ट धर्म को ही सबसे अधिक महत्त्व प्रदान करता है। इसी आधार पर गीता में कहा गया है कि "स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः" (गीता 3/35) अर्थात् अपने धर्म के लिये मर जाना भी श्रेयस्कर है, लेकिन दूसरे के धर्म का पालन करना एक गम्भीर दोष है। विशिष्ट धर्म की प्रकृति को इसके कुछ प्रमुख स्वरूपों के आधार पर सरलतापूर्वक समझा जा सकता है।

(1) वर्ण धर्म– सामाजिक संगठन के दृष्टिकोण से हिन्दुओं को चार वर्णों में विभक्त किया गया है– ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। धार्मिक रूप से इन चारो वर्णों के पृथक–पृथक धर्म (कर्तव्य) निर्धारित किये गये हैं जिससे प्रत्येक व्यक्ति दूसरे की तुलना में अपने दायित्वों का उचित रूप से निर्वाह कर सके। इस प्रकार ब्राह्मणों का धर्म अध्ययन करना, यज्ञ व धार्मिक कार्यों की व्यवस्था करना दान

देना तथा लेना और क्षमाशीलता प्रमुख हैं। क्षत्रियों का धर्म सभी वर्णों के लोगों के जीवन तथा सम्पत्ति की रक्षा करना, अध्ययन करना, दान देना धर्म युद्ध में अचल प्रवृत्ति रखना तथा शौर्य को बनाये रखना है। वैश्यों का धर्म कृषि करना, पशु पालन करना, व्यापार करना, धन के संग्रह द्वारा विभिन्न वर्णों की आर्थिक आवश्यकताओं को पूरा करना, अध्ययन करना तथा दान देना आदि हैं। शूद्रों का धर्म उपर्युक्त तीनों वर्णों की मन, वचन तथा क्रम से सेवा करना है।

(2) **आश्रम धर्म**– आश्रम धर्म प्रत्येक व्यक्ति द्वारा अपन लिये, दूसरे व्यक्तियों के लिये तथा सम्पूर्ण समाज के प्रति कर्तव्यों को पूरा करने के दृष्टिकोण से जीवन को चार आश्रमों में विभाजित किया गया है– ब्रह्मचर्य आश्रम, गृहस्थ आश्रम, वानप्रस्ति आश्रम तथा सन्यास आश्रम। प्रत्येक आश्रम में व्यक्ति के कुछ विशेष धर्म निर्धारित किये गये हैं जिससे वह अपना शारीरिक, नैतिक औश्र आत्मिक विकास करने मोक्ष के अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त कर सके। इस प्रकार ब्रह्मचारी का धर्म अध्ययन करना, गुरु की सेवा करना, धर्म में निष्ठा रखना तथा इन्द्रियों पर पूर्ण नियन्त्रण रखकर पवित्र जीवन व्यतीत करना है। गृहस्थ का प्रमुख कर्तव्य धर्म, अर्थ और काम की पूर्ति के द्वारा मोक्ष को प्राप्त करना है। इस प्रकार पंच महायज्ञों की पूर्ति, विभिन्न आश्रमों के व्यक्तियों की सहायता और सन्तानोत्पति के द्वारा समाज की निरन्तरता बनाये रखना गृहस्थ के प्रमुख धर्म है। वानप्रस्थी का धर्म सम्पूर्ण विषय भोगों पर नियन्त्रण रखकर परिवार का मोह छोड़ देना तथा धर्म और सेवा के द्वारा निष्काम भाव से ही शरीर की रक्षा करना सन्यासी का धर्म है।

(3) कुल धर्म– भारतीय संस्कृति में कुल अथवा परिवार को सामाजिक व्यवस्था का केन्द्रीय तत्त्व माना गया है। इस आधार पर कुल धर्म का तात्पर्य परिवार के सभी सदस्यों द्वारा दूसरे सदस्यों के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन करना और परिवार की परम्पराओं में निष्ठा बनाये रखना है। इस प्रकार कुल धर्म के अन्तर्गत हम प्रमुख रूप से (क) पति–धर्म (ख) पत्नी धर्म, (ग) पुत्र धर्म, (घ) भ्रातृ धर्म आदि का सम्मिलित करते है। पति का धर्म अपनी पत्नी और बच्चों की आवश्यकताओं को पूरा करना, यौनिक सदाचार करना, वृद्ध माता–पिता की सेवा करना, परिवार में स्नेह की वृद्धि करना, विनम्रता और सहानुभूति के द्वारा मधुर सम्बन्धों की स्थापना करना, क्रोध रहित होना, तथा 'सब कुछ ईश्वर का है' यह समझते हुए परिवार के साधनों का सभ सदस्यों में उचित वितरण करना है। पत्नी का धर्म यौनिक परित्रता, पति की सेवा, पति की इच्छाओं की पूर्ति, सरलता, लज्जा, संस्कारों की पूर्ति, करुणा औश्र वात्सल्य के द्वारा सभी सदस्यों के सामने एक आदर्श प्रस्तुत करना है। पुत्र के रूप में व्यक्ति का धर्म, श्राद्ध द्वारा अपने पितृव्यों को परक से बचाना, पितृ ऋण, ऋषि ऋण से उऋण होने के प्रयत्न करना, जितेन्द्रिय, प्रियवादी, धीर औश्र सेवापरायण होना और माता–पिता की सभी इच्छाओं को पूरा करना है। भाई के रूप में व्यक्ति का धर्म त्याग निष्ठा और उचित पथ–प्रदर्शन के द्वारा परिवार के कल्याण में वृद्धि करना है। इन विशिष्ट धर्मों के अतिरिक्त परिवार में सभी सदस्यों द्वारा कुल परम्परा की रक्षा करना संस्कारों की पूर्ति करना तथा कुल की प्रतिष्ठा को बनाये रखना उनका प्रमुख दायित्व है। इस

प्रकार कुल धर्म का सम्बन्ध पारिवारिक जीवन को संगठित बनाये रखने से है।

(4) राज धर्म– महाभारत के अनुशासन पर्व में राज धर्म की व्यापक विवेचना की गयी है। राजा, क्योंकि समाज और धर्म का रक्षक है, इसलिए सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था को सन्तुलित बनाने के लिए राजा के कर्तव्य दूसरे व्यक्तियों के धर्मों से बहुत भिन्न है। इस अर्थ में राजधर्म भी एक विशेष धर्म हैं राजा का प्रमुख धर्म अपने पराक्रम से शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिये सदैव तत्पर रहना है। इस धर्म का पालन न करने पर उसे शीघ्र ही शत्रुओं द्वारा नष्ट कर दिया जाता है। जो राजा अपने देश और धर्म की रक्षा करते हुए वीरगति पाता है, वह परम गति (मोक्ष) का अधिकारी होता है। राजा का धर्म है कि वह राजोचित व्यवहारों का पालन करे–अर्थात् दृढ़–प्रतिज्ञ होना, कर्मचारियों के समुचित पोषण की व्यवस्था करना, योद्धाओं का सत्कार करना, उद्देश्य की प्राप्ति की लिए कुटिल नीति का भी प्रयोग करन लेना राज धर्म का आधार है। राजधर्म के अन्तर्गत राजा को दोषी व्यक्तियों के लिए दण्ड देना और यदि आवश्यक हो तब शारीरिक उत्पीड़न तक की आज्ञा देने का विधान रखा गया है। इससे भी राजधर्म की विशिष्टता और व्यावहारिकता स्पष्ट हो जाती है।

(5) युग धर्म– मनुस्मृति, पाराशरस्मृति और पद्मपुराण में युग धर्म की भी विवेचना की गयी है। हिन्दू धर्म इस तथ्य के प्रति जागरूक रहा है कि समय व्यतीत होने के साथ ही व्यक्ति के कर्तव्यों में कुछ परिवर्तन हो जाना भी स्वाभाविक हैं इस आधार पर यह स्पष्ट किया गया है कि सतयुग में तप–धर्म, त्रेतायुग में

ज्ञान–धर्म, द्वापर युग में यज्ञ–धर्म और कलियुग में दान–धर्म सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। धर्मशास्त्रों के अन्तर्गत युग धर्म का विवेचन भले ही प्रतीकात्मक हो लेकिन यह हम आज भी मानते हैं कि समय बदलने के साथ ही समाज की नैतिकता सांस्कृतिक प्रतिमानों, आचार–विचारों और व्यवहारों में परिवर्तन होता रहता है। हिन्दू धर्म ने इन परिवर्तित परिस्थितियों के महत्त्व को स्वीकार करते हुए इनके अनुसार ही व्यक्तिगत कर्तव्यों में कुछ परिवर्तन करने की छूट दी है। इस प्रकार भी धर्म का ह रूप धर्म की गतिशील प्रकृति को स्पष्ट करता है।

(6) मित्र धर्म– हिन्दू धर्म में मित्रता के बन्धन को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है और इसलिए यहाँ तक विधान है कि यदि कोई व्यक्ति अपने बड़े भाई से भी मित्रता का भाव रखता है तब उस पर भ्रातृधर्म की अपेक्षा मित्र धर्म पहले लागू होगा। मित्र धर्म दोनों पक्षों को समान अधिकार देता है जिसमें व्यक्ति की आयु सम्पत्ति और सामाजिक स्थिति के आधार पर किसी प्रकार का भेद नहीं किया जा सकता। एक मित्र का दूसरे मित्र के प्रति कर्तव्य है कि उसे धर्म के अनुरूप शिक्षा देकर कर्तव्य की ओर प्रेरित करे, अपने मन, वचन और शरीर से उसकी रक्षा करे, उसके दुख में दुख, सुख में सुख का अनुभव करे, दूसरों के सामने मित्र के गुणों को स्पष्ट करे तथा अवगुणों को छिपाये, मित्र के लिए सभी प्रकार त्याग करने को तैयार रहे तथा मित्र से कुछ भी छिपाने का प्रयत्न न करे। इस कर्तव्यों के विवेचन से भारतीय धर्म में मित्रता का महत्त्व स्पष्ट हो जाता है।

(7) गुरु धर्म– धर्म के अन्तर्गत गुरु को जहाँ ब्रह्मा, विष्णु और महेश को प्रतिरूप माना गया है वहीं गुरु के कुछ धर्म भी निर्धारित किये गये हैं जिनका

समुचित रूप से निर्वाह किया जाना आवश्यक है। गुरु का सर्वप्रमुख धर्म अहिंसा और त्याग के द्वारा ज्ञान का प्रसार करना तथा सर्वअधिकार सम्पन्न होने पर भी अधिकारों का त्याग करना है। इसके अतिरिक्ति अपने शिष्यों का हित सोचना, शिष्य से पराजय मिलने पर भी गर्व का अनुभव करना, लोभ और दम्भ से सदैव दूर रहना तथा इन्द्रियों पर पूर्ण नियन्त्रण रखना भी धर्म के आधारभूत तत्त्व हैं। गुरु के इसी धर्म को व्यावहारिक रूप देने के लिए आश्रम व्यवस्था के अन्तर्गत यह पद उन्हीं व्यक्तियों को दिया जाता था जो वानप्रस्थ आश्रम में रहकर त्याग का जीवन व्यतीत कर रहे हों।

विशिष्ट धर्म के उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि यह एक व्यावहारिक धर्म है जो प्रत्येक व्यक्ति का अपनी स्थिति से अनुकूलन करने का अवसर प्रदान करता है। वास्तविकता यह है कि समाज में प्रत्येक किसी न किसी के लिए एक आदर्श होता है। इसलिए व्यक्ति का आचरण केवल उसी जीवन को प्रभावित नहीं करता बल्कि बहुत से दूसरे व्यक्तियों को भी प्रभावित करता है। यही कारण है कि हिन्दू धर्म के स्वधर्म के निर्वाह को इतना महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। गीता में जिसे 'कर्म' कहा गया है उसका तात्पर्य भी वास्तव में 'स्वधर्म' का ही पालन करना है। जब व्यक्ति अपने स्वधर्म का पालन निष्काम भाव से करता है तब इसी को 'निष्काम कर्मयोग' कहा जाता है। व्यक्ति का धर्म चाहे वेदाध्ययन हो, शत्रु से लड़ना हो, व्यापार करना हो अथवा केवल सेवा करना हो, यदि वह इसका पालन स्वधर्म के रूप में करता है, तब यही सच्चा कर्म है। यही कारण है कि हिन्दू समाज में

धर्म और कर्म एक–दूसरे के पर्याय हैं तथा यह दोनों एक ही तथ्य की दो विभिन्न अभिवक्तियाँ हैं।

आपद्धर्म– हिन्दू धर्म में यद्यपि सभी व्यक्तियों के लिए सामान्य और विशेष दोनों प्रकार के धर्मों का निर्धारण किया गया है लेकिन साथ ही हिन्दू शास्त्रकार इस बारे में एकमत हैं कि आपत्तिकाल में सामान्य और विशेष धर्म में कुछ परिवर्तन कर लेने पर भी व्यक्ति को इसका कोई दोष नहीं लगता। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में रोग, शोक, विपत्ति और धर्म–संकट की परिस्थितियाँ अक्सर उत्पन्न होती रहती है। इन परिस्थितियों में व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि व अपने सामान्य अथवा विशेष धम्र के पालन में इतना संशोधन कर ले जिससे अधिक महत्त्वपूर्ण पक्ष की रक्षा की जा सके। इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि आपद्धर्म का निर्वाह उतने ही अंश में किया जाना चाहिये जितने अंश में कोई विपत्ति व्यक्ति पर हो। इस अर्थ में आपद्धर्म एक अस्थायी धर्म है। कुछ उदाहरणों से इस धर्म की प्रकृति को स्पष्ट किया जा सकता है– उपनिषदों में एक ऋषि की कथा आती है जो अकाल के कारण भूख से मरणासन्न थे। इस स्थिति में उनके सामने अपने धर्म के पालन की अपेक्षा शरीर रक्षा का धर्म अधिक महत्त्वपूर्ण था और इसलिए उन्होंने एक शूद्र से उसके झूठे उड़द लेकर खा लिये। इसके उपरान्त भी उसके यहाँ पानी नहीं पिया क्योंकि पानी उन्हीं कहीं और भी उपलब्ध हो सकता था। इसी प्रकार धर्मराज युधिष्ठिर द्वारा 'युद्ध में अश्वत्थामा मारा गया' की घोषणा करना भी आपद्धर्म की स्थिति को ही स्पष्ट करता है, क्योंकि इस अप्रत्यक्ष झूठ को न कहने से उन्हें

श्रीकृष्ण की अवज्ञा तथा अपने साथियों की हार का बड़ा दोष लग सकता था। आपत्तिकाल में धर्म की रक्षा के लिए झूठ बोल देने तक की अनुमति प्रदान की गयी है। उदाहरण के लिये, एक बार गाय बाधिकों से रस्सा तुड़ाकर किसी प्रकार भागी और एक गुफा में घुस गयी। गुफा के बाहर एक मुनि ध्यान–मग्न बैठै हुए थे। पीछा करते हुए बधिकों ने जब मुनि से गाय के बारे में पूछा तो मुनि मौन रहे और बधिकों ने गुफा में जाकर गाय को पकड़ लिया। इस समय मुनि आपद्धर्म के अनुसार झूठ बोलकर गाय की रक्षा जैसे महान् धर्म का पालन कर सकते थे लेकिन ऐसा न करने के कारण उनकी सभी सिद्धियाँ नष्ट हो गयीं। इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि आपद्धर्म का तात्पर्य दो धर्मों के बीच टकराव हो जाने पर अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण धर्म की रक्षा करने से लिये दूसरे धर्म के नियमों को कुछ समय के लिए त्याग देना है। इस परिस्थिति को शास्त्रों में 'धर्म–संकट' कहा गया है।

हिन्दू संस्कार (Hindu Sanskar)

डॉ0 राजबली पाण्डेय का कथन है कि भारत में संस्कारों को उदय सुदूर अतीत में हुआ था और काल–क्रम से अनेक परिवर्तनों के साथ वे आज तक जीवित है।[5] हमारे समाज में संस्कारों के इस लम्बे इतिहास और व्यापक प्रभाव का मूल कारण वह भारतीय दर्शन है जो नैतिकता, आध्यात्मिकता तथा हृदय की शुद्धता के द्वारा व्यक्ति के 'आत्म' का समाजीकरण करने पर बल देता है। जैसा कि धर्म के पूर्व विवेचन मेंहम स्पष्ट कर चुके है, हिन्दू जीवन को अनेक ऋणों और

दायित्वों से युक्त माना गया है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि इन ऋणों से उऋण होने के लिये व्यक्ति विभिन्न यज्ञों को तब तक पूरा नहीं कर सकता, जब तक वह आन्तरिक रूप से पवित्र न हो जाये। संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति को पवित्र बनाने वाले विभिन्न अनुष्ठानों (rites) अथवा प्रतीकात्मक धार्मिक क्रियाकलापों को ही हम संस्कार कहते है। यद्यपि विभिन्न आश्रमों के माध्यम से भी व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक तथा नैतिक विकास पर बल दिया गया है, लेकिन इस सम्बन्ध में यह ध्यान रखना चाहिए कि आश्रम–व्यवस्था जीवन की एक विशेष अवधि में व्यक्ति को कुछ विशेष दायित्व सौंपती है, जबकि संस्कारों का उद्देश्य प्रत्येक महत्वपूर्ण परिस्थितियों में व्यक्ति को उसके दायित्वों से परिचित कराकर उसका समाजीकरण करना है। आश्रम व्यवस्था का लक्ष्य पारलौकिक जगत की सफलता है जबकि संस्कार लौकिक जगत से व्यक्ति के अनुकूलन पर बल देते है।

'संस्कार' शब्द 'अनुष्ठान' से भिन्न है। अनुष्ठान कोई भी वह धार्मिक क्रिया है जिससे अनेक कर्मकाण्ड और धार्मिक विश्वास सम्बद्ध होते है। इसके विपरीत संस्कार का सम्बन्ध व्यक्ति के आत्मिक शुद्धीकरण और उसे अपने सामाजिक दायित्वों का बोध कराने से है। इसके पश्चात् भी प्रत्येक संस्कार में कुछ अनुष्ठानों और कर्मकाण्डों का समावेश अवश्य पाया जाता है। यद्यपि अनेक धर्मशास्त्रों में संस्कारों के विधान को भी 'अलौकिक' पृष्ठभूमि में स्पष्ट किया गया है, लेकिन जैसा कि डॉ0 नगेन्द्र का विचार है, संस्कारों की उत्पत्ति के मूल से मानवीय

प्रवृत्तियों का हाथ है। यह आख्यानों (Legends) के निर्माण की प्रवृत्ति का ही दूसरा रूप है। इससे स्पष्ट होता है कि संस्कार पूर्णतया धार्मिक नही होते बल्कि ये एक सामाजिक–धार्मिक प्रत्यय (socio-raligous concept) है, जिसकी अभिव्यक्ति हमारे सांस्कृतिक जीवन में होती है।

संसार में सम्भवतः ऐसा कोई भी समाज नहीं मिलेगा जिसमें कुद संस्कार और उन संस्कारों से सम्बन्धित कुछ कर्मकाण्ड, आचार–विचार तथा अनुष्ठान न पाये जाते हों। वास्तविकता तो यह है कि जो संस्कृति जितनी अधिक प्राचीन होती है, उसमें संस्कारों का महत्व भी उतना अधिक होता है। यह समाज चाहे पश्चिम का भौतिकवादी समाज हो अथवा पूर्णतया एक आदिम समाज, इसमें जीवन के कुछ विशेष स्तरों पर संस्कारों की विद्यमानता अवश्य ही मिलेगी। इतना अवश्य है कि भारतीय जीवन में संस्कारों का प्रभाव अपेक्षाकृत अधिक है और इनका उल्लेख स्मृतियों से लेकर अनेक गृह्य–सूत्रों तक में होता आया है। भारतीय जीवन के विभिन्न संस्कार हमारी संस्कृति का अभिन्न अंग रहे है। इनमें अनके सामाजिक तत्व इस प्रकार समाये हुए है कि सामाजिक उपयोगिता के दृष्टिकोण से भी इन्हें अत्यधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। जैविकीय आधार पर संस्कारों को उपयोगी कहना कहां तक उचित है, इस प्रश्न पर हम आगे विचार करेगें, लेकिन इतना अवश्य है कि परम्परागत रूप से हिन्दू संस्कार जीवन में सफलता प्राप्त करने तथा व्यक्तित्व का समुचित विकास करने के लिए अवश्य माने जाते रहे है। इस प्रकार प्रस्तुत अध्याय में हमारा उद्देश्य संस्कारों की प्रकृति, इनके प्रमुख स्वरूपों तथा

इनके प्रभाव की वास्तविकता को ही स्पष्ट करना है जिससे भारतीय जीवन–क्रम में संस्कारों के सामाजिक महत्व. को समझा जा सके।

संस्कार का अर्थ (Meaning of Sanskar)

'संस्कार' शब्द की व्याख्या अनेक प्रकार से की जाती है। पाश्चात् विचारकों में से अधिकतर विद्वानों ने इसे 'Ceremony' तथा 'Rite' जैसे शब्दों के द्वारा समझाने का प्रयत्न किया है, जबकि वास्तविकता यह है कि ये दोनों ही शब्द 'संस्कार' की भावना को पूर्णतया स्पष्ट नही कर पाते। डॉ0 पाण्डेय का कथन है कि 'संस्कार' का अभिप्राय केवल बाह्य धार्मिक क्रियाओं, अनुशासित अनुष्ठानों, व्यर्थ के आडम्बरों, कोरे कर्मकाण्डों, राज्य द्वारा निर्दिष्ट चलनों, औपचारिकताओं तथा अनुशासित व्यवहार से नही है। संस्कार शब्द का अधिक उपयुक्त पर्याय अंग्रेजी का 'सेक्रामेण्ट' (sacrament) शब्द है जिसका अर्थ है 'धार्मिक विधि–विध ान' अथवा वह कृत्य जो आन्तरिक तथा आत्मिक सौन्दर्य का बाह्य तथा दृश्य प्रतीक माना आता है।"[6]

संस्कृत साहित्य में संस्कार शब्द का अर्थ विविध रूपों में मिलता है जैसे–शिक्षा, प्रशिक्षण, सौजन्यता, पूर्णता, परिष्कार, शुद्धिकरण, धार्मिक विधि–विधान, धारणा, कार्य का परिणाम तथा क्रिया की विशेषता आदि। यद्यपि साधारण रूप से यह विभिन्न अर्थ एक भ्रमपूर्ण स्थिति उत्पन्न कर देते है लेकिन यदि तनिक ध्यान से देखा जाये तो स्पष्ट हो जाता है कि ये सभी शब्द व्यक्ति के परिष्कार (refinement) शुद्धता तथा प्रशिक्षण की ओर संकेत करते है। इसी आधार पर

जैमिनि पूर्वमीमांसा सूत्र में कहा गया है कि "संस्कार वह है जिसके करने से कोई पदार्थ उपयोगी बन जाता है।"

संस्कार शब्द का प्रयोग विभिन्न अर्थो में होने के कारण डॉ0 राजबली पाण्डेय का कथन है कि "संस्कार शब्द के साथ विलक्षण अर्थो का योग हो गया है जो इसके दीर्घ इतिहास–क्रम में इसके साथ मिल गये है। इसका अभिप्राय शुद्धि की धार्मिक क्रियाओं तथा व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक तथा वौद्धिक परिष्कार के लिए किये जाने वाले अनुष्ठानों से है जिनसे वह समाज का पूर्ण विकसित सदस्य हो सके। किन्तु हिन्दू संस्कारों मे अनेक आरम्भिक विचार, धार्मिक विधि–विधान, उनके सहवर्ती नियम तथा अनुष्ठान भी समाविष्ट है जिनका उद्देश्य केवल औपचारिक दैहिक संस्कार ही न होकर व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का परिष्कार, शुद्धि और पूर्णता भी है। साधारणतया यह समझा जाता था कि विधिपूर्वक संस्कारों के अनुष्ठान से व्यक्ति में विलक्षण तथा अवर्णनीय गुणों का प्रादुर्भाव हो जाता है। संस्कार शब्द का प्रयोग इस सामूहिक अर्थ में ही होता था।"[7]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि संस्कार वह धार्मिक विधि–विधान है जो प्रतीकात्मक रूप से व्यक्ति के जैविक, मानसिक और सांस्कृतिक जीवन का परिष्कार करके, उसे एक सामाजिक सांस्कृतिक प्राणी बनाने में सहायक होता है। यह व्यक्ति के क्रमिक विकास की प्रक्रिया से सम्बद्ध है तथा संस्कार का कार्य व्यक्ति की आन्तरिक क्षमताओं का सही रूप से मार्ग निर्देशन करना है।

संस्कारों के उद्देश्य (Objectives of Sanskar)

हिन्दू संस्कारों के पीछे वास्तविक उद्देश्य क्या है? यह एक विवादपूर्ण प्रश्न है।

एक ओर इन संस्कारों का प्रादुर्भाव इतने प्राचीन समय में हुआ है कि अब से लेकर आज तक इनमें तरह–तहर के विश्वास जुड़ते चले आ रहे है और दूसरी ओर इन संस्कारों को कर्मकांड मात्र मानकर इनसें सम्बद्ध अनुशासन की भावना को समझने का प्रयत्न बहुत कम ही किया जाता है। इसके उपरान्त भी संस्कारों के प्रमुख उद्देश्यों अथवा प्रयोजनों को संक्षेप में निम्नांकित रूप से प्रस्तुत किया जा सकता है :

(1) संस्कारों का सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य मानव के सरल मन तथा उनकी सांस्कृतिक विशेषताओं को प्रतीकात्मक रूप से अभिव्यक्त करना है। लैंगर का भी यही विचार है कि 'संस्कार प्रतीक–निर्माण की प्रवृत्ति के ही अंग है।' साधारणतया अधिकांश हिन्दू संस्कार (मृत्यु से सम्बन्धित संस्कारों को छोड़कर) हर्ष और आनन्द को ही प्रतीकान्तक रूप से अभिव्यक्त करते है जिससे मनुष्य के मन को स्नेह, अनुराग, प्रेम तथा वात्सल्य जैसी प्रवृत्तियों को सन्तुष्ट करने के अधिकतम अवसर प्रदान किये जा सकें।

(2) संस्कारों का दूसरा उद्देश्य अशुभ शक्तियों से व्यक्ति की रक्षा करना है। हिन्दू जीवन में भूतों, पिशाचों तथा इसी प्रकार की अनेक अशुभ शक्तियों से व्यक्ति की रक्षा करने के लिए उन्हें भोजन देने तथा बलि की व्यवस्था करने की रीतियां चली आ रही है। लगभग सभी संस्कारों में इस प्रकार के क्रिया–कलाप किये जाते है जिससे यह अशुभ शक्तियां व्यक्ति पर अपने चमत्कारी प्रभाव का प्रयोग न कर सकें। इसी कारण सभी संस्कारों को पूर्ति में जल और अग्नि जैसे पदार्थो का

उपयोग अशुभ शक्तियों के प्रभाव को निष्क्रिय बनाने के लिए किया जाता है।

(3) अभीष्ट वस्तुओं की प्राप्ति संस्कारों का तीसरा उद्देश्य हैं। जिस प्रकार व्यक्ति को अनिष्टकारी शक्तियों से दूर रखने का प्रयत्न किया जाता है, उसी प्रकार संस्कारों के द्वारा उन शक्तियों से प्रसन्न रखने का भी प्रयत्न होता है, जो व्यक्ति को समृद्धि तथा लक्ष्य–प्राप्ति में सहायता दे सकें। विभिन्न संस्कारों के समय सभी प्रमुख देवताओं के साथ एक प्रमुख देवता की आराधना व अर्चना करना इसी उद्देश्य की ओर संकेत करता है। विभिन्न संस्कारों में भिन्न–भिन्न देवताओं की आराधना के पीछे उनके प्रतीकात्मक महत्व की भावना जुड़ी हुई है। उदाहरण के लिए, विष्णु सृष्टि के रक्षक माने जाते है और इसलिए गर्भाधान संस्कार के समय प्रमुख रूप से विष्णु की आराधना की जाती है, जिससे जन्म लेने वाले बच्चे का जीवन पूर्णतया सुरक्षित बना रहे।

(4) संस्कारों का एक अन्य उद्देश्य सांसारिक समृद्धि प्राप्त करना है। विभिन्न संस्कारों के माध्यम से पशु, सम्पत्ति, शक्ति, दीर्घजीवन और सन्तान की कामना करना इस उद्देश्य को स्पष्ट करता है। हिन्दुओं का यह विश्वास है कि पूजा और आराधना के माध्यम से ही देवता उनकी इच्छाओं को समझकर उनकों पूरा करते है। संस्कारों का यह उद्देश्य वर्तमान जीवन में इतना महत्वपूर्ण है कि अधिकतर संस्कारों के पीछे मौलिक समृद्धि प्राप्त करने की भावना ही प्रधान रूप से पायी जाती है।

(5) संस्कारों का एक अन्य उद्देश्य व्यक्ति में नैतिक गुणों का विकास करना

है। संस्कार अपने आप में एक लक्ष्य नही है बल्कि यह एक साधन है, जिसके द्वारा व्यक्ति मे नैतिक गुणों का विकास करने का प्रयत्न किया गया। प्रत्येक संस्कार व्यक्ति के दायित्वों को नैतिक आधार पर स्पष्ट करता है। उदाहरण के लिए, सीमन्तोत्रयन संस्कार के द्वारा गर्भिणों के कर्तव्यों तथा उपनयन संस्कार के समय ब्रह्मचारी के कर्तव्यों को स्पष्ट करना यह सूचित करता है कि संस्कारों का उद्देश्य निश्चय ही व्यक्ति के नैतिक तथा सामाजिक दायित्वों को स्पष्ट करना रहा है।

(6) संस्कारों का सम्भवतः सबसे व्यावहारिक उद्देश्य सांस्कृतिक आधार पर व्यक्तित्व का विकास करना है। यह कहना है कि "जिस प्रकार चित्रकला में सफलता प्राप्त करने के लिए विविध रंगों की आवश्यकता होती है उसी प्रकार चरित्र–निर्माण भी विभिन्न संस्कारों के द्वारा ही होता है।"[8] हिन्दू समाजशास्त्रियों ने व्यक्ति को अपना विकास स्वयं करने के लिए बिलकुल स्वतन्त्र नही छोड़ा है बल्कि एक पूर्व निर्धारित सांस्कृतिक आधार पर उसके चरित्र का निर्माण करने के प्रयत्न किये गये है। संस्कार इसी प्रयत्न को अभिव्यक्त करते है। इस उद्देश्य को प्रात्त करने के लिए प्रत्येक संस्कार एक मार्ग–दर्शक का कार्य करता है तथा आयु बढ़ने के साथ ही व्यक्ति को एक निर्दिष्ट दिशा की ओर ले जाता है। इस प्रकार संस्कारों का उद्देश्य व्यक्ति में एक अनुशासित जीवन व्यतीत करने की भावना उत्पन्न करना है।

(7) संस्कारों का अन्तिम महत्वपूर्ण उद्देश्य आध्यात्मिकता के महत्व को स्पष्ट करना है। भारतीय सामाजिक जीवन का मूल आधार ही आध्यात्मवाद है। सभी

संस्कार आध्यात्मिकता शक्ति में बाह्य प्रतीक के रूप कार्य करके इस धारणा को विकसित करने का प्रयत्न करते है कि व्यक्ति स्वयं कुछ नही है बल्कि एक अदृश्य शक्ति ही उसके सम्पूर्ण जीवन को नियन्त्रित किये हुए। इस उद्देश्य के महत्व को स्पष्ट करते हुए डॉ0 पाण्डेय का कथन है कि संस्कार एक प्रकार से आध्यात्मिक शिक्षा की क्रमिक सीढ़ियों का कार्य करते थे। उनके द्वारा व्यक्ति यह अनुीाव करता था कि सम्पूर्ण जीवन वास्तव मे संस्कारमय है और सम्पूर्ण दैनिक क्रियाएं आध्यात्मिक ध्येय से अनुप्रमाणित है। यही वह मार्ग था जिससे क्रियाशील सांसारिक जीवन का समन्वय आध्यात्मिक तथ्यों के साथ स्थापित किया जाता था।"[9] यह कथन संस्कारों के आध्यात्मिकता सम्बन्धी उद्देश्य को स्पष्ट कर देता है।

हिन्दू जीवन के प्रमुख संस्कार

(Major Samkar in Hindu Life Scheme)

हिन्दू जीवन में संस्कारों की संख्या क्या है? इस विषय पर धर्मशास्त्रों में अत्यधि ाक भिन्नता देखने को मिलती है। एक ओर गौतम धर्मसूत्र में संस्कारों की संख्या 40 निर्धारित की गयी है, जबकि दूसरी ओर बाराह गृह्यसूत्र–पारस्कर गृह्यसूत्र, बौध ाायान गृह्यसूत्र तथा मनुस्मृति में इनकी संख्या 13 है। बैखानस गृह्यसूत्र में संस्कारों की 18 है जबकि आश्वलायन गृह्यसूत्र में यह संख्या केवल 11 ही निध ाारित की गयी है। व्यास ने संस्कारों की संख्या 16 बनाई है। वास्तविकता यह है कि संस्कारों की संख्या सम्बन्धी यह भिन्नता केवल प्रमुख संस्कारों की मान्यता

पर ही आधारित है। प्रस्तुत विवेचन में प्रमुख 16 संस्कारों का संक्षेप में उल्लेख करेंगे जो बच्चे के जन्म से पूर्व, बालयावस्था में, शिक्षा के समय, विवाह के अवसर पर तथा मृत्यु के पश्चात् पूरे किये जाते है। इससे पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि प्रत्येक संस्कार का एक विशेष उद्देश्य होने के बाद भी विभिन्न संस्कारों का विधि–विधान इस अर्थ में असमान है कि इन सभी के द्वारा अलौकिक शक्तियों के सान्निध्य में अभीष्ट फल की कामना की जाती है। इस कार्य के लिप्र अग्नि प्रज्जवलित करना, यज्ञ करना, स्तुतियां और प्रार्थनाएं करना, स्नान तथा आचमन, दिशा निर्धारण, फलित ज्योतिष से से सम्बन्धित गृहों और नक्षत्रों का विचार रखना और आध्यात्मिक वातावरण के अन्तर्गत कुछ मूर्त प्रतीकों का उपयोग करना वे सामान्य तत्व है, जो लगभग सभी संस्कारों में समान रूप अग्रंकित संस्कारों के विवेचन से सम्बद्ध है।

1. गर्भाधान
2. पुंसवन
3. सीमान्तोन्यन
4. जातकर्म
5. नामकरण
6. निष्क्रमण
7. अन्न प्राशन
8. चूड़ा–करण

9. कर्ण–बेध

10. विद्यारम्भ

11. उपनयन

12. वेदारम्भ

13. केशान्त अथवा गोदान

14. समावर्तन

15. विवाह

16. अन्त्येष्टि

(1) गर्भाधान

पूर्व मीमांसा में कहा गयाहै कि "जिस कर्म के द्वारा पुरूष–स्त्री में अपना बीज स्थापित करता है, उसे गर्भाधान कहते है।" इस प्रकार गर्भाधान एक काल्पनिक कृत्य न होकर एक यथार्थ कर्म था, यद्यपि कालान्तर में इसके साथ संकोच की भावना जुड़ जाने के कारण यह अप्रचलित हो गया। इस संस्कार के लिए ध र्मशास्त्रों में उपयुक्त समय का भी निर्धारण किया गया है। अधिकांश मान्यताओं के अनुसार पत्नी के ऋतुस्नान की चौथी रात्रि से लेकर सोलहवीं रात्रि तक का समय उपयुक्त माना गया है। इसमें भी अर्द्धरात्रि के बाद के समय को बौधायान ने अधिक महत्वपूर्ण समय माना है। यहां तक कि मनुस्मृति में पुत्र–जन्म के लिए सम–रात्रि (जो 2 से विभाजित की जा सकती हो) और कन्या–जन्म के लिए विषम राशि के चुनाव का भी निर्देश दिया गया है। मनुस्मृति में इस संस्कार के लिए 8वीं, 14वीं तथा 30वीं रात्रि को वर्जित माना गया है। सामान्यतः यह संस्कार

पति द्वारा ही किया जा सकता है, लेकिन कुछ विशेष परिस्थितियों में देवर अथवा किसी सगोत्र व्यक्ति से भी इस संस्कार की अनुमति दी जाती थी। ऐसा इस कारण था कि महाभारत काल तक भारत में नियोग–प्रथा का भी प्रचलन रहा था यद्यपि मनु ने इस प्रकार के गर्भाधान संस्कार को 'पशु धर्म' कहकर इसका विरोध किया। यह संस्कार केवल प्रथम सन्तान के लिए गर्भ धारण करते समय ही किया जाना चाहिए क्योंकि एक बार इस संस्कार को कर लेने से सदैव के लिए गर्भ पवित्र हो जाता है। पाराशर ने प्रत्येक व्यक्ति के लिए इस संस्कार की अनिवार्यता पर बल देते हुए कहा है कि "व्यक्ति स्वस्थ होते हुए भी ऋतुकाल में पत्नी के समीप नहीं जाता, वह भ्रूण हत्या का दोषी होता है।" हिन्दू समाज में यह विश्वास है कि पितृ–ऋण को तभी चुकाया जा सकता है जब व्यक्ति स्वयं भी सन्तान को जन्म दें। इसी धारणा के आधार पर गर्भाधान संस्कार को आवश्यक और महत्वपूर्ण संस्कार माना जाता है।[10]

(2) पुंसवन

पुंसवन का अभिप्राय उस कर्म से है जिसके द्वारा पुत्र के जन्म की कामना की जाये (पुमान् प्रसूयते येन कर्मणा तत् पुंसवनमीरितम्)। इस प्रकार यह संस्कार गर्भ में स्थित शिशु की मंगल–कामना से सम्बन्धित है। हमारे समाज में पुत्र का जन्म माता के लिए तो गौरव की बात है ही, साथ ही युद्धों व धर्म–कार्यो के लिए भी पुत्र का जन्म आवश्यक होने के कारण यह संस्कार महत्वपूर्ण माना जाता है। वृहस्पति के अनुसार यह संस्कार तब किया जाना चाहिए जब गर्भ में स्पन्दन होने लगे।

शौनक के अनुसार गर्भ धारण के तीसरे मास में यह संस्कार होना चाहिए जबकि गृह्यसूत्रों में तीसरे मास के पश्चात् इस संस्कार को करने का निर्देश दिया गया है। सामान्यतः गृह्यसूत्रों के युग में यह संस्कार उस समय किया जाता था, जब चन्द्रमा किसी पुरूष नक्षत्र में, विशेषतः तिष्य में संक्रमण कर जाता था। इस दिन स्त्री को उपवास करना आवश्यक है। रात में वट वृक्ष की छाल को कूटकर और उसका रस निकालकर स्त्री की नाक के दाहिने नथुने में छोड़ा जाता था। इस समय 'हिरण्यगर्भ शब्द से आरम्भ होने वाली ऋचाओं का उच्चारण करने के पश्चात् यह कामना की जाती थी कि स्त्री पुत्र को जन्म दे। इस प्रकार इस संस्कार से बलवान और तेजवान पुत्र का जन्म होने का विश्वास किया जाता था। याज्ञवल्य और विज्ञानेश्वर ने प्रत्येक गर्भ–धारण के समय इस संस्कार को उपयोगी बताया है। इस संस्कार के समय सुलक्ष्यणा अथवा वटशुंग औषधि को दूध ा के साथ घोंटकर स्त्री के दाहिने नथुने मे डालना पुत्र–प्राप्ति का उपाय था जबकि स्त्री के अंक में जल कलश रखना भावी शिशु के जीवन में समृद्धि तथा उत्साह के संचार का प्रतीक था।

(3) सीमान्तोन्नयन

शाब्दिक रूप से सीमान्तोन्नयन का अर्थ है गर्भिणी के केशों (सीमान्त) को ऊपर उठाना (उन्नयन)। यह संस्कार इस विश्वास पर आधारित है कि गर्भिणी को कोई भी अमंगलकारी शक्ति ग्रसित कर सकती है, इसलिए इसके निवारण के लिए भी कुछ प्रयत्न किये जाने चाहिए। यह संस्कार आंशिक रूप से स्त्री को प्रसन्न रखने

के लिए भी है। गृह्यसूत्रों में इस संस्कार को गर्भ के चौथे से पाँचवें मास में करने का विधान है, जबकि स्मृतियों के अनुसार यह संस्कार गर्भ के छठे अथवा आठवें मास तक किया जा सकता है। ज्योतिष ग्रन्थों के अनुसार शिशु के जन्म से पहले तक यह किसी भी समय किया जा सकता है। यह संस्कार मातृ–पूजा प्रजापत्य आहुति से आरम्भ होता है तथा संस्कार करते समय कुश के तीन गुच्छों, श्वेत चिह्न वाले साही के तीन काँटों तथा लाल चिह्न आदि का उपयोग प्रतीक के रूप में किया जाता है, जिससे दुष्ट शक्तियों को गर्भिणी से दूर रखा जा सके। इस समय गर्भिणी स्त्री को कुछ कर्तव्यों का पालन करना अनिवार्य हो जाता है। यह कर्तव्य अमंगलकारी शक्तियों मे वचने, अधिक शारीरिक श्रम से बचने तथा स्वास्थ्य के नियमों का पालन करने से सम्बन्धित है। इस प्रकार सीमान्तोत्रयन संस्कार के पश्चात् स्त्री को गन्दे स्थान पर बैठने, नदी में स्नान करने, अस्थियों का स्पर्श करने, सोते समय दक्षिण की ओर पैर करने, गोधूलि (संध्या का अन्तिम पहर) के समय भोजन करने का निषेध है। केवल स्त्री ही नहीं बल्कि उसके पति के लिए भी आवश्यक है कि वह इस संस्कार के पश्चात् सहवास, तीर्थ–यात्रा, विदेश–यात्रा, अथवा शव–यात्रा से दूर रहे। इस सभी निषधों से स्पष्ट होता है कि यह नियम आयुर्वेदिक आधार पर महत्वपूर्ण है तथा इसका वास्तविक उद्देश्य गर्भिणी के शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य की रक्षा करना है।

(4) जातकर्म

यह संस्कार बच्चे के जन्म के तुरन्त बाद किया जाता है। इसका उद्देश्य

नवजात शिशु को अमंगलकारी शक्तियों के प्रभाव से बचाना तथा आशीर्वाद के द्वारा उसके दीर्घायु तथा स्वस्थ होने की कामना करना है। इस संस्कार के लिएप्रसव से पहले ही कुछ विधि–विधान किये जाते है जिनका उद्देश्य स्वच्छता और पवित्रता को बनाये रखा है। प्रसव के तुरन्त पश्चात् पिता शिशु को शहद और मक्खन चटाता है और इसके साथ ही शिशु के मेधावी होने की कामना की जाती है। इसी समय पिता शिशु की नाभि तथा दाहिने कान में अग्नि, वनस्पतियों, यज्ञ और ज्ञान के दीर्घजीवी होने के उदाहरण देकर शिशु को भी दीर्घजीवी होने की कामना करता है। अन्त में, पिता शिशु के दृढ़–वीर और साहसी होने की कामना करता है। इसके पश्चात् शिशु की नाभि की घुण्डी (नाल) काटकर शिशु को स्नान कराया जाता है तथा स्तनपान के लिए उसे माँ की गोद में दिया जाता है। कुछ शास्त्रकारों के अनुसार यह संस्कार अशौच समाप्त हो जाने अथवा शिशु के स्नान कर लेने के पश्चात् ही पूरा होता था, लेकिन अधिकतर प्रमाण इस कथन के पक्ष में नहीं है। इस संस्कार की समाप्ति होने पर दान तथा भिक्षा देने का भी विधान है जिससे सभी का आशीर्वाद प्राप्त करके बच्चा दीर्घायु, स्वस्थ तथा समृद्धिशाली बन सके।

(5) नामकरण

डॉ0 पाण्डेय का कथन है कि "हिन्दुओं ने अति प्राचीनकाल में ही व्यक्तिगत नामों के महत्व का अनुभव किया तथा नामकरण की प्रथा को धार्मिक संस्कार के रूप में परिणत कर दिया।" वृहस्पति ने तो नाम को इतना महत्वपूर्ण माना है कि

आपके अनुसार, "नाम सभी प्रकार के व्यवहारों का आधार है, वह शुभ कर्मो तथा भाग्य का आधार है। नाम से ही मनुष्य कीर्ति प्राप्त करता है, अतः नामकरण होना अत्यन्त आवश्यक है।" इस प्रकार एक संस्कार के माध्यम से बच्चे के नाम को निध ारित करना हिन्दू जीवन में सदैव से ही महत्वपूर्ण माना जाता रहा है। गृह्यसूत्रों के अनुसार नामकरण संस्कार शिशु के जन्म के दसवें अथवा बारहवें दिन सम्पन्न होना चाहिए, जबकि वृहस्पति के अनुसार यह जन्म के बत्तीसवें दिन तक किसी भी दिन किया जा सकता है। फलित–ज्योतिष में नामकरण संस्कार गृहों के अनुसार अनुकूल दिनों मे करने का ही विधान रखा गया है, चाहे इसे कितने भी आगे तक स्थगित क्यों न करना पड़े। इस संस्कार के समय माता शिशु को शुद्ध वस्त्र से ढंककर तथा उसके सिर को शुद्ध जल से गीला करके बच्चे को पिता की गोंद में दें देती है। तत्पश्चात् प्रजापति, नक्षत्र तथा उसके देवताओं, अग्नि और साम की आहुतियां देकर पिता बच्चे के कान उसके नाम का उच्चारण करता है और उसी समय बच्चे के लिए मंगल कामनाएँ की जाती है। नामकरण संस्कार के समय इस प्रकार के नाम रखने पर बल दिया जाता है जो बच्चे के लिंग तथा स्वभाक के अनुकूल हो। फलित ज्योतिष में इसका सरलतम उपाय राशि के आध ार पर नामकरण करना है। इसके उपरान्त् भी इन सभी नामों को चार भागों मे विभक्त किया जा सकता है: (क) उस नक्षत्र के देवता के नाम पर जिस नक्षत्र में बालक का जन्म हुआ, (ख) उस मास के देवता के नाम पर। (ग) कुल–देवता के नाम के आधार पर, तथा (घ) लोकप्रचलित सम्बोधनों के आधार पर। कुछ नाम

प्रतीकात्मक भी होते है, लेकिन ऐसे नाम तब रखे जाते है जब बच्चे का जन्म प्रतिकूल गृहों में हुआ हो। कुछ शास्त्रकारों का मत है कि सन्तान का जन्म जिस राशि में हुआ हो उस राशि से सम्बन्धित नाम को गुप्त रखना उचित है, जिससे कोई व्यक्ति बच्चे की राशि के नाम पर जादू न कर सके। यही कारण है कि व्यावहारिक रूप से बच्चे को जिस नाम से सम्बोधित करने का प्रचलन है, वह नाम उसकी वास्तविक राशि के नाम से बहुधा भिन्न होता है।

(6) निष्क्रमण

निष्क्रमण का तात्पर्य एक निश्चित अवधि के पश्चात् माता तथा शिशु का प्रसूति–गृह से बाहर निकलकर स्वच्छन्दतापूर्वक घर के अन्य भागों में जाने की अनुमति प्राप्त करना है। इस संस्कार के पूर्व तक शिशु तथा माँ को एक निर्धारित स्थान से बाहर जाने की अनुमति नहीं दी जाती। विभिन्न गृह्यसूत्रों में इस संस्कार का समय बच्चे के ज़न्म के बारहवें दिन से लेकर चौथे मास तक निर्धारित किया गया है, लेकिन सामान्यतः इस संस्कार को बच्चे के जन्म के तीसरे अथवा चौथे माह में ही किसी समय करने का अधिक प्रचलन रहा है। निष्क्रमण संस्कार भी बच्चे के पिता द्वारा ही सम्पन्न किया जाता है। इस संस्कार के लिए निर्धारित दिन पर घर के किसी ऐसे हिस्से को गोबर अथवा मिट्टी से लेप दिया जाता है जहाँ से सूर्य दिखाई दे सके। इस स्थान पर स्वास्तिक का चिह्न बना कर वहाँ धान विखेर दिये जाते है। तत्पश्चात् शंख–ध्वनि और मन्त्रोच्चारण के बीच पिता द्वार बच्चे को व्यावहारिक पक्ष को स्पष्ट करते हुए कहा है कि "इस संस्कार का

व्यावहारिक अर्थ केवल यही है कि एक निश्चित समय के पश्चात् बालक को घर से बाहर उन्मुक्त वायु में लाना चाहिए और यह अभ्यास निरन्तर प्रचलित रहना चाहिए। प्रस्तुत संस्कार शिशु के उदीयमान मन पर यह भी अंकित करता था कि यह विश्व ईश्वर की अपरिमित सृष्टि और उसका आद विधिपूर्वक करना चाहिए।"

(7) अन्न–प्राशन

इस संस्कार का तात्पर्य शिशु को प्रथम बार अन्न देने के विधान से सम्बन्धित है। इस संस्कार से पूर्व तक बच्चा पूर्णतया माता अथवा गाय के दूध पर ही निर्भर रहता है, लेकिन बच्चे के जन्म के 5–6 महीने बाद एक ओर माता का दूध कम होने लगता है और दूसरी ओर बच्चे को शारीरिक विकास के लिए अधिक पौष्टिक तत्वों की आवश्यकता होती है। गृह्यसूत्रों, मनुस्मृति तथा याज्ञवल्क्य स्मृति में इस संस्कार का समय जन्म के पश्चात् छठे मास में निर्धारित किया गया है। लेकिन कुछ शास्त्रों में इस संस्कार की अनुमति तब दी गयी है, जब बच्चे के कुछ दाँत निकल आये तथा उसकी पाचन–शक्ति विकसित हो जाय। नारद स्मृति में यह समय जन्म के बारहवें मास में अथवा एक वर्ष पूर्ण हो जाने के बाद नियम किया गया है। साधारणतया इस संस्कार के समय बच्चे को दही, घी तथा शहद के साथ अन्न दिया जाता है, लेकिन अनेक गृह्यसूत्रों में बच्चे के शारीरिक विकास के लिए विभिन्न प्रकार के पक्षियों का माँस खिलाने का भी उल्लेख किया गया है। उदाहरण के लिए, बच्चे की वाणी में प्रवाह लाने के लिए भारद्वाज पक्षी के माँस तथा कोमलता के लिए मछली के आहार को प्राथमिकता दी गयी है। इससे ऐसा

प्रतीत होता है कि गृह्यसूत्र–काल तक हिन्दू घोर अहिंसावादी नहीं थे। बल्कि इस समय तक माँसाहारी भोजन का प्रचलन था, अन्यथा संस्कार जैसे धार्मिक कृत्य पर पक्षियों का माँस खिलाने की अनुमति देने का प्रश्न ही नहीं उठ सकता था। यह आहार कुछ भी हो, इसे तैयार करने से लेकर बच्चे को खिलाने के समय तक यज्ञादि इन्द्रियों की सन्तुष्टि की प्रार्थना की जाती है। इस समय शिशु की सभी इन्द्रियों की सन्तुष्टि की प्रार्थना की जाती है और अन्त में ब्राह्मण–भोज के साथ यह संस्कार समाप्त हो जाता है।

(8) चूड़ा–करण

इस संस्कार को प्रचलित ग्रामीण भाषा में 'मुण्डन' के नाम से जाना जाता है। हिन्दू जीवन में यह विश्वास किया जाता है कि चड़ाकर्म से बच्चे की आयु, सौंदर्य तथा कल्याण में वृद्धि होती है और इसे सम्पन्न न करने से आयु का ह्रास होता है। इस संस्कार का दूसरा प्रयोजन गर्भकाल में ही उत्पन्न अपवित्र केशों तथा नखों को शरीर से पूर्णतया पृथक कर देना है। चरक ने भी इस संस्कार का सम्बन्ध शिशु के बल, आयु तथा पवित्रता से जोड़ा है। गृह्यसूत्रों के अनुसार यह संस्कार जन्म के पश्चात् प्रथम वर्ष के अन्त मे अथवा तीसरे वर्ष की समाप्ति के पहले ही हो जाना चाहिए। मनुस्मृति में भी इसी समय को स्वीकार किया गया है। वैदिक तथा सूत्र काल में यह संस्कार घर में ही सम्पन्न होता था, लेकिन कालान्तर में घर के अन्दर यज्ञ का प्रचलन कम हो गया और इसके स्थान पर मूर्ति–पूजा का महत्व बढ़ता गया। इस समय देवालय अथवा मन्दिर धर्म के केन्द्र

बन गये। इस कारण यह संस्कार भी देवालयों में किया जाने लगा। इस संस्कार के लिए एक शुभ दिन का निर्धारण करके आरम्भ में संकल्प, गणेश पूजन तथा अन्य मंगल कृत्य किये जाते है और तत्पश्चात् ब्राह्मण भोज होता है। इसके बाद माँ बच्चे को स्नान कराकर तथा नये वस्त्रों में उसे लपेट कर यज्ञ की अग्नि से पश्चिम की ओर बच्चे को लेकर बैठती है। इसी समय मन्त्रोच्चारण के बीच के कल्याण की कामना करते हुए उसके केश उतार दिये जाते है। इन कटे हुए केशों को गोबर में लपेट कर किसी गुप्त स्थान पर फेंक दिया जाता है। इस कृत्य का प्रयोजन बच्चे के केशों को जादू अथवा अमंगलकारी शक्तियों के प्रभाव से बचाता है। इसी समय बच्चे के सिर के ऊपरी भाग पर शिखा के रूप में कुछ बाल छोड़ दिये जाते है जिसका उद्देश्य सम्भवतः सिर के इस कोमल अंग को आवश्यक सुरक्षा प्रदान करना रहा होगा।

(9) कर्ण–बेध

डॉ0 पाण्डेय का कथन है कि "जहाँ तक कानों को छेदने का प्रश्न है, निःसन्देह आरम्भ में इसका प्रचलन अलंकरण के लिए हुआ होगा लेकिन आगे चलकर यह उपयोगी सिद्ध हुआ और इसकी आवश्यकता पर बल देने के लिए इसे धार्मिक स्वरूप दे दिया गया।" यही कारण है कि किसी भी गृह्यसूत्र में इस संस्कार का उल्लेख नही मिलता, यद्यपि इस काल के पश्चात् यह संस्कार व्यापक रूप से प्रचलित हो गया। एक ओर वृहस्पति, गर्ग तथा श्रीपति आदि का मत है कि जन्म के पश्चात् एक वर्ष के अन्दर ही यह संस्कार पूरा हो जाना चाहिए जबकि

कात्यायन सूत्र में इस संस्कार का विधान तृतीय अथवा पाँचवें वर्ष में रखा गया है। अधिकांश धर्मशास्त्र इस बारे मे मौन है कि यह संस्कार किसके द्वारा किया जाना चाहिए, लेकिन व्यवहार में यह संस्कार किसी स्वर्णकार द्वारा ही सम्पन्न किया जाता है। जिस सुई से कर्ण भेदन किया जाता है, धार्मिक मान्यताओं के अनुसार वह सोने अथवा ताँबे की होनी चाहिए। यह संस्कार मध्याह्न से पहले किया जाता है। सर्वप्रथम, दाहिना कान छेदा जाता है और इसके पश्चात् बायाँ। इस समय बच्चे को 'भद्र वाणी सुनने का आशीर्वाद' देकर तथा तत्पश्चात् ब्राह्मण भोजन के साथ ही यह संस्कार पूर्ण हो जाता है। आयुर्वेद के दृष्टिकोण से इस संस्कार की कोई उपयोगिता नहीं है।

(10) विद्यारम्भ

यह संस्कार बालक की शिक्षा प्रारम्भ करने से सम्बद्ध है तथा इसका उद्देश्य बच्चे के मानसिक तथा बौद्धिक गुणों के विकसित करना है। गृह्यसूत्रों और ध ार्मसूत्रों में इस संस्कार का उल्लेख नहीं है। इसका कारण सम्भवतः यह है कि उस समय संस्कृत सामान्य बोल–चाल की भाषा थी और किसी विशेष ज्ञान का आरम्भ उपनयन संस्कार के समय से ही करना उचित समझा जाता था। इसके उपरान्त भी मध्यकालीन युग की रचनाओं में इस संस्कार को व्यापक रूप से मान्यता दी जाने लगी। विश्वामित्र के अनुसार विद्यारम्भ संस्कार बालक की आयु के पाँचवें वर्ष में किया जाना चाहिए, जबकि कुछ अन्य स्मृतियों में इसे सात वर्ष की आयु में करने का विधान रखा गया है। आषाढ़ से कार्तिक तक का समय विष्णु

के शयन का समय माना जाता है, अतः इस समय के बीच यह संस्कार करना वर्जित था। यह संस्कार किसी ऐसे दिन किया जाता है जब सूर्य उत्तरायण में हों। इस दिन बच्चे को पवित्र और अलंकृत करके गणेश, सरस्वती वृहस्पति और गण देवता की पूजा की जाती है। इसके पश्चात् होम किया जाता है और बालक का मुँह पश्चिम की ओर करके गुरू उससे अक्षरों का आरम्भ कराता है। अक्षर आरम्भ करने के पश्चात् गुरू को वस्त्र तथा आभूषण भेंट करके बालक देवताओं की तीन परिक्रमाएँ करता है। सभी उपस्थित व्यक्ति तथा याचक बच्चे को आशीर्वाद देते है। जिन स्त्रियों के पति तथा बच्चे जीवित हो, वे बालक की आरती उतारती है। अन्त में, ब्राह्मणों को दान देने तथा देवताओं को अपने–अपने स्थानों पर वापस बैठाने के साथ ही यह संस्कार समाप्त हो जाता है।

(11) उपनयन

वैदिक काल से लेकर धर्मशास्त्र युग तक उपनयन को एक महत्वपूर्ण संस्कार के रूप में मान्यता दी जाती रही है, यद्यपि विभिन्न युगों और धर्म संहिताओं में इसके स्वरूप तथा विधि–विधानों मे महत्वपूर्ण परिवर्तन भी होते रहे है। उपनयन संस्कार का अर्थ अथर्ववेद में 'ब्रह्मचारी द्वारा शिक्षा ग्रहण करने' तथा 'ब्रह्मचारी को वेदों की दीक्षा देनें' से। स्मृतिकाल मे उपनयन संस्कार के अन्तर्गत विद्याध्ययन की अपेक्षा 'गायत्री मन्त्र द्वारा द्वितीय जन्म की धारणा' को अधिक महत्व दिया जाने लगा और आगे चलकर उपनयन का अर्थ उस कृत्य से समझाा जाने लगा, जिसके द्वारा बालक को आचार्य के समीप ले जाया जाये। वीरमित्रोदय ने कहा

है कि 'वह कृत्य जिसके द्वारा व्यक्ति को गुरू, येद, यम, नियम और देवता से सामीप्य के लिए दीक्षित किया जांय, उपनयन है। आधुनिक काल में उपनयन के अन्तर्गत शिक्षा का अर्थ पूर्णतया लुप्त हो चुका है तथा इसका प्रयोग केवल एक ऐसे संस्कार के अर्थ में किया जाता है जो विवाह से पर्वू केवल एक या दो दिन पहले ही एक द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य) के लिए किया जा सकता है। इसी अर्थ में उपनयन संस्कार को 'जनेऊ' की संज्ञा दी जाती है। यह जनेऊ अथवा उपवीत सूत्र उस उत्तरीय का स्थानापन्न है जो प्राचीनकाल में विद्यार्थी को ब्रह्मचर्य जीवन तथा ज्ञान के प्रतीक के रूप में दिया जाता था।

उपनयन संस्कार का उद्देश्य अथवा प्रयोजन मूल रूप से छात्र को विद्याध्ययन के लिए आचार्य के समीप जाना था। इसी भावना के आधार पर ऐ अनेक उदाहरण मिलते है, जिनसे यह प्रमाणित होता है कि उपनयन केवल एक बार ही नहीं होता था, बल्कि वेद की किसी भी नवीन शाखा का अध्ययन आरम्भ करते समय इस संस्कार को पुनः दोहराया जाता था। याज्ञवल्क्य के अनुसार भी उपनयन संस्कार का सर्वोच्च उद्देश्य वेदों का अध्ययन आरम्भ करना है। वेदों के अध्ययन से सम्बन्धित होने के कारण ही इस संस्कार की अनुमति केवल द्विजों को ही दी गयी हैं जबकिं शूद्रों को इस संस्कार से वंचित रखा गया है। मूल रूप से यह संस्कार अन्धे, बहरे और गूंगे व्यक्तियों के लिए भी वर्जित था। इससे भी उपनयन संस्कार के उपर्युक्त प्रयोजन का ही स्पष्टीकरण होता है। उपनयन संस्कार की आयु के बारे में कुछ मतभेद पाया जाता है। गृह्यसूत्रों के अनुसार ब्राह्मण बालक के लिए आयु के आठवें वर्ष से, क्षत्रिय बालक के ग्यारहवें वर्ष में

और वैश्य बालक के बारहवें वर्ष में उपनयन संस्कार का विधान रखा गया है, जबकि बौधायन के अनुसार एक ब्राह्मण बालक का उपनयन संस्कार आठ से लेकर सोलह वर्ष की आयु तक किसी भी समय किया जा सकता है। कुछ विद्वानों ने विचार व्यक्त किया है कि विभिन्न वर्णो के लिए उपनयन संस्कार की आयु भिन्न–भिन्न होने के कारण यह है कि विभिन्न वर्णों की मानसिक कुशलता मे भिन्नता होती है। डॉ0 पाण्डेय ने इसका खण्डन करते हुए कहा है कि "इस भेद का अधिक उपयुक्त आधार यह प्रतीत होता है कि अति प्राचीनकाल में ब्राह्मण पिता अपने पुत्र का आचार्य भी होता था, अतः छोटी आयु में उसका उपनयन संस्कार कर देना असुविधाजनक नहीं था, जबकि क्षत्रियों और वैश्यों की स्थिति इससे भिन्न थी।" उपनयन संस्कार किसी भी समय हो, लेकिन इसे प्रत्येक द्विज के लिए अनिवार्य माना गया है। इनकी अन्तिम आयु सीमा ब्राह्मणों के लिए 16 वर्ष, क्षत्रियों के लिए 22 वर्ष और वैश्यों के लिए 24 वर्ष की है, क्योंकि इसके पश्चात् व्यक्ति विवाह के लिए उपयुक्त हो जाता है।

<u>उपनयन संस्कार का विधि–विधान</u>– अन्य संस्कारों की अपेक्षा उपनयन संस्कार का विधान व्यापक तथा अधिकांश अर्थो में प्रतीकात्मक है। इस विध को संक्षेप में इस प्रकार समझाा जा सकता है: सर्वप्रथम इस संस्कार के लिए उपयुक्त समय का निर्धारण होता है। इसके लिए पक्ष के किसी भ दिन को प्राथमिकता दी जाती है क्योंकि यह पक्ष प्रकाश, ज्ञान और विद्या का प्रतीक है। निर्धारित तिथि के एक दिन पूर्व गणेश, लक्ष्मी, सरस्वती, धात्री और मेधा आदि देवी–देवताओं की पूजा

की जाती है और इस रात्रि में बालक को मौन रहना आवश्यक था। जो सम्भवतः उसके दूसरे जन्म का प्रतीक था। उपनयन के दिन बालक के साथ माँ अन्तिम बार साथ बैठकर भोजन करती है। यह इस बात का प्रतीक है कि बालक माँ के स्नेह–क्षेत्र से निकलकर उत्तरदायी जीवन में प्रवेश कर रहा है। तत्पश्चात् उपनयन मण्डप में बालक को स्नान करने के बाद उसे गुह्य अंगों को ढँकने के लिए कोपीन (कच्छा अथवा लँगोट) दिया जाता है। इसके पश्चात् जब बालक गुरू से ब्रह्मचारी बनने की इच्छा व्यक्त करता है तब गुरू उसे शरीर के ऊपरी भाग को ढँकने के लिए वस्त्र (उत्तरीय) देता है जो शक्ति और तेज का प्रतीक है। शुभ्र वस्त्रों के प्रति उदासीनता लोन तथा पवित्रता का भाव बनाये रखने के लिए इसे हल्के पीले रंग से रंग दिया जाता है। इसक साथ ही बालक की कमर में एक मेखला (मूँज, ऊन अथवा सूत की डोरी) बाँध दी जाती है जो विभिन्न प्रकार के संयम रखने और बालक की दुष्प्रभावों से रक्षा करने का प्रतीक है। इसके पश्चात् ब्रह्मचारी को उपवीत सूत्र (जनेऊ) दिया जाता है जो इस संस्कार का सबसे महत्वपूर्ण अंग है। मनुस्मृति में कहा गया है कि उपवीत सूत्र ब्राह्मण के लिए सूत का, क्षत्रिय के लिए, मूँज का तथा वैश्य के लिए भेड़ की ऊन का होना चाहिए। यद्यपि विकल्प के रूप में सभी वर्णो के लिये सूत के उपवीत की अनुमति दी गई है। विभिन्न वर्णो के लिए एक–दूसरे से भिन्न प्रकार के उपवीत–सूत्र का विधान मनु ने सम्भवतः इसलिए किया जिससे उपवीत–सूत्र को देखकर ही किसी व्यक्ति की वर्णगत सदस्यता को जाना जा सके। उपवीत की लम्बाई बालक की लम्बाई

के बराबर होती है और इसके तीन धागे सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण के प्रतीक है। यही तीन सूत्र उसे तीन प्रमुख ऋणों, अर्थात ऋषि–ऋण, देव–ऋण तथा पितृ–ऋण की भी याद दिलाते रहते है। यज्ञोपवीत धारण करते समय बालक के लिए आयु, बल तथा तेज की कामना की जाती है।

उपवीत धारण करने के पश्चात् ब्रह्मचारी को मृग चर्म अथवा बकरे का चर्म दिया जाता है जिसे 'अजिन' कहा जाता है। गोपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि मृग चर्म बौद्धिक और आध्यात्मिक सर्वोच्चता का प्रतीक है। इसके साथ ही बालक को आचार्य के द्वारा एक 'दण्ड' दिया जाता है। अधिकांश धर्मशास्त्रों के अनुसार यह दण्ड इस बात का प्रतीक है कि ब्रह्मचारी सरलतापूर्वक गुरू की सहायता से अपनी जीवन यात्रा को पूरा कर सके तथा आत्मविश्वास के साथ अपने दायित्वों का निर्वाह कर सके। तत्पश्चात् गुरू ब्रह्मचारी के हृदय का स्पर्श करता है जो गुरू तथा ब्रह्मचारी के बीच एकमत्य और साम्य का प्रतीक है। इसके साथ ही बालक पत्थर के एक टुकड़े पर खड़ा होता है। इस कृत्य को 'अश्मारोहण' कहा जाता है जो विद्यार्थी को बल, दृढ़ता तथा स्थिरता का सन्देश देता है। इतने विधि विधानों के बाद ही आचार्य ब्रह्मचारी को स्वीकार करके उसकी सुरक्षा के लिए देवताओं से प्रार्थना करता हुआ कहता हूं, "मै तुझे प्रजापति ब्रह्मा के संरक्षण में देता हूँ, मै तुझे सविता के संरक्षण में देता हूँ, मैं तुझे द्यावा पृथ्वी की शरण में देता हूँ, क्षति से रक्षा के लिए मैं तुझे समस्त प्राणियों के संरक्षण में सौंपता हूँ।" इसके पश्चात् ब्रह्मचर्य के नियमों और दायित्वों का उपदेश देकर गुरू उसे पवित्र गायत्री मन्त्र का उपदेश

देता है। यह मन्त्र बुद्धि के विकास की प्रेरणा का सर्वोत्कृष्ट आधार है। मन्त्र के उच्चारण के साथ ब्रह्मचारी अग्नि प्रदीप्त करके उसमें आहुति देता है तथा प्रत्येक मन्त्र के साथ, तेज, प्रजा, प्रकाश, ज्ञान तथा समृद्धि की कामना की जाती है। इसके पश्चात् प्रतीकात्मक रूप से बालक उपस्थित व्यक्तियों से भिक्षा माँगता है जो यह स्पष्ट करता है कि वह सम्पूर्ण समाज पर आश्रित है तथा उस पर सम्पूर्ण समाज का ऋण है। भिक्षा–कृत्य के बाद कुछ अन्य उपदेशों के साथ ही यह संस्कार समाप्त हो जाता है।

उपनयन संस्कार का महत्व किसी भी अन्य संस्कार की अपेक्षा कहीं अधिक है। यह संस्कार व्यक्ति को एक त्यागमय जीवन की ही शिक्षा नही देता, वरन् इसके माध्यम से व्यक्ति को दायित्व–निर्वाह की भी प्रेरणा दी जाती है। बालक के जीवन को अनुशासित बनाने तथा ज्ञानार्जन के महत्व को स्पष्ट करने में भी यह संस्कार अत्याधिक उपयोग सिद्ध हुआ है। यह संस्कार प्रतीकात्मक विधानों की सहायता से बच्चे में ऐसी क्षमता उत्पन्न करता है जिससे वह सभ्यता और संस्कृति की रक्षा करने में अपना योगदान दे सके। डॉ0 पाण्डेय का कथन है कि "यह संस्कार एक प्रकार से हिन्दुओं के विशाल साहित्य भण्डार के ज्ञान का प्रवेश–पत्र था।" इसका तात्पर्य है कि इस संस्कार के बिना न तो कोई व्यक्ति 'द्विज' बन सकता था और न ही उसे किसी आर्य कन्या से विवाह करने की अनुमति मिल सकती थी। यही कारण है कि आधुनिक जीवन में अनेक संस्कारों का प्रचलन व्यावहारिक रूप से समाप्त हो जाने के बाद भी उपनयन संस्कार कुछ संशोधन

और संक्षिप्तीकरण के साथ आज भी प्रत्येक हिन्दू के जीवन का अनिवार्य अंग हुआ है।

(12) वेदारम्भ

अनेक गृह्यसूत्रों तथा स्मृतियों में इस संस्कार का कोई उल्लेख नहीं मिलता लेकिन इसे सर्वप्रथम व्यास ने संस्कारों की सूची में सम्मिलित किया। जैसा कि नाम से स्पष्ट है, यह वह संस्कार है जिसके द्वारा वेदों का अध्ययन आरम्भ हो जाता था। सामान्य रूप से उपनयन संस्कार के समय से ही वेदों के अध्ययन का आरम्भ मान लिया जाता है लेकिन बाद के समय में जब संस्कृति बोलचाल की भाषा नहीं रह गयी तो उपनयन संस्कार केवल एक सामान्य संस्कार ही रह गया। इसके फलस्वरूप यह आवश्यक समझा जाने लगा कि उपनयन के अतिरिक्त एक पृथक संस्कार के द्वारा बालक के लिए वेदों की शिक्षा देना आरम्भ की जाय।

(13) केशान्त अथवा गोदान

गृह्यसूत्रों में केशान्त का वर्णन चूड़ाकरण के साथ किया गया है लेकिन व्यास ने 16 संस्कारों को जो सूची प्रस्तुत की, उसमें केशान्त को एक पृथक् संस्कार के रूप में सम्मिलित कर लिया गया। केशान्त का तात्पर्य बच्चे द्वारा 16 वर्ष की आयु पूर्ण करने पर सबसे पहली बार उसके दाढ़ी और मूँछ के बालों को साफ करना है। इस संस्कार का उद्देश्य ब्रह्मचारी को एक बार पुनः ब्रह्मचर्य के नियमों का स्मरण दिलाना तथा संस्कार के बाद कुछ समय तक कठोर समय में रहकर जीवन व्यतीत करने का प्रोत्साहन देना। अनेक आचार्यो के अनुसार इसी अवसर

पर बालक आचार्य के लिए गऊ का दान करता था और यहीं से ब्रह्मचर्य की समाप्ति मान ली जाती थी। ऐसा प्रतीत होता है कि भारत में जब मनुस्मृति के निर्देशानुसार बाल–विवाहों का प्रचलन बढ़ गया तब ब्रह्मचर्य की अवधि को छोटा करने के लिए यह संस्कार इसलिए जोड़ दिया गया जिससे बच्चे की अल्प आयु में ही विवाह किया जा सके। डॉ0 पाण्डेय के अनुसार यही सुविधा आगे चलकर विशेषाधिकार में परिणत हो गयी लेकिन निश्चय ही हिन्दू समाज के लिए इसका परिणाम बहुत घातक सिद्ध हुआ। वर्तमान काल में इस संस्कार का हिन्दू–जीवन में कोई व्यावहारिक महत्व नहीं है।

(14) समावर्तन

यह संस्कार ब्रह्मचर्य आश्रम का अन्तिम संस्कार है। समावर्तन का अर्थ है 'वेदाध्ययन के पश्चात् घर की ओर पुनः प्रस्थान करना।' इस संस्कार के लिए कोई निश्चित आयु निर्धारित नहीं है, बल्कि जब भी ब्रह्मचारी वेदों का ज्ञान प्राप्त करके घर जाने के लिए गुरू की अनुमति प्राप्त कर ले, तभी यह संस्कार किया जा स कता है। अध्ययन काल में ब्रह्मचारी गुय की सेवा के अतिरिक्त उन्हें और कुछ नही देता था लेकिन इस संस्कार से पूर्व ब्रह्मचारी अपनी, सामर्थ्य के अनुसार गुरू को दक्षिणा देकर उनका आशीर्वाद प्राप्त करता है। मनु का कथन है कि "गुरू की अनुमति प्राप्त करके समावर्तन संस्कार करना चाहिए तथा उसके पश्चात् स्वर्ण तथा गुणवती कन्या से विवाह करना चाहिए। इससे स्पष्ट होता है कि यह संस्कार विवाह का पूर्व–द्वार माना जाता रहा है। इस संस्कार के लिए निर्धारित

तिथि पर मध्याह्न के समय ब्रह्मचारी गुरू के चरणों में प्रणाम करता था तथा कुछ समिधाओं द्वारा वैदिक अग्नि को अन्तिम आहुति प्रदान करता था। इस स्थान पर जल से भरे आठ कलश रखे रहते थे जो इस बात का प्रतीक था कि समस्त दिशाओं से ब्रह्मचारी पर यश तथा सम्मान की वर्षा हो रही है। इस ब्रह्मचारी इन कलशों के जल से स्नान करता हुआ अपनी समृद्धि, ऐश्वर्य, पवित्रता तथा तेज के लिए देवताओं से प्रार्थना करता था। यह स्नान गृहस्थ जीवन की शान्ति का प्रतीक था। स्नान के बाद ब्रह्मचारी अपनी मेखला, मृगचर्म तथा दण्ड को फेंककर एक नवीन कोपीन धारण करता तथा अपनी दाढ़ी, केश और नखों को कटवा कर इस तपस्यापूर्ण जीवन से निवृत्त होता था। इस समय उसे सुगन्धित जल, पुष्प, आभूषण, दर्पण और शुभ्र वस्त्र दिये जाते थे जो इस बात का प्रतीक थे कि अब उस पर ब्रह्मचर्य जीवन के निषेध लागू नहीं रहे। इसके पश्चात् गुरू का आशीर्वाद प्राप्त करने के साथ ही यह संस्कार समाप्त हो जाता था और ब्रह्मचारी एक उत्तरदायी व्यक्ति के रूप में अपने घर वापस आ जाता था।

(15) विवाह

समस्त हिन्दू संस्कारों में विवाह सबसे महत्वपूर्ण है जो जो व्यक्ति को एक नवीन सामाजिक स्थिति ही प्रदान ही करता, बल्कि उसे वे दायित्व भी सौंपता है जो सम्पूर्ण समाज और संस्कृति की रक्षा के लिए आवश्यक है। एक संस्कार के रूप में ही हिन्दू विवाह कोई संविदा न होकर एक धार्मिक बन्धन है जिसे आजन्म तोड़ा नही जा सकता। इस संस्कार के अन्तर्गत अनेक अनुष्ठानों और विधि–विध

ानों के द्वारा व्यक्ति को आध्यात्मिक–भोग के मार्ग पर प्रवत्त किया जाता है। पारस्कर गृह्यसूत्र में विवाह के 30 अनुष्ठानों का उल्लेख है, जबकि बौधायन गृह्यसूत्रों में यह संख्या 25 है। इन सभी अनुष्ठानों का उद्देश्य व्यक्ति में सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना को दृढ़ करना तथा उसे 'काम' के साथ ही 'धर्म' के पालन का भी निर्देश देना है। यह संस्कार जहाँ एक ओर व्यक्ति की जैविकीय आवश्यकता की सन्तुष्टि करता है वहीं दूसरी ओर उसे एक उन्नतिशील जीवन की ओर भी उन्मुख करता है। यह संस्कार स्पष्ट करता है कि विवाह एक भोग की वस्तु नहीं है, बल्कि यह ऋषि ऋण, पितृ ऋण, अतिथि ऋण तथा जीव ऋण से उऋण होने का एक साधन मात्र है। इस प्रकार इस संस्कार का आधारभूत उद्देश्य स्वधर्म के पालन द्वारा आध्यात्मिक वृत्ति और मोक्ष की साधना करना है। यह संस्कार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष जैसे चारों पुरूषार्थो का समन्वय–स्थल होने के कारण भी सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। इस संस्कार का विस्तृत उल्लेख हम 'हिन्दू–विवाह' की विवेचना के अन्तर्गत करेंगे।

(16) अन्त्येष्टि

अन्त्येष्टि हिन्दू–जीवन का अन्तिम संस्कार है जिसके साथ व्यक्ति के लौकिक जीवन की पूर्ण समाप्ति हो जाती है। अन्य समाजों में मृत्यु का भय जहाँ व्यक्ति की चिन्ता का सबसे बड़ा कारण है, हिन्दू समाज में इसे धार्मिक रूप देकर एक आध्यात्मिक विचारधारा का अंग बना दिया गया है। व्यक्ति की मृत्यु होने पर सर्वप्रथम शव को स्नान कराकर एक अर्थी पर इस तरह लिटाया जाता है कि

उसका सिर दक्षिण की ओर तथा पैर उत्तर की ओर रहे। इसके पश्चात् सफेद वस्त्रों से शव को श्मशान की ओर ले जाया जाता है। इस शव–यात्रा का नेतृत्व साधारणतया मृतक के ज्येष्ठ पुत्र द्वारा किया जाता है। मृतक के घर से श्मशान तक पहुँचने की यात्रा तीन भागों में विभक्त रहती है और प्रत्येक भाग में एक–एक बार रूककर विशेष विधि–विधानों के साथ आगे बढ़ा जाता है। सम्पूर्ण रास्ते में मन्त्रोच्चारण होता रहता है जिसे आज 'हरि' और 'राम' के पवित्र उच्चारण द्वारा स्थानापन्न कर दिया गया है। श्मशान भूमि में पुनः शव को स्नान कराकर भूत–प्रेतों के निवारण के लिए मन्त्रोच्चारण के साथ शव को लकड़ियों की चिता पर लिटा कर घी, नारियल, कुश और यज्ञ में प्रयुक्त होने वाले पदार्थो के साथ चिता में अग्नि लगा दी जाती है। जब अग्नि प्रदीप्त होने लगती है तब उस समय एक मन्त्र बोला जाता है जिसका अर्थ है, "हे अग्नि! इस देह को तू भस्म न कर, न इसे कष्ट दे और न ही इसकी त्वचा तथा अन्य अवयवों को इधर–उधर बिखेर। जातवेदः जब यह शरीर पूर्णतः ध्वस्त हो चुके तो इसकी आत्मा को पितृ–लोक में ले जा।" इसके पश्चात् मृतक के सभी सम्बन्धी घर लौट कर स्नान करते है, लेकिन घर में प्रवेश करने से पूर्व पत्थर, अग्नि, गोबर, तिल जल तथा तेल का स्पर्श करते है जिससे वे पवित्र हो सकें। दाह–क्रिया के कुछ दिन बाद तक घर में अशौच का काल रहता है। साधारणतया यह 10 अथवा 13 दिन का माना जाता है। बौधायन के अनुसार मृत्यु के तीसरे, पाँचवे अथवा सातवें दिन मृतक की अस्थियों का संचक किया जाना चाहिए। आरम्भ मे अस्थियाँ मृगचर्म में बाँधकर शमी वृक्ष की शाखा पर

लटका दी जाती थीं लेकिन कालान्तर में इन्हे नदी मे डाल देने का प्रचलन हो गया। मृतक का इस संसार से बिल्कुल भी सम्बन्ध न रह जाये, इस दृष्टिकोण से उसकी सभी वस्तुएँ एक अन्य संस्कार के माध्यम से दान में दी जाती है जिसे सामान्यतः मृत्यु के दसवें दिन किया जाता है। रूढ़िवादिता ने इस दान को आज आत्मा की आवश्यकता–पूर्ति से सम्बद्ध कर दिया है जो अत्यधिक हास्यास्पद है। उसके पश्चात् श्राद्ध और पिण्ड–दान भी इस संस्कार की आगामी कड़ियाँ है जिसका उद्देश्य प्रेतात्मा काल में आत्मा की शान्ति करना है। इस प्रकार अवधि और कर्मकाण्डों के दृष्टिकोण से अन्त्येष्टि संस्कार की प्रक्रिया सबसे अधिक लम्बी है।

हिन्दू–संस्कारों का समाजशास्त्रीय महत्व

(Sociological Importance of Hindu Samskar)

उपर्युक्त सम्पूर्ण विवेचन से स्पष्ट होता है कि हिन्दू–जीवन से सम्बन्धित विभिन्न संस्कार केवल कर्म–काण्डों और धार्मिक क्रियाओं को ही अभिव्यक्त नही करते बल्कि व्यक्ति के जीवन को परिष्कृत करने में ये अत्यधिक उपयोगी सिद्ध हुए है। मौलिक रूप से सभी हिन्दू–संस्कार मानव विकास की एक क्रमिक योजना है जिसकी सहायता से व्यक्ति तथा समाज के बीच सर्वोत्तम सन्तुलन को बनाये रखना सम्भव हो सकता था। इस दृष्टिकोण से संस्कारों का महत्व प्रमुख रूप से सामाजिक है, धार्मिक नहीं। यह सच है कि पिछले सैकड़ों वर्षो से इनमें से अधिकांश संस्कार केवल कर्मकाण्डों और रूढ़िवादिता के रूप मे बदल चुके है, लेकिन

प्रस्तुत विवेचन में हम संस्कारों के मौलिक स्वरूप से सम्बद्ध समाजशास्त्रीय महत्व का संक्षेप में उल्लेख करेंगें:

(1) व्यक्तित्व के विकास में सहायक—सभी हिन्दू संस्कार प्रमुख रूप से व्यक्तित्व का विकास करने के सर्वोत्तम माध्यम रहे है। प्रत्येक संस्कार एक विशेष स्तर पर व्यक्ति को उसके कर्तव्यों का ही बोध नहीं करता, बल्कि बार—बार उसके सामने जीवन में अन्तिम लक्ष्य को भी स्पष्ट करता रहता है। व्यक्तित्व का समुचित विकास प्रमुख रूप से व्यक्ति की मानसिक तथा चरित्रगत दृढ़ता पर निर्भर है। इस कार्य को करने में विभिन्न संस्कारों ने निश्च ही महत्वपूर्ण योगदान दिया है। डॉ0 पाण्डेय का कथन है कि 'संस्कार मानव—जीवन के परिष्कार और शुद्धि में सहायता पहुँचाते, व्यक्तित्व के विकास को सुविधाजनक करते, मनुष्य—देह को पवित्रता तथा महत्व प्रदान करते, मनुष्य की समस्त भौतिक तथा आध्यात्मिक महत्वाकांक्षाओं को गति देने तथा अन्त में उसे जटिलताओं और समस्याओं के संसार से सरल तथा सानन्द मुक्ति के लिए प्रस्तुत करते थे।"[11] संस्कारों के इन्हीं महत्चपूर्ण कार्यो ने हिन्दू जीवन को एक संगठित चरित्र प्रदान किया है।

(2) जैविकीय आवश्यकताओं की पूर्ति—संस्कारों का महत्व केवल अलौकिक जगत से ही सम्बद्ध नही है, बल्कि इन्होंने व्यक्ति की जैविकीय समस्याओं का भी समाधान किया है। जिस समय स्वास्थ्य—विज्ञान और प्रजनन शास्त्र का सर्वसाध ारण को ज्ञान नही था, तब अनेक संस्कार ही व्यक्ति के लिए जैविकीय शिक्षा सर्वोत्तम माध्यम थे। उदाहरण के लिए गर्भाधान और पुंसवन संस्कार गर्भिणी की

आवश्यकताओं को पूरा करके उसे वे सभी सुविधाएँ प्रदान करते थे जिनकी स्त्री को उस समय सबसे अधिक आवश्यकता होती है। इसी प्रकार उपनयन संस्कार ब्रह्मचर्य को सबसे अधिक महत्वपूर्ण स्थान देकर विवाह से पूर्व के संयम को स्पष्ट करने का महत्वपूर्ण माध्यम था। इस प्रकार जैविकीय क्षेत्र में अनेक महत्वपूर्ण समस्याओं का समाधान करने में संस्कारों ने अभूतपूर्व योग दिया है।

(3) शिक्षा का सर्वोत्तम माध्यम–संस्कारों के द्वारा प्राप्त होने वाली शिक्षा वास्तव में व्यक्ति के व्यावहारिक जीवन से सम्बद्ध रही है। जिस समय जनसाध ारण में शिक्षा को अनिवार्य रूप देने का कोई लौकिक और धर्म निरपेक्ष साधन नही था, उस समय संस्कारों ने जीवन के प्रत्येक स्तर पर व्यक्ति के लिए शिक्षा का सर्वोत्तम माध्यम के रूप में कार्य किया। यद्यपि विद्यारम्भ संस्कार प्रत्यक्ष रूप से सैद्धान्तिक और व्यावहारिक शिक्षा से सम्बन्धित है, लेकिन अन्य सभी संस्कार भी अप्रत्यक्ष रूप से व्यक्ति की सामाजिक, पारिवारिक और नैतिक शिक्षा के ही आध ार रहे है। संस्कारों ने इस शिक्षा को अनिवार्य रूप देकर के केवल अनुशासित जीवन में वृद्धि ही नहीं की, बल्कि भारतीयों के बौद्धिक तथा सांस्कृतिक स्तर को भी दृढ़ बनाये रखा। विवाह संस्कार के द्वारा मिलने वाली शिक्षा निश्चय ही हिन्दुओं के जीवन का वह दृढ़ आधार है, जिसके फलस्वरूप उनका पारिवारिक जीवन अपेक्षाकृत रूप से कहीं अधिक संगठित बन सका। यही कारण है कि भारतीय समाज में जनसाधारण का जीवन सैद्धान्तिक शिक्षा से अनभिज्ञ रह जाने के पश्चात् भी लौकिक–ज्ञान में किसी प्रकार पिछड़ा हुआ नहीं रहा।

(4) समाजीकरण में सहायक–समाजीकरण का तात्पर्य समाज की प्रत्याशाओं (expectations) के अनुसार व्यक्तित्व का विकास होना है। इस क्षेत्र में हिन्दू संस्कारों का योगदान सम्भवतः सबसे अधिक महत्वपूर्ण रहा है। संस्कार वे माध्यम है जिनके द्वारा व्यक्ति धीरे–धीरे सामाजिक परिस्थितयों से अनुकूलन करता हुआ अपने वास्तविक लक्ष्य तक पहुँचता है तथा इस प्रकार अपने व्यक्तित्व और सामाजिक जीवन को संगठित बनाने में सफलता प्राप्त करता है। गर्भाधान से लेकर चूड़ाकर्म तक के संस्कार व्यक्ति को अपने परिवार तथा सम्बन्धियों के स्नेह से परिचित कराते है, उपनयन से लेकर विवाह तक के संस्कार व्यक्ति को उन सामाजिक दायित्वों से परिचित कराते है, जिनके पूरा करने की उससे प्रत्याशा की जाती है। इस प्रकार संस्कार व्यक्ति तथा समाज के बीच आदान प्रदान की सर्वोत्तम प्रणाली के रूप मे कार्य करते रहे है।

(5) सांस्कृतिक और नैतिक महत्व–हिन्दू संस्कृति की रक्षा करने और नैतिक गुणों में वृद्धि करने में संस्कारों का योगदान अत्यधिक महत्वपूर्ण रहा है। संस्कारों के माध्यम से समाज की सांस्कृतिक परम्पराएँ स्वयं ही एक पीढ़ी से दूसरी को हस्तांतरित होती रही और शिक्षा के अभाव में भी व्यक्ति को अपने सांस्कृतिक प्रतिमानों से परिचित होने में किसी कठिनाई का सामना नही करना पड़ा। संस्कारों का यह निश्चय ही एक प्रमुख समाजशास्त्रीय कार्य रहा है। जिसके बिना कठिनता से ही किसी समाज का जीवन संगठित रह सकता है। संस्कार व्यक्ति में नैतिक गुणों का विकास करने में भी अत्यधिक महत्वपूर्ण सिद्ध हुए। सभी

संस्कारों का प्रमुख उद्देश्य व्यक्ति में दया, क्षमा, अनसूया, पवित्रता, मन की शान्ति, उचित व्यवहार, निर्लोभता तथा समर्पण जैसे आठ नैतिक गुणों का विकास करना है। इसके अतिरिक्त विभिन्न संस्कार गर्भिणी, ब्रह्मचारी, स्नातक और गृहस्थ आदि के धर्मो अथवा कर्तव्यों को निर्धारित करके भी एक नैतिक वातावरण का निर्माण करते है। डॉ0 पाण्डेय का कथन है कि 'संस्कारों का यह स्वरूप निश्चय ही संस्कारों से प्राप्त होने वाले वैयक्तिक हित की अपेक्षा प्रगति को सूचित करता है।''

(6) आत्म–अभिव्यक्ति के माध्यम–मानव जीवन के समुचित विकास के लिए आवश्यक है कि उसके कुछ मानसिक उद्वेगों जैसे दया, हर्ष, आनन्द, शोक और सहानुभूति आदि की सामाजिक रूप से सन्तुष्टि होती रहे। विभिन्न संस्कार इस कार्य को सर्वोत्तम ढंग से पूरा करते है। गर्भाधान से लेकर कर्णबेध तक के सभी संस्कार माता–पिता के दया और वात्सल्य के उद्वेगों की सन्तुष्टि करते है, विवाह सामान्य हर्ष और सामूहिकता की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति है और यहाँ तक कि अन्त्येष्टि संस्कार की विधि भी शोक और करूणा का दृश्य उपस्थित करके व्यक्ति को आत्म–अभिव्यक्ति तथा आत्म–चिन्तन का अवसर प्रदान करती है। इसके पश्चात् भी सभी संस्कार इस बारे में जागरूक है कि मानसिक उद्वेगों की यह अभिव्यक्ति समाजीकृत रूप से होनी चाहिए और इसलिए प्रत्येक संस्कार को पूरा करते समय व्यक्ति के दायित्वों की भावना को लुप्त नहीं होने दिया गया है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से संस्कारों का यह एक महत्वपूर्ण सामाजिक कार्य है।

(7) आध्यात्मिक महत्व–आध्यात्मवाद हिन्दू सामाजिक जीवन की सर्वप्रमुख

विशेषता है और सभी संस्कार व्यापक रूप से आध्यात्मवाद के साधन के रूप में ही कार्य करते है। प्रत्येक संस्कार व्यक्ति के मन में इस धारणा को प्रबल बनाता है कि कोई अदृश्य शक्ति व्यक्ति के जीवन के प्रत्येक पक्ष को प्रभावित कर रही है और यह विधि–विधान केवल उस शक्ति को सन्तुष्ट करने के लिए ही है। यही भावना संसार को सारहीन और मोक्ष को जीवन के अन्तिम लक्ष्य के रूप में स्पष्ट करती है। संस्कारों के इस महत्व को स्पष्ट करते हुए डॉ0 पाण्डेय का कथन है कि "संस्कार एक प्रकार से आध्यात्मिक शिक्षा की क्रमिक सीढ़ियों का कार्य करते थे। उनके द्वारा सुसंस्कृत व्यक्ति यह अनुभव करता था कि सम्पूर्ण जीवन वस्तुतः संस्कारमय है और सम्पूर्ण दैहिक क्रियाएँ आध्यात्मिक ध्येय से ही अनुप्रमाणित तथ्यों के साथ स्थापित किया जाता था। जीवन की इस पद्धति मे शरीर और उसके कार्य एक बाधा नही वरन् पूर्णता की प्राप्ति में सहायक थे।"

उपर्युक्त सम्पूर्ण विवेचन से स्पष्ट होता है कि हिन्दू संस्कारों ने भारतीय जीवन को व्यवस्थित बनाने मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसके उपरान्त भी यह ध्यान रखना होगा कि कुछ विशेष परिस्थितयों के कारण वर्तमान भारतीय जीवन में कुछ विशेष संस्कारों को छोड़कर अधिकांश संस्कारों का प्रायः लोप हो चुका है।

संस्कारों के उद्देश्य (Objectives of Sanskar)

हिन्दू संस्कारों के पीछे वास्तविक उद्देश्य क्या है? यह एक विवादपूर्ण प्रश्न है। एक ओर इन संस्कारों का प्रादुर्भाव इतने प्राचीन समय में हुआ है कि अब से लेकर आज तक इनमें तरह–तहर के विश्वास जुड़ते चले आ रहे है और दूसरी ओर इन

संस्कारों को कर्मकांड मात्र मानकर इनसें सम्बद्ध अनुशासन की भावना को समझने का प्रयत्न बहुत कम ही किया जाता है। इसके उपरान्त भी संस्कारों के प्रमुख उद्देश्यों अथवा प्रयोजनों को संक्षेप में निम्नांकित रूप से प्रस्तुत किया जा सकता है :

(1) संस्कारों का सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य मानव के सरल मन तथा उनकी सांस्कृतिक विशेषताओं को प्रतीकात्मक रूप से अभिव्यक्त करना है। लैंगर का भी यही विचार है कि 'संस्कार प्रतीक–निर्माण की प्रवृत्ति के ही अंग है।' साधारणतया अधिकांश हिन्दू संस्कार (मृत्यु से सम्बन्धित संस्कारों को छोड़कर) हर्ष और आनन्द को ही प्रतीकान्तक रूप से अभिव्यक्त करते है जिससे मनुष्य के मन को स्नेह, अनुराग, प्रेम तथा वात्सल्य जैसी प्रवृत्तियों को सन्तुष्ट करने के अधिकतम अवसर प्रदान किये जा सकें।

(2) संस्कारों का दूसरा उद्देश्य अशुभ शक्तियों से व्यक्ति की रक्षा करना है। हिन्दू जीवन में भूतों, पिशाचों तथा इसी प्रकार की अनेक अशुभ शक्तियों से व्यक्ति की रक्षा करने के लिए उन्हें भोजन देने तथा बलि की व्यवस्था करने की रीतियां चली आ रही है। लगभग सभी संस्कारों में इस प्रकार के क्रिया–कलाप किये जाते है जिससे यह अशुभ शक्तियां व्यक्ति पर अपने चमत्कारी प्रभाव का प्रयोग न कर सकें। इसी कारण सभी संस्कारों को पूर्ति में जल और अग्नि जैसे पदार्थो का उपयोग अशुभ शक्तियों के प्रभाव को निष्क्रिय बनाने के लिए किया जाता है।

(3) अभीष्ट वस्तुओं की प्राप्ति संस्कारों का तीसरा उद्देश्य है। जिस प्रकार

व्यक्ति को अनिष्टकारी शक्तियों से दूर रखने का प्रयत्न किया जाता है, उसी प्रकार संस्कारों के द्वारा उन शक्तियों से प्रसन्न रखने का भी प्रयत्न होता है, जो व्यक्ति को समृद्धि तथा लक्ष्य–प्राप्ति में सहायता दे सकें। विभिन्न संस्कारों के समय सभी प्रमुख देवताओं के साथ एक प्रमुख देवता की आराधना व अर्चना करना इसी उद्देश्य की ओर संकेत करता है। विभिन्न संस्कारों में भिन्न–भिन्न देवताओं की आराधना के पीछे उनके प्रतीकात्मक महत्व की भावना जुड़ी हुई है। उदाहरण के लिए, विष्णु सृष्टि के रक्षक माने जाते है और इसलिए गर्भाधान संस्कार के समय प्रमुख रूप से विष्णु की आराधना की जाती है, जिससे जन्म लेने वाले बच्चे का जीवन पूर्णतया सुरक्षित बना रहे।

(4) संस्कारों का एक अन्य उद्देश्य सांसारिक समृद्धि प्राप्त करना है। विभिन्न संस्कारों के माध्यम से पशु, सम्पत्ति, शक्ति, दीर्घजीवन और सन्तान की कामना करना इस उद्देश्य को स्पष्ट करता है। हिन्दुओं का यह विश्वास है कि पूजा और आराधना के माध्यम से ही देवता उनकी इच्छाओं को समझकर उनकों पूरा करते है। संस्कारों का यह उद्देश्य वर्तमान जीवन में इतना महत्वपूर्ण है कि अधिकतर संस्कारों के पीछे मौलिक समृद्धि प्राप्त करने की भावना ही प्रधान रूप से पायी जाती है।

(5) संस्कारों का एक अन्य उद्देश्य व्यक्ति में नैतिक गुणों का विकास करना है। संस्कार अपने आप में एक लक्ष्य नही है बल्कि यह एक साधन है, जिसके द्वारा व्यक्ति मे नैतिक गुणों का विकास करने का प्रयत्न किया गया। प्रत्येक संस्कार

व्यक्ति के दायित्वों को नैतिक आधार पर स्पष्ट करता है। उदाहरण के लिए, सीमन्तोत्रयन संस्कार के द्वारा गर्भिणों के कर्तव्यों तथा उपनयन संस्कार के समय ब्रह्मचारी के कर्तव्यों को स्पष्ट करना यह सूचित करता है कि संस्कारों का उद्देश्य निश्चय ही व्यक्ति के नैतिक तथा सामाजिक दायित्वों को स्पष्ट करना रहा है।

(6) संस्कारों का सम्भवतः सबसे व्यावहारिक उद्देश्य सांस्कृतिक आधार पर व्यक्तित्व का विकास करना है। यह कहना है कि "जिस प्रकार चित्रकला में सफलता प्राप्त करने के लिए विविध रंगों की आवश्यकता होती है उसी प्रकार चरित्र--निर्माण भी विभिन्न संस्कारों के द्वारा ही होता है।"[6] हिन्दू समाजशास्त्रियों ने व्यक्ति को अपना विकास स्वयं करने के लिए बिलकुल स्वतन्त्र नही छोड़ा है बल्कि एक पूर्व निर्धारित सांस्कृतिक आधार पर उसके चरित्र का निर्माण करने के प्रयत्न किये गये है। संस्कार इसी प्रयत्न को अभिव्यक्त करते है। इस उद्देश्य को प्रात्त करने के लिए प्रत्येक संस्कार एक मार्ग–दर्शक का कार्य करता है तथा आयु बढ़ने के साथ ही व्यक्ति को एक निर्दिष्ट दिशा की ओर ले जाता है। इस प्रकार संस्कारों का उद्देश्य व्यक्ति में एक अनुशासित जीवन व्यतीत करने की भावना उत्पन्न करना है।

(7) संस्कारों का अन्तिम महत्वपूर्ण उद्देश्य आध्यात्मिकता के महत्व को स्पष्ट करना है। भारतीय सामाजिक जीवन का मूल आधार ही आध्यात्मवाद है। सभी संस्कार आध्यात्मिकता शक्ति में बाह्य प्रतीक के रूप कार्य करके इस धारणा को विकसित करने का प्रयत्न करते है कि व्यक्ति स्वयं कुछ नही है बल्कि एक अदृश्य

शक्ति ही उसके सम्पूर्ण जीवन को नियन्त्रित किये हुए। इस उद्देश्य के महत्व को स्पष्ट करते हुए डॉ0 पाण्डेय का कथन है कि संस्कार एक प्रकार से आध्यात्मिक शिक्षा की क्रमिक सीढ़ियों का कार्य करते थे। उनके द्वारा व्यक्ति यह अनुीाव करता था कि सम्पूर्ण जीवन वास्तव मे संस्कारमय है और सम्पूर्ण दैनिक क्रियाएं आध्यात्मिक ध्येय से अनुप्रमाणित है। यही वह मार्ग था जिससे क्रियाशील सांसारिक जीवन का समन्वय आध्यात्मिक तथ्यों के साथ स्थापित किया जाता था। यह कथन संस्कारों के आध्यात्मिकता सम्बन्धी उद्देश्य को स्पष्ट कर देता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1– जी. के अग्रवाल, भारतीय सामाजिक संस्थाए, पृ 17

2–यतोऽभ्युदय निःश्रेयस सिद्धि स धर्मः (वैशिषिक दर्शन)

3–कल्याण, धर्मांक, पृ0 698

4–मनु स्मृति, 6/92

5–डॉ. राजवली पाण्डेय, हिन्दू संस्कार, पृ0 1

6–डॉ. राजवली पाण्डेय, हिन्दू संस्कार, पृ0 17

7–डॉ. राजवली पाण्डेय, हिन्दू संस्कार, पृ0 19

8–डॉ. राजवली पाण्डेय, हिन्दू संस्कार, पृ0 36

9–डॉ. राजवली पाण्डेय, हिन्दू संस्कार, पृ0 39

10–जी. के अग्रवाल, भारतीय सामाजिक संस्थाए, पृ 107

11–डॉ. राजवली पाण्डेय, हिन्दू संस्कार, पृ0 351
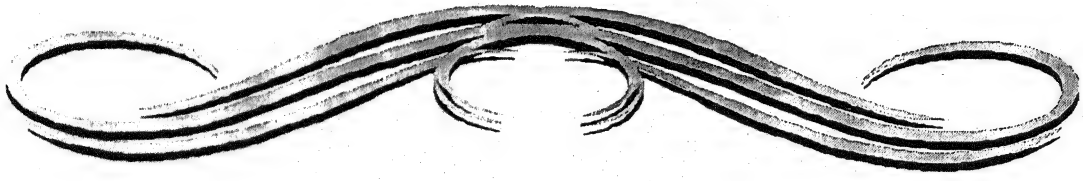
अध्याय अष्टम

निष्कर्ष एवं सुझाव
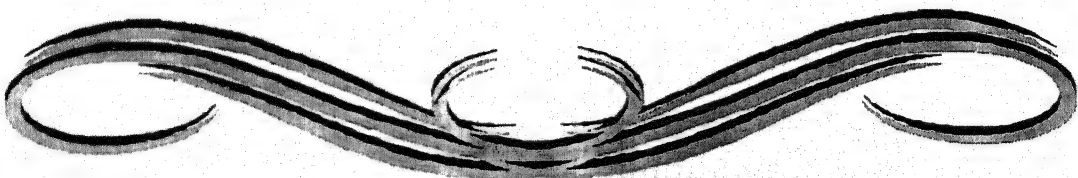
अध्याय अष्टम

निष्कर्ष

निष्कर्ष

प्रारंभ में परमेश्वर ने आकाश और पृथ्वी की सृष्टि की, उसने दिन–रात, जल, वायु सब बनाया। उसने आदम को रचा लेकिन आदम का अकेला रहना उन्हें सही नहीं लगा। अतः परमेश्वर ने उसे गहरी नींद में डाल दिया और उसकी पसुली निकालकर स्वर्ग को बनाया और आदम ने कहा–अब यह मेरी हड्डियों में की हड्डी और मेरे मांस में का मांस है। इसलिए इसका नाम नारी होगा।

धीरे–धीरे जब पृथ्वी पर बुराई बढ़ने लगी तब उसने सोचा कि पृथ्वी पर जिस सृष्टि की रचना मैंने की थी उसे मैं मिटा दूंगा। परंतु वह ऐसा न कर सका। वह धर्मी था इसलिए वह परमेश्वर के साथ चलता रहा। अतः बाद में जो निश्चित किया गया उसके अनुसार गौपेर वृक्ष की लकड़ी का जहाज बनाया गया और उसमें सभी प्रकार के जीवित प्राणियों की विभिन्न जातियों के एक–एक जोड़े रखने को कहा और उसने ऐसा ही किया। इसके पश्चात 40 दिन लगातार जल वृष्टि हुयी। जिसके परिणाम स्वरूप सिवाय उस जहाज के सब कुद समाप्त हो गया। इस प्रकार उस जहाज में उपस्थित प्राणियों से पृथ्वी पर फिर से जीवन का संचार हुआ।

मानवशास्त्री बाईबिल के उक्त कथन को अस्वीकार करते है और मानव की उत्पत्ति उद्‌विकास के द्वारा मानते है। उद्‌विकास डार्विन का सिद्धांत है। डार्विन के अनुसार विश्व के प्राणियों को विकास सरलता से जटिलता की ओर हुआ है अर्थात् पहले एक कोशीय फिर बहुकोशीय इस तरह छोटे–छोटे निम्न प्राणियों से

बड़े प्राणियों का विकास हुआ। गोरिल्ला, चिंपाजी आदि के जो अवशेष प्राप्त हुये उनकों भिन्न–भिन्न मानव प्रजातियों का उद्‌भव माना जाता है। डार्विन के अतिरिक्त प्रमुख समाजशास्त्री हर्बर्ट स्पेन्सर ने भी सामाजिक उद्‌विकास का उल्लेख किया। उनके द्वारा प्रतिपादित यह सिद्धांत भौतिक और प्राणी शास्त्रीय उद्‌विकास के संयोजन के आधार पर केन्द्रित था।

प्रथम अध्याय "प्रस्तावना" में हमने भारत की नारी के बारे में आदि काल से लेकर अब तक की प्रास्थिति का वर्णन किया है। आदिम काल में स्त्री–पुरूष के कार्यो आदि में कोई भेद नही था। स्त्री और पुरूष दोनों ही विचरण करते थे। वे गुफाओं में साथ–साथ रहते थे और उनमें यौन स्वच्छंदता पायी जाती थी अर्थात् वे किन्हीं नियमों से बंधे नही थे। इस समय मनुष्य और पशु में विशेष फर्क नहीं था। स्त्री व पुरूष की समान स्थिति थी। लेकिन जैसे–जैसे मानव विकास की ओर अग्रसर हुआ, वैसे–वैसे ही स्त्री–पुरूष के कार्यो में विभाजन होता गया और कार्यो में विशेषीकरण आता गया व स्त्री–पुरूष में श्रम विभाजन हुआ। इमाईल दुर्खीम ने भी श्रम विभाजन का प्रारंभिक आधार लैंगिक माना है। जे.एफ. मेकमिलन ने बताया कि प्रारंभिक समाजों में पूर्णतः यौन स्वच्छंदता पायी जाती थी। इस यौन स्वच्छंदता के चलते ही धीरे–धीरे मातृवंशीय परिवारों का उदय हुआ। इसका प्रमुख कारण बहुपति विवाह हो सकता है। अतः परिवारों की कोई निश्चित संरचना नहीं थी। इस समय घर के कार्य, बच्चों का दायित्व, फल–फूल, कंद (भोजन के स्त्रोत) आदि एकत्रित करने का कार्य स्त्रियों का था। जबकि बाहरी कार्य, शिकार

आदि पुरूषों के कार्य थे। प्रारंभ में विभाजन का कोई उद्देश्य नहीं था। परंतु ध
ीरे–धीरे पुरूष वर्ग अपने कार्यो को स्त्री से अधिक महत्वपूर्ण मानने लगा तथा स्त्री के कार्यो को निम्न व हेय दृष्टि से देखने लगा। पुरूष वर्ग ने स्त्री को उसकी शारीरिक सीमाएं समझा कर शक्ति वाले कार्यो को पुरूष के अनुकूल बता दिया और घर के तथा कम शक्ति वाले कार्यो को स्त्री के साथ जोड़ दिया। पुरूषों ने उच्च स्थिति का जामा पहनकर स्त्री का स्थान पुरूष से निम्न बना दिया।

इस प्रकार यह माना जा सकता है कि संपूर्ण मानव समाज मातृसत्तात्मक से पितृसत्तात्मकता की ओर बढ़ा है। ई.बी. टायरल ने 282 समाजों का अध्ययन किया है। उसके द्वारा लिये गये विवाह के नियम, वंश पंरपरा तथा विवाह नामक संस्था के अध्ययनों से ज्ञात होता है कि अधिकांश समाज मातृसत्तात्मकता एवं मातृसत्ता से पितृ स्थानात्मकता एवं पितृ सत्ता की ओर अग्रेषित हुये हैं प्रारंभ में मातृसत्तात्मक परिवार होने से संपत्ति पर परिवार के नाम, वंश, गौत्र आदि पर स्त्री का अधिकार होता था। इस सबके कारण स्त्री की स्थिति उत्तम हुआ करती थी। मात्सत्तात्मकता से पितृसत्तात्मकता की ओर सामाजिक विकास की अवस्था के विषय में बेकोफन का मत है कि चूंकि स्त्रियाँ पारिवारिक एवं अन्य अधिकारिक कर्तव्यों के कारण थकान का अनुभव करने लगी थी इसलिए उन्होंने अपनी सत्ता पुरूषों को हस्तांतरित कर दी। जो भी हो इस परिवर्तित स्थिति में हर मामले में पुरूष ने अपना अधिपत्य स्थापित कर लिया। स्त्री को वह निम्न व स्वयं को उच्च मानने लगा। उत्पादकता का आश्रय लेकर पुरूष ने स्त्री को घर की वस्तु बना

दिया और स्वयं उसका मालिक बन गया।

स्त्री–पुरूष समाज निर्माण के दो परस्पर पूरक तत्व है। अतः मानवीय विकास में इनका स्थान क्या रहा? यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है। भारत में विभिन्न युगों में स्त्रियों की स्थिति विरोधाभास पूर्ण रही है। विभिन्न कालों में स्त्रियों की स्थिति को संक्षेप में निम्न रूप में वर्णित किया जा रहा है।

इस बात को स्पष्ट करते हुए प्रोफेसर इन्द्रदेव ने 'भारतीय समाज' में लिखा है कि ऋग्वेद में दम्पति शब्द का प्रयोग हुआ है। इसका शाब्दिक अर्थ दम–धन–पति अर्थात् 'घर का स्वामी'। अर्थवेद में नारी का सर्वशक्तिमान माना है। उसे धर्म, विद्याशील, यश, संपदा का प्रतीक माना है। पुरूष के समान दर्जा एवं परस्पर पूरकता का उदाहरण अर्द्धनारीश्वर की परिकल्पना में मिलता है। महाभारत में लिखा है कि पुरूष कोई वस्तु नहीं है, पुरूष उस समय तक अपूर्ण रहता है जब तक कि स्त्री का स्नेह और संतान मिलकर उसे पूर्ण नहीं बनाते।

वैदिकोत्तर कालीन समय में शादियाँ प्रतियोगिता के आधार पर होती थी। आर्य समाज में समय बीतने के साथ स्त्रियों की स्थिति में अपेक्षाकृत अंतर आया। वेदों की व्याख्या के लिए धर्म ग्रंथों की सृष्टि होने लगी। इन धर्म ग्रंथों में स्त्रियों के सीमित अधिकारों का उल्लेख मिलता है। ज्यों–ज्यों समय बीतता गया स्त्री की स्थिति भी गिरती गयी। हिन्दुस्तान में स्त्रियों के चरित्र के साथ सवाल जोड़कर उसे लाजवन्ती या छुई–मुई बना दिया गया। विवाह के संबंध में कुछ मान्यताएँ निर्धारित कर दी गयी अर्थात् इस संबंध में इनकों कोई मान्यता नहीं दी जाती थी।

उनके वैधानिक अधिकार सीमित थे। चल एवं अचल संपत्ति पर उनका कोई अधिकार नही रहा। इस युग में स्त्री पर पुरूष की सत्ता प्रमुख रही।

बौद्धकाल में स्त्रियों की दशा हीन और चिंताजनक हो गयी थी। स्त्रियाँ उपभोग की वस्तु मानी जाती थी। दासी प्रथा का प्रचलन भी बढ़ गया था। स्त्रीयों के लिए सीमाएं निर्धारित कर दी गयी और अधिकार सीमित कर दिए गये। उन पर कठोर नियंत्रण रखा जाने लगा था। यह पुरूष की हृदयहीनता एवं संकीर्ण मानसिकता का घोतक थी।

मुगलकाल में स्त्रियों पर अधिक प्रतिबंध लगा दिये गये। धीरे–धीरे वे प्रतिबंधा समाजीकृत हो गये और परंपराओं, प्रथाओं और रूढ़ियों ने धर्म का रूप ले लिया। जफर ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि "मुगलकाल में औरत पर्दे की कैद में चली गयी और शिक्षा राजनीति, धर्म, सामाजिक व आर्थिक क्षेत्रों से ऐसे अलग कर दी गयी जैसे दूध में से मक्खी।"

ब्रिटिश काल में ईसाई धर्म का प्रचार–प्रसार हुआ और साथ ही आधुनिक शिक्षा का भी प्रचार हुआ लेकिन औरत के संबंध में यह पश्चिमीकरण विशेष प्रभावी न हो सका। स्त्री स्वातंत्रता के लिए जो आंदोलन चलाये गये जैसे–बाल विवाह, सती प्रथा, कन्या वध आदि। ये आंदोलन औरत की दयनीय स्थिति की ऊपरी सतह पर चोट पहुँचा सके अर्थात् इनसे स्त्रियों की स्थिति में कोई विशेष सुधार नही आया और स्त्री उत्तर वैदिक युग की स्त्री की ही भांति असूर्यपश्या बनी रही।

इस प्रकार स्पष्ट है कि सदियों से समाज में स्त्री–पुरूष को भिन्न दृष्टिकोण से

देखा जाता रहा है। समाज में जहां पुरूषों के लिए सारी सुविधाएं, छूट, आसानियाँ उपलब्ध है, वहीं स्त्री के हिस्से में बंदिशे, अनिवार्यता, रूढ़ियां व पीड़ाएँ है। जैसा कि मैथिलीशरण गुप्त ने लिखा है–"अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी आँचल में है दूध और आँखों में पानी।"[1]

स्त्री निश्चित ही पुरूष द्वारा शोषित की जाती रही फिर एक विचार यह भी है कि स्त्री के शोषण में केवल पुरूष का ही हाथ नही होता है बल्कि स्त्रियाँ भी स्त्रियों का शोषण करती है। घर में यदि स्त्री को कष्ट पहुँच रहा है तो सिर्फ पुरूष के द्वारा नही, स्त्री के द्वारा भी। सच्चाई तो यहाँ तक है कि स्त्री चाहे शहर की हो या गाँव की लड़की नहीं चाहती। यदि लड़की हुयी तो गर्भ गिरवा देती है। सास की बहु पर तानाशाही, बहुओं की आपसी ईर्ष्या, ननद की भाभी पर हुकुमबाजी आदि इस बात के उदाहरण है कि वास्तव में स्त्री भी स्त्री का शोषण करती है।

द्वितीय अध्याय "अध्ययन क्षेत्र एवं अध्ययन पद्वति' में हमने झाँसी जनपद की पृष्ठ भूमि के तहत क्षेत्रफल, साक्षरता का प्रतिशत, तहसीलों की संख्या, विकास खण्डों के संख्या, नाम, प्रमुख पर्यटन एवं ऐतिहासिक स्थलों का अध्ययन किया है, तथा अध्ययन हेतु चयन प्रक्रिया,लाटरी प्रणाली, अध्ययन में प्रयुक्त उपकरण, तथ्यों का प्रस्तुतीकरण आदि का अध्ययन किया है।

तृतीय अध्याय "अध्ययन इकाईयों की परिचयात्मक पृष्ठ भूमि" भारतीय समाज की व्यवस्था के बारे में अध्ययन किया है।

व्यवहारिकता में जाति की वर्गीकृत या संस्तरीकृत व्यवस्था का ही उपयोगा होता है, एम.एन. श्रीनिवास के अनुसार–''वर्ग व्यवस्था व्यापक अर्थो में उपयुक्त है किन्तु समाज की वास्तविक एवं प्रभावशाली इकाई नहीं है।''

अर्थात् हम कह सकते है कि वर्ण व्यवस्था जहां एक ओर समाज में आदर्शात्मक प्रतिमान प्रस्तुत करती हैं वहां जाति व्यवस्था व्यवहारिक उपयोग में विवाह खान–पान एवं अन्य सामाजिक संबंधों में निषेधाज्ञाओं का पालन कराने के रूप में कार्य करती है।

जाति को बन्द वर्ग के रूप में परिभाषित करते हुये मजूमदार, जाति के अन्य लक्षणों, खान–पान एवं विवाह संबंधी प्रतिबन्धों की मूक व्याख्या प्रस्तुत करते है। भारतीय जाति व्यवस्था के समस्त प्रतिबन्धात्मक लक्षणों की चिरकालीन निरंतरता निश्चित ही आश्चर्यजनक है। जिस पर अपने विचार करते हुये पन्निकर कहते है कि–''कभी न समाप्त होने वाली विषमता से उत्पन्न हीन भावना से जिस समाज की अधिकांश जनसंख्या ग्रस्त हो उसे ब्राह्मणवादी विचारक कैसे न्यायिक दर्शाते है।''

प्रत्येक समाज की संस्कृति के अनिवार्य अंगों में एक ओर जहां उसके सास्कृतिक तत्व महत्वपूर्ण होते है वही दूसरी ओर समाज की अर्थव्यवस्था भी महत्वपूर्ण होती है, कार्लमार्क्स, थर्सटीन वेवलेन, लेनिन तथा अन्य मार्क्सवादी समर्थकों ने आर्थिक संरचना को समाज के केन्द्रक के रूप में स्वीकार किया है। कार्लमार्क्स के ही शब्दों में–''सामाजिक परिवर्तन के लिए आर्थिक कारक ही चल

है।"

मानव की सम्पूर्ण उसके पर्यावरण से प्रभावित होती है और पर्यावरण की भौतिक संस्कृति के विभिन्न प्रतिमानों को निर्मित करने एवं उनके वाहक बनने की भूमिका निभाती है। भौतिक संस्कृति से ही अर्थव्यवस्था का निर्माण होता है जो कि समाज की संरचना को प्रभावित करता है। नृतत्व शास्त्रियों में हर्स्काविट्स, टायलर एवं हॉबल आदि इससे सहमत है। अतः यह आवश्यक है कि किसी भी समुदाय के अध्ययन के लिये उसकी आर्थिक संरचना को समझा जाये।

इस प्रकार समाजशास्त्रीय शोध अध्ययनों में सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति का अध्ययन अनिवार्य होता है। आगामी पृष्ठों में हम निदर्श की सामाजिक एवं आर्थिक प्रस्थिति का उल्लेख कर रहे है।

शोध अध्ययन के आधार पर ज्ञात होता है कि कुल 100 छात्राओं में से हिन्दु 66 प्रतिशत है, जैन छात्राओं का प्रतिशत 21 तथा इस्लाम का 7 प्रतिशत है। ईसाई छात्राओं का प्रतिशत 6 है। इसी प्रकार ज्ञात किया कि कुल 100 छात्राओं में से उच्च जाति की 56 प्रतिशत छात्राएँ है, अनुसूचित जनजाति की 6 प्रतिशत छात्राएँ हैं अनुसूचित जाति का प्रतिशत 2 है तथा पिछड़ा वर्ग का 15 प्रतिशत है। जैन छात्राओं का प्रतिशत 21 है।

अध्याय चतुर्थ "अध्ययन इकाईयों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति' में हमने सर्व प्रथम भारत की सामाजिक स्थित पर प्रकाश डाला और उसके बाद भारत की आर्थिक स्थिति पर इसके बाद अध्ययन इकाई के परिवार की मासिक आय पर

प्रकाश डाला जिससे ज्ञात होता है कि छात्राओं के परिवार की मासिक आय के आधार पर निष्कर्ष निकाला कि विभिन्न जाति एवं धर्म की 500रू. से कम तक मासिक आय वाले परिवारों का 1 प्रतिशत, 500 से 1000 रू. मासिक आय वाले 9 प्रतिशत, 1001 से 1500 रू. मासिक आय वाले 18 प्रतिशत, 1501 से 2000 रू. मासिक आय वाले 33 प्रतिशत 2000 रू. से अधिक मासिक आय वाले परिवारों का प्रतिशत 39 है।

अध्याय पंचम "विश्वविद्यालयीन छात्राओं की स्त्री स्वातन्त्र्य पर दृष्टिकोण" में हमने यह जानना चाहा कि क्या शादी से पहले लड़को से शारीरिक सम्बन्ध बनाने चाहिए या नहीं, एड्स के बारे में जानती है या नहीं,यौन सम्बन्ध बनाते समय कण्डोम का प्रयोग करेगी या नहीं, बाइक चलाना चाहेगी या नहीं, महाविद्यालय में सौन्दर्य प्रसाधन का प्रयोग करना चाहिए या नहीं, कक्षा में पुरुष मित्र के साथ बैठना चाहिए या नहीं, बाइक पर दोनों ओर पैर करके बैठना चाहिए या नहीं, एक से अधिक पुरुष मित्र बनाना चाहिए या नहीं, बारात में पुरुष मित्रों के साथ नाचना पसन्द करेगी या नहीं,देर रात तक बाहर घूमना पसन्द करेगी या नहीं, इण्टरनेट के माध्यम से कामुक चित्र देखना पसन्द करेगी, पुरुष मित्र के साथ एक कमरे में रहना पसन्द करेगी, सहपाठियों के साथ कार में अकेले रात को घूमना पसन्द करेगी, मासिक धर्म के समय सहवास करेगी, गर्भ धारण के पश्चात पति के अतिरिक्त पुरुष मित्रों से सहवास करेगी, विवाह के पश्चात् अपने पुरुष मित्र से सम्बन्ध बनाये रखेगी, तथा बीयर बार में काम करेगी आदि प्रश्नों के माध्यम से

निष्कर्ष निकाला है।

अध्ययन षष्ट " स्त्री स्वातन्त्र्य पर समाज का दृष्टि कोण" से स्पष्ट होता है कि स्त्रियों द्वारा नौकरी करने को विभिन्न विषयों (संकाय) की 56 प्रतिशत छात्राएं बहुत अच्छा तथा 43 प्रतिशत का 'अच्छा' मानती है। भारतीय धर्म और सामाजिक मान्यता स्त्रियों के रोजगार करने के पक्ष में है। इस संदर्भ में 61 प्रतिशत छात्राओं का सकारात्मक तथा 39 प्रतिशत का नकारात्मक दृष्टिकोण है। भारतीय महिलाओं द्वारा नौकरी के कार्य में संलग्नता को क्या समाज उचित ठहराता है। इस संदर्भ में विभिन्न संकायों की 9 प्रतिशत का सकारात्मक तथा 30 प्रतिशत का नकारात्मक दृष्टिकोण है तथा 61 प्रतिशत छात्राओं पर लागू नही होता। विभिन्न पौराणिक मानदण्डों के संबंध में छात्राओं ने अपनी सहमति/असहमति व्यक्त की है जो इस प्रकार है – स्त्री पुरूष की दासी है। विभिन्न संकाय की 5 प्रतिशत छात्राओं का उत्तर सकारात्मक तथा 95 प्रतिशत का नकारात्मक है। स्त्री ढोर, गवार, शूद्र और पशु के समान ताड़ना की अधिकारिणी है। सभी अर्थात् 100 प्रतिशत छात्राओं का उत्तर नहीं है। माँ और बहिन के रूप में स्त्री पूज्य है। 94 प्रतिशत छात्राओं का उत्तर हाँ है। जबकि 6 प्रतिशत छात्राओं का उत्तर नही है। पत्नी के रूप में स्त्री पुरूष से निम्न है। 8 प्रतिशत छात्राओं का उत्तर सकारात्मक तथा 92 प्रतिशत का नकारात्मक है। स्त्री को परिवार में कोई अधिकार नही मिलना चाहिए। 2 प्रतिशत छात्राओं का उत्तर हाँ है तथा 98 प्रतिशत का उत्तर नही है। स्त्री पुरूष की तुलना में अल्पबुद्धि होती है। 7 प्रतिशत का उत्तर हाँ तथा 93 प्रतिशत का उत्तर नहीं है।

स्त्री पुरूष की तुलना में शारीरिक दृष्टि से कमजोर होती है। इस संबंध में 61 प्रतिशत छात्राओं का उत्तर हाँ तथा 39 प्रतिशत का नहीं है।

भारतीय समाज में स्त्री पुरूष के संदर्भ में चरित्र संबंधी दौहरे मानदण्ड के संदर्भ में छात्राओं ने स्वीकृति/अस्वीकृति व्यक्त की है जिसमें 41 प्रतिशत छात्राओं ने स्वीकृति तथा 59 प्रतिशत छात्राओं ने अस्वीकृति व्यक्त की है। क्या स्त्री और पुरूष दोनों के चरित्र को समान रूप से विवाहेत्तर यौन संबंधों के आधार पर मापना चाहिए। इस संदर्भ में विभिन्न संकायों की 95% छात्राओं उत्तर 'हॉ' तथा 5% छात्राओं का उत्तर 'नही' है। विवाहेत्तर यौन संबंधों का चरित्र मापन से कोई रिश्ता नहीं होना चाहिए। इस संदर्भ में विभिन्न संकायों की 100% छात्राओं में से 45% का उत्तर 'हा' तथा 55% छात्राओं का उत्तर 'नही' है। क्या स्त्री के चरित्र में विवाहेत्तर यौन संबंधों को प्रमुख आधार माना जाना चाहिये। विभिन्न संकायों की 100% छात्राओं में से 20% का उत्तर 'हॉ' तथा 80% छात्राओं का उत्तर 'नही' है।

अध्याय सप्तम "हिन्दू सामाजिक व्यवस्था व दर्शन के प्रति दृष्टिकोण" में हमने हिन्दू सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत– 1–पंच ऋण– देव ऋण, ऋषि ऋण, पितृ ऋण, अतिथि ऋण, जीव ऋण, 2– पंच महायज्ञ– देव यज्ञ, ऋषि यज्ञ, पितृ यज्ञ, अतिथि यज्ञ, जीव यज्ञ, 3– पुरुषार्थ 4– कर्मवाद 5– पुनर्जन्म। समाज व्यवस्था– चार वर्णों में समाज का विभाजन, आश्रम व्यवस्था, संयुक्त परिवार की परम्परा, गाँव पंचायतों का महत्व, विवाह का धार्मिक स्वरूप, धर्म की प्रधानता, संस्कारों द्वारा

व्यक्तिका समाजीकरण, प्राचीनता तथा मौलिकता, स्थायित्व, अनेकता में एकता का अध्ययन किया है।

प्रस्तुत समस्त अध्ययन के आधार पर हम कह सकते है कि शिक्षा के परिणाम स्वरूप उच्च्व शिक्षा प्राप्त कर रहे छात्राओं में स्त्री–स्वातंत्रय के प्रति जागरूकता तो आई है। किन्तु अभी भी वे मूल कारण को समझ पाने में पूर्णतः सक्षम नही है। यदि शिक्षा के पाठ्यक्रमों में कुछ ऐसे परिवर्तन किए जाएँ जिन में स्त्री को पुरूष के समकक्ष माना जाए तो इस परंपरागत विचार से स्त्री मुक्त हो सकती है।

(अ) महिला/स्त्री शिक्षा की आवश्यकता (Need of Women Education)–भारत में स्त्री शिक्षा का इतिहास अन्य देशों का अपेक्षा अत्यधिक महत्वपूर्ण व प्राचीन हैं विकासशील देशों में स्त्रियों के पुरूषों के साथ पारिवारिक, सामाजिक और आर्थिक उत्तरदायित्वों का भी पालन करना पड़ता है, अतः स्त्री शिक्षा की उपेक्षा समाज की भावी पीढ़ी के साथ अन्याय करना है। स्त्री समाज का आधार है, अतः उन्हें शिक्षित करना सम्पूर्ण समाज को शिक्षित करना है। एक कन्या को पढ़ा देने से आगे आने वाली पीढ़ी सुशिक्षित हो सकती है। बालक की प्राथमिक पाठशाला घर और माता उसकी प्रथम शिक्षिका है। जो हाथ पालने को झुलाता है, वह संसार का शासन भी करता है। स्त्री ही परिवार का मेरूदण्ड है, उसकी ही प्रगति पर परिवार का बहुमुखी विकास निर्भर करता है। शिक्षित महिलाएँ परिवार की उन्नति के साथ–साथ समाज को भी सुसंस्कृत एवं उन्नतिशील बनाती है। स्त्रियाँ ही शिशुओं को शिक्षा देने में सर्वथा उपयुक्त है। स्त्री शिक्षा के अभाव में लोग शिक्षित नही हो सकते यदि समाज का नव–निर्माण करना हो तो

महिलाओं को वास्तविक और प्रभावपूर्ण ढंग से पुरूषों के समान ही शैक्षिक अवसर सुलभ करने होगें।

शिक्षा सम्बन्धी विभिन्न समस्याओं में महिला शिक्षा भी एक मुख्य समस्या है, क्योंकि देश के मध्यकाल में स्त्री शिक्षा का प्रवाह पूर्णता अवरूद्ध हो गया था, जो ब्रिटिश काल और स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद धीरे–धीरे पुनः प्रवाहित हुआ। देश में महिला शिक्षा के विकास का इतिहास निम्नानुसार हुआ–

(ब) स्त्री/महिला शिक्षा का संक्षिप्त इतिहास

(Brief History of Women's Education)

(स) 1. वैदिककाल में महिला शिक्षाः वैदिककाल में स्त्री शिक्षा का अत्यन्त उन्नतावस्था में थी। उन्हें शिक्षा प्राप्त करने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। उन्हें पुरूषों के समान ही शिक्षा का अधिकार था, किन्तु उनके लिए पृथक शिक्षालयों का व्यवस्था नही थी। स्त्री को पुरूष का अर्द्धांगिनी माना जाता था, कोई भी धार्मिक–कृत्य उनके बिना पूर्ण नहीं माना जाता था। इस काल की विदुषी महिलाओं द्वारा वैदिक–संहिताओं की रचना भी की गयी थी। सह–शिक्षा प्रचलित थी। गार्गी, लोपा, अपाला, मैत्रेयी, आत्रेई, विश्वतारा आदि इस युग की विदुषी महिलाएँ थी। उच्च शिक्षित विदुषियों को 'ब्रम्हवादिनी' कहा जाता था, वे 'शिक्षिका' का कार्य भी करती थी। उत्तर–वैदिक युग में अर्थात् 200 ई0पू0 बालिकाओं की विवाह आयु कम करने से उनकी शिक्षा प्राप्ति के मार्ग मे बाधा की गयी। उनके लिए वेदों का अध्ययन और वेदपाठ प्रतिबन्धित हो गया।

(द) 2. **बौद्धकाल में महिला शिक्षाः** इस युग में महात्मा बुद्ध ने स्त्रियों की समुचित शिक्षा व्यवस्था के लिए उन्हें बौद्ध संघ में प्रवेश देकर स्त्री शिक्षा को नवजीवन कासंचार किया इस युग में अनेक विद्बुषी महिलाएँ उत्पन्न हुयीं जिन्होंने शैक्षिक, धार्मिक एवं दार्शनिक क्षेत्र में समाज का नेतृत्व किया। शील, भट्टारिका एवं विजयंका उच्चकोटि की कवयित्री थी। मण्डन मिश्र की पत्नी ने शंकराचार्य और मण्डन मिश्र के मध्य हुए शास्त्रार्थ में निर्णायक की भूमिका निभायी थी। सम्राट अशोक की बहन संघमित्रा बौद्ध धर्म के प्रचारार्थ विदेश गयी थीं सुनेधा, शुभा एवं अनुपमा इस युग का विदुषी महिलाएँ थी। स्त्रियाँ राजनीति में भाग लेती थी, वे आलोचना, मीमांसा, वेदान्त, आयुर्वेद एवं उच्च साहित्य का अध्ययन करती थीं किन्तु बौद्धकाल में शिक्षा व्यवस्था केवल उच्च वर्ग की महिलाओं के लिए ही सुलभ थी।

(य) 3. **मध्यकाल में महिला शिक्षाः** इस युग में बाल–विवाह और परदा प्रथा के कारण छोट बालिकाओं के अतिरिक्त शेष सभी स्त्रियों का विशाल समूह शिक्षा प्राप्त नहीं कर सका। इस काल में राजघराने और अमीर वर्ग की बालिकाएँ घर पर ही शिक्षा प्राप्त करती थी। छोटी बालिकाएँ मस्जिदों से संलग्न, मकतब में लिखना–पढ़ना सीखती थी। इस पर भी इस युग में अनेक विदुषी महिलाओं का जन्म हुआ, जिनमें रयिा सुल्तान, नूरजहां, जेबुन्निसा, मुमताज महल, गुलबदन बेगम, जहाँआरा बेगम के नाम उल्लेखनीय है। हिन्दू विदुषियों में रानी रूपमती, रानी दुर्गावती, अहिल्याबाई, मीराबाई जैसी स्त्रियाँ आज भी स्मरणीय है।

(र) 4. ब्रिटिशकाल में महिला शिक्षाः ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन काल में महिला शिक्षा के अनावश्यक मानकर उसकी घोर उपेक्षा की गयी, क्योंकि कम्पनी को अपने राजकीय कार्यालयों हेतु शिक्षित स्त्रियों का आवश्यकता नहीं थी। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन काल में स्त्री शिक्षा का आन्दोलन ईसाई मिशनरियों की देन थी। सन् 1851 में प्रोटेस्टेन्ट मिशनरियों द्वारा 371 बालिका विद्यालयों को संचालित किया जा रहा था। कुछ सरकारी और गैर सरकारी प्रयासोंने भी बालिकाओं के लिए पृथक रूप से विद्यालय स्थापित किये। सन् 1859 में कलकत्ता में 'बंगाल शिक्षा परिषद' के प्रधान जे0ई0 मैथ्यून द्वारा सम्पादित 'मैथ्यून बालिका विद्यालय' विशेष उल्लेखनीय है।

1854 से 1902 तकः सन् 1857 से लेकर 1886 की अवधि तक स्त्री शिक्षण के प्रसार में कोई विशेष प्रगति नहीं हुयी। 1854 के 'वुड आदेश–पत्र' और 1882 के 'शिक्षा आयोग' ने स्त्री शिक्षा की प्रगति हेतु सिफारिशें करते हुए स्पष्ट किया कि देश में स्त्री शिक्षा पर अधिकाधिक व्यय किया जाना आवश्यक है। सरकार और जनता के प्रयासों से बालिकाओं की शिक्षा अत्यन्त तीव्र गति से बढ़ी। सन् 1902 क देश में 5,628 प्राथमिक विद्यालय, 467 माध्यमिक विद्यालय और 12 कॉलेजों की स्थापना हुयी।

1902 से 1921 तकः सन् 1902 के बाद स्त्री शिक्षा की द्रुत प्रगति हुई तथा सरकार ने भी इस ओर विशेष ध्यान नही दिया। 1904 के 'शिक्षा सम्बन्धी सरकारी प्रस्ताव' के द्वारा लॉर्ड कर्जन ने आदर्श बालिका विद्यालयों की स्थापना और अ॰

यापिका–प्रशिक्षण का प्रावधान किया। पुनः '1913 के शिक्षा सम्बन्धी सरकारी प्रस्ताव' की सिफारिशों के कारण भी स्त्री शिक्षा की प्रत्येक स्तर पर प्रगति हुई। आर्य समाज, ब्रह्म समाज, सर्पेक्ट्स ऑफ इण्डिया सोसाइटी जैसी संस्थाओं ने भी स्त्री शिक्षा में पर्याप्त योग दिया। 1904 में श्रीमती ऐनी बेसेन्ट ने बनारस में 'सेन्ट्रल हिन्दू गर्ल्स स्कूल' की स्थापना की। 1916 में दिल्ली में 'लेडी हार्डिंग मेडिकल कॉलेज' स्थापित हुआ। 1916 मे ही पूना में एस0एन0डी0टी0 महिला विश्वविद्यालय स्थापित किया गया जिसका श्रेय कर्वे और भण्डारकर को था। सन् 1917 तक देश में बालिकाओं हेतु 18,121 प्राथमिक विद्यालय, 389 माध्यमिक विद्यालय, 12 आर्ट्स कॉलेज एवं 4 व्यावसायिक कॉलेज उपलब्ध थे। सन् 1921 तक बालिकाओं की कुल शिक्षा संस्थाएँ 26,144 थीं जिनमें 14 लाख से अधिक छात्राएँ अध्ययनरत थीं।

1921 से 1947 तकः इस अवधि में महिला शिक्षा के क्रान्तिकारी उन्नति हुई। गांधीजी के राष्ट्रीय आन्दोलन, राष्ट्रीय महिला परिषद (1925) की स्थापना, अखिल भारतीय स्त्री शिक्षा सम्मेलन (1927) द्वारा शैक्षिक अवसरों की समानता की मांग, द्वैध शासन की अवधि में भारतीय शिक्षा पर भारतीय मन्त्रियों का निमन्त्रण, प्रान्तीय स्वशासन की अवधि में महिला शिक्षा को प्रोत्साहन, द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान विभिन्न प्रशासकीय और व्यावसायिक कार्यालयों हेतु शिक्षित व्यक्तियों की माँग तथा 'शारदा अधिनियम' द्वारा बाल विवाह निषेध होने से स्त्री शिक्षा का तीव्र गति से विकास हुआ। 1947 में देश में स्त्री से सम्बन्धित संस्थाओं की संख्या 28,196

थी जिनमें 42,97,785 लड़कियाँ अध्ययनरत थी।

(ल) 5. स्वतन्त्र भारत में महिला शिक्षा:

(Women's Education in Independent India)

स्वतन्त्र भारत में महिलाओं की सामाजिक स्थिति में महत्वपूर्ण परिवर्तन आया है। स्वयं महिलाओं ने अपने वास्तविक महत्व को समझ लिया है, अतः वह अपनी गिरी हुयी स्थिति के प्रति जागरूक हो रही है। आज स्त्री शिक्षा के सभी क्षेत्रों में महत्वपूर्ण क्रान्ति के दर्शन हो रहे है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत सरकार ने स्त्री शिक्षा के विकास हेतु निम्नलिखित कार्य किये है–

(व) 1. विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग, 1948: स्त्री शिक्षा के विकास हेतु 1948 में गठित इस आयोग ने उच्च–शिक्षा स्तर पर स्त्री शिक्षा के सम्बन्ध में निम्नलिखित सिफारिशें की–1. महिलाओं के लिए शैक्षिक अवसरों में वृद्धि होनी चाहिए। 2. उन्हें उनकी रूचियों व क्षमताओं को समझने हेतु समुचित पथ–प्रदर्शन प्राप्त होना चाहिए। 3. उन्हें इस प्रकार से प्रशिक्षित करना चाहिए कि वे नागरिक और महिला के रूप में समाज में स्वयं को सुप्रतिष्ठित कर सकें। 4. उन्हें भी पुरूष शिक्षकों के समान ही वेतन प्राप्त होना चाहिए। 5. उनके लिए शैक्षिक परामर्श की व्यवस्था होनी चाहिए।

2. माध्यमिक शिक्षा आयोग, 1952: इसने गृह विज्ञान की शिक्षा के लिए विशेष विद्यालयों और आवश्यकतानुसार लड़कियों के लिए अलग विद्यालयों की स्थापना करने पर बल दिया।

(श) 3. राष्ट्रीय महिला शिक्षा समिति, 1958: केन्द्र सरकार द्वारा दुर्गाबाई देशमुख की अध्यक्षता में गठित इस समिति ने स्त्री शिक्षा के विकास हेतु निम्नलिखित सुझाव किए–1. स्त्री शिक्षा को भी देश की एक प्रमुख समस्या माना जाये और इसके विकास कार्य को प्राथमिकता प्रदान की जाये। 2. स्त्री शिक्षा का सम्पूर्ण भार केन्द्र सरकार वहन करे। 3. स्त्री शिक्षा के प्रबन्ध हेतु एक विशेष तन्त्र/मशीनरी का प्रबन्ध किया जाये, यथा–राष्ट्रीय महिला शिक्षा संस्थान। 4. केन्द्र सरकार को एक निश्चित योजनानुसार निश्चित अवधि में स्त्री शिक्षा का विकास और विस्तार करना चाहिए। 5. सभी राज्यों के लिए स्त्री शिक्षा के विस्तार की नीति का निर्धारण करके इस नीति के अनुकरण हेतु पर्याप्त धन प्रदान करना चाहिए। 6. प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तरों पर बालिकाओं को शिक्षा की अधिकाधिक सुविधाएँ सुलभ करानी चाहिए। 7. ग्रामीण क्षेत्रों में स्त्री शिक्षा के प्रसार हेतु विशेष प्रयास होने चाहिए। 8. पुरूषों और महिलाओं का शिक्षा में व्याप्त विषमता को दूर करके समानता लानी चाहिए।

(ष) 4. राष्ट्रीय महिला शिक्षा परिषद, 1954: देशमुख समिति की सिफरिशों को स्वीकार करते हुए केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालय द्वारा 1959 में राष्ट्रीय महिला शिक्षा परिषद का गठनप किया गया, पुनश्च 1964 में इसे पुनर्गठित किया गया। यह परिषद् स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में निम्नलिखित कार्य देखती है–1. विद्यालय स्तर पर लड़कियों और प्रौढ़ महिलाओं की शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं पर सरकार को परामर्श देना। 2. उपरोक्त क्षेत्रों में बालिकाओं तथा महिलाओं की शिक्षा के प्रसार

एवं सुधारार्थ लक्ष्यों, नीतियों, कार्यक्रमों और प्राथमिकताओ के उपाय सुझवाना। 4. बालिकाओं व महिलाओं की शिक्षा के पक्ष में जनमत निर्माण हेतु उचित उपायों का सुझाव देना। 5. उक्त शिक्षा के क्षेत्र में होने वाली प्रगति का समयानुसार मूल्यांकन करना तथा भावी कार्यक्रमों की प्रगति पर ध्यान देना। 6. उक्त शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं पर विचार करने के लिए समय–समय पर आवश्यकतानुसार शोध, सर्वेक्षण, विचार–गोष्ठियों का आयोजन करने की सिफारिश करना।

(स) 5. श्रीमती हंसा मेहता समिति, 1962: राष्ट्रीय महिला शिक्षा परिषद् ने सन् 1962 में श्रीमती हंसा मेहता की अध्यक्षता में एक समिति को नियुक्त किया जिसने स्त्री शिक्षा के पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में उपयोगी सुझाव दिये। इस समिति ने कहा कि बालक–बालिकाओं के पाठ्यक्रम में अन्तर करने की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि शिक्षा का सम्बन्ध वैयक्तिक क्षमता और अभिरूचि से होता है। प्राथमिक स्तर पर दोनों का पाठ्यक्रम एक समान होना चाहिए तथा माध्यमिक स्तर पर पाठ्यक्रम में विविध विषय रखे जाने चाहिए। विशेष रूप से गृह विज्ञान का शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिए। गणित और विज्ञान की शिक्षा को अधिक प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। बालिकाओं के लिए व्यावसायिक शिक्षा का संस्थाओं को स्थापित करना चाहिए। कोई ऐसा कदम नहीं उठाया जाना चाहिए जो कि पुरूषों व स्त्रियों के वर्तमान अन्तर को स्थायी अथवा अधिक उग्र बना दें।

(ह) 7. कोठारी आयोग, 1964: इस आयोग द्वारा स्त्री शिक्षा के लिए अनेक सुझाव दिये गये यथा–

1. प्राथमिक शिक्षाः 1. संविधन में उल्लिखित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु बालिकाओं में प्राथमिक स्तर पर अनिवार्य शिक्षा का प्रसार करने के लिए विशेष प्रयास होने चाहिए। 2. बालिकाओं को बालकों के प्राथमिक स्कूलों में भेजने हेतु लोकमत तैयार किया जाए। 3. बालिकाओं को निःशुल्क पुस्तकें, स्कूली ड्रेस, लेखन सामग्री देकर शिक्षा की प्राप्ति हेतु प्रोत्साहन देना चाहिए। 5. 11 से 13 वर्ष–वर्ग की बालिकाओं हेतु अल्पकालीन हेतु अल्पकालीन शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिए।

2. माध्यमिक शिक्षाः 1. बालिकाओं हेतु माध्यमिक स्तर पर पृथक विद्यालय स्थापित किये जाये। जहाँ यह कार्य सम्भव न हो, वहाँ के विद्यालयों में कुछ शिक्षिकाओं की अनिवार्यतः नियुक्ति की जाये। 2. बालिकाओं को छात्रावास और यातायात साधनों की सुविधाएँ दी जायें। 3. बालिकाओं हेतु छात्रवृत्तियों, अल्पकालीन और व्यावसायिक शिक्षा से सम्बन्धित योजनाएँ शुरू की जायें।

3. उच्च शिक्षाः 1. बालिकाओं को छात्रवृत्तियों और मितव्ययी छात्रावासों की व्यवस्था उपलब्ध कराकर उच्च शिक्षा के प्रति प्रोत्साहन दिया जाये। 2. पूर्व–स्नातक स्तर पर बालिकाओं हेतु पृथक कॉलेजों का निर्माण किया जाये। 3 बालिकाओं को विज्ञान, कला, मानवशास्त्र, प्रौद्यागिकी आदि पाठ्य–विषयों में से चयन करने की स्वतन्त्रता प्रदान की जाये। 4. गृह–विज्ञान, शिक्षा एवं सामाजिक कार्य के पाठ्य–विषय का विकास करके उन्हें बालिकाओं के लिए अधिक आकर्षक बनाया जाये। 5. बालिकाओं को व्यवसाय प्रबन्धन और प्रशासन की उच्च शिक्षा प्राप्त करने का अवसर प्रदान किया जाए। 6. एक या दो विश्वविद्यालयों में महिला

शिक्षा की समस्याओं का समाधान ढूढ़ने के लिए शोध केन्द्र स्थापित किये जायें।

सामान्य सुझावः 1. देश में महिला शिक्षा के मार्ग में उपस्थित सभी बाधाओं को दूर करने के लिए ठोस और निश्चित कदम उठाये जाने चाहिए। 2. स्त्रियों–पुरूषों के मध्य जो शिक्षा सम्बन्धी खाई उत्पन्न हो गयी है, उसे पाटने के लिए यथाशीघ्र उपयुक्त विशेष योजनाएँ तैयार की जाये। 3. स्त्री शिक्षा की देख–रेख हेतु केन्द्र और राज्य स्तर पर उपयुक्त प्रशासनिक संगठनों का निर्माण किया जाये। 4. महिलाओं हेतु अंशकालीन रोजगारों का प्रबन्ध हो तांकि वे पारिवारिक कार्यो से निवृत्त होने के उपरान्त अपनी शिक्षा से आर्थिक लाभ प्राप्त कर सके। 5. अविवाहित स्त्रियों हेतु पूर्णकालीन रोजगारों की व्यवस्था की जाये।

(क्ष) 8. राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986: उपरोक्त प्रयासों के बाद शिक्षा प्रणाली महिलाओं की समानता के प्रति यथोचित योगदान नहीं कर सकी। अतः राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 के अन्तर्गत महिलाओं को शैक्षिक अवसरों की समानता देने के उद्देश्यवश निम्नलिखित लक्ष्य निर्धारित किये गये–1. बालिकाओं हेतु प्राथमिक शिक्षा का समय एवं चरणाबद्ध कार्यक्रम। 2. सन् 1995 तक 15–35 वर्ष–वर्ग की स्त्रियों हेतु प्रौढ़ शिक्षा का एक समय और चरणाबद्ध कार्यक्रम। 3. व्यावसायिक, तकनीकी, वृत्तिक शिक्षा और विद्यमान एवं उभरती हुई तकनीकी में स्त्रियों के प्रवेश को बढ़ाना।

चूंकि राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 में शिक्षा को स्त्रियों के स्तर में मूलभूत परिवर्तन लाने हेतु एक पद्धति के रूप में प्रयुक्त किया जाना है, अतः राष्ट्रीय शिक्षा

नीति – 1. महिलाओं को अधिकार दिलाने में सही मध्यस्थता की भूमिका निभायेगी। 2. यह नये सिरे से तैयार किये गये पाठ्यक्रम और पाठ्य–पुस्तकों के द्वारा नवीन मूल्यों के विकास में सहयोग देगी। 3. महिलाओं के शिक्षण को पाठ्यक्रमों के रूप में प्रोन्नत करेगी।

(त्र) 9. **आचार्य राममूर्ति समिति, 1990:** इस समिति ने महिला शिक्षा के सन्दर्भ में निम्नलिखित सिफारिशें की है– 1. शिशु की देखरेख और शिक्षा केन्द्रों को प्राथमिक स्कूलों के समीम स्थापित किया जाये और उनकी समय अवधि को स्कूलों की समय–अवधि के साथ ही समायोजित किया जाये। 2. कक्षा एक से कक्षा तीन तक का पाठ्यक्रम शिशु–शिक्षा केन्द्रों के अनुरूप बनाया जाये। 3. आंगनबाड़ी कार्यकर्ताओं एवं स्कूल के अध्यापकों में समन्वय स्थापित हो। 4. 300 या इससे अधिक आबादी वाले क्षेत्रों में एक प्राथमिक विद्यालय को स्थापित किया जाये। 5. 500 या इससे अधिक आबादी वाले क्षेत्रों में एक जूनियर हाई स्कूल खोला जाये। 6. विद्यालय की समय–अवधि को स्थानीय क्षेत्र की आवश्यकता के अनुरूप निश्चित किया जाये। 7. स्कूल छोड़ने वाले बच्चों के लिए गैर–औपचारिक पद्धतियों को प्रयुक्त किया जाये। 8. महिला शिक्षकों की संख्या बढ़ाई जाये। 9. छात्राओं को विद्यालय पहुंचाने के लिए परिवहन साधनों का व्यवस्था की जाये। 10. योग्य / मेधावी छात्राओं को छात्र वृत्तियां दी जाये। 11. जहां पर सह–शिक्षा हो, वहां महिला शिक्षकों को नियुक्त किया जाये। 12. योग्य छात्राओं को स्कूली यूनीफार्म, पाठ्य–पुस्तक आदि दी जायें। 13. छात्राओं हेतु 'प्रथम विद्यालय'

स्थापित किया जाये। इसके लिए विद्यालय के भवन का प्रयोग दो पालियों में हो सकता है—एक पाली में छात्राएं और दूसरी पाली में लड़कों को पढ़ाया जायें। 14. छात्राओं को आवासीय सुविधाएं दी जाये। इसके लिए छात्रावासों को स्थापित किया जाये। 15. उच्च शिक्षा के क्षेत्र में व्यावसायिक धारा को छात्राओं के लिए प्रोत्साहित किया जाये।

वर्तमान समय में महिला शिक्षा से सम्बन्धित संस्थाएँ:

वर्तमान समय में स्त्री शिक्षा का प्रसार तेजी से हुआ है जिसके अन्तर्गत विभिन्न संस्थाएँ कार्य कर रही है। यथा–

1. वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान
2. सेन्ट्रल हिन्दू बालिका विश्वविद्यालय, वाराणसी,
3. कन्या गुरूकुल, देहरादून,
4. बड़ोदा विश्वविद्यालय,
5. एस0एन0डी0टी0सी0 महिला विश्वविद्यालय, पूना,
6. इन्द्रा कला समिति विश्वविद्यालय, खैरागढ़,
7. विश्व भारती, कोलकाता,
8. टीचर्स कॉलेज ऑफ म्यूजिक, चेन्नई,
9. सर जे0 जे0 स्कूल ऑफ आर्ट्स, मुम्बई,
10. इन्टीट्यूट ऑफ आर्ट्स एण्ड म्यूजिक (जामिया मिलिया इस्लामिया, दिल्ली),

11. लेडी इरविन कॉलेज, दिल्ली,

12. राजकीय गृह विज्ञान संस्थान, इलाहाबाद,

13. गृह विज्ञान प्रशिक्षण कॉलेज, हैदराबाद,

14. लेडी श्रीराम कॉलेज ऑफ कॉमर्स दिल्ली आदि।

(अ) भारत में महिला शिक्षा की समस्याएँ और उनका समानधानः

(Problems and their Solutions of Women's Education in India)

यद्यपि महिला शिक्षा के विकास हेतु देश मे सरकारी और निजी स्तर पर अनेक प्रयास किये गये हैं किन्तु अन्य देशो की अपेक्षा अभी बांछित प्रगति नही हो पायी है। पुरूषों का एक बड़ा वर्ग आज भी नारी की महत्ता को स्वीकार नहीं करता। वह अपनी परम्परागत, रूढ़िवादिता, धार्मिक संकीर्णता और अहम्–भाव के कारण आज भी स्त्री को अपने कड़े अनुशासन और बन्धन से स्वतन्त्र होने का पक्षधार नहीं है किन्तु प्रगतिशील वर्ग राष्ट्रीय जीवन में महिला शिक्षा के महत्व को स्वीकार करते हुए उसके तीव्र प्रसार का समर्थक है। देश में अनेक ऐसी बाधाएं/कठिनाइयां/समस्याएं/अड़चने विद्यमान हैं जिनके कारण महिला शिक्षा दबे पांव रेंगती हुई आगे बढ़ रही है। स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में सामाजिक रूढ़ियां, अशिक्षा और अज्ञानता, आर्थिक कठिनाइयां, अध्यापिकाओं का अभाव, बालिका विद्यालयों का अभाव, अनुपयोगी पाठ्यक्रम महिलाओं की शिक्षा के प्रति अस्वस्थ/अनुचित–दृष्टिकोण, शिक्षा के अपव्यय और अवरोधन, सरकारी उदासीनता

और अकुशल शैक्षिक प्रशासन आदि प्रमुख समस्याएं हैं इनमें से प्रमुख समस्याएँ निम्नानुसार है:–

(ब) 1. रूढ़िवादिता व धर्मान्धता (Conservatism and Religiousity): देश में व्याप्त सामाजिक कुरीतियों, अन्धविश्वासों, रूढ़ियों और धर्मान्धता के कारण महिला शिक्षा को बाँछित सफलता नहीं मिल रही है। आज भी बाल–विवाह, परदा प्रथा, स्त्री–पुरूष का भेदभाव महिलाओं की शिक्षा में बाधक है। प्राचीन परम्पराओं के समर्थकों का विचार है कि बालिकाओं को शिक्षा उपलब्ध कराना व्यर्थ है, क्योंकि उन्हें परिवार में ही जीवन व्यतीत करना है, न कि नौकरी या रोजगार करना। इसीलिए वे बालिकाओं की शिक्षा के स्थान पर उनके शीघ्रताशीघ्र विवाह पर अधिक बल देते है। कुछ लोग अधिक आयु की बालिकाओं के विद्यालय जाने के विरोधी भी है, तो कुछ बालिकाओं को 'पराया धन' मानकर उनकी शिक्षा पर अधिक धन व्यय नहीं करना चाहते है। धर्मान्धता के बन्धन में जकड़े लोग छोटी आयु में ही बालिकाओं के रजोदर्शन के पहले ही उनका विवाह कर देते है, क्योंकि धर्मग्रन्थ के अनुसार रजोदर्शन को अपराध मानते है। स्पष्ट है कि यह सभी ध ारणाएँ महिला शिक्षा की प्रगति में बाधाएँ उत्पन्न करती है।

समाधान: (Solution): इस समस्या के समाधानार्थ निम्नलिखित व्यावहारिक सुझाव प्रस्तुत है–

(स) 2. अपव्यय और अवरोधन (Wastagn and Stagnation): महिला शिक्षा की एक समस्या यह भी है कि कभी–कभी कुछ कारणों से लड़कियों के एक

कक्षा में कई वर्ष पढ़ना पड़ता है, फलतः शिक्षा के प्रति उनकी रूचि समाप्त हो जाती है। माता–पिता भी शिक्षा का व्यय–भार नही उठा पाते, अतः उनका विद्यालय जाना बन्द हो जाता है। कभी–कभी माध्यमिक या उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाली लड़कियों को विवाहादि कारणों से बीच में ही शिक्षा की निर्धारित अवधि ा के पहले ही पढ़ाई छोड़नी पड़ जाती है। बालिकाओं की शिक्षा में अपव्यय और अवरोधन अधिक पाया जाता है। इसके अनेक कारण है, यथा–1. बालिका विद्यालयों का अभाव होना, 2. यातायात–साधनों का अभाव होना, 3. दूषित परीक्षा–प्रणाली की प्रचालित होना, 4. विद्यालयों में नीरस शिक्षण–प्रणाली का प्रयोग होना तथा 5. बालिकाओं हेतु उपयोगी पाठ्यक्रम का अभाव होना आदि।

समाधानः (Solution): इस समस्या का समाधान करने के लिए निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत है–

1. प्रचलित शिक्षा पद्धति में समुचित सुधार किये जाये। 2. बालिका विद्यालयों की संख्या और बढ़ाई जाए। 3. शिक्षण अधिगम के अन्तर्गत मनोवैज्ञानिक एवं प्रगतिशील विधियों/प्रविधियों को प्रयुक्त किया जाए। 4. निम्न कक्षाओं में खेल–विधि का प्रयोग किया जाए। 5. मूल्यांकन के लिए नई विधियों का प्रयोग किया जाए। 6. बालिकाओं की शिक्षा के प्रति पाया जाने वाला संकुचित दृष्टिकोण बदला जाये। 7. बालिका विद्यालयों में उपयोगी पाठ्यक्रम तैयार किया जाए। 8. बालिकाओं के विद्यालय आने–जाने के लिए यातायात साधनों की समुचित व्यवस्था की जाए। 9. बालिकाओं हेतु अल्पकालीन शिक्षा की व्यवस्था की जाए।

10. बालिकाओं के लिए निर्देशन और परामर्श की व्यवस्था की जाए।

(द) 3. **दोषपूर्ण/अनुपयुक्त पाठ्यक्रम** (Defective Curriculum): स्त्री शिक्षा की सर्वप्रमुख गम्भीर समस्या वस्तुतः उनके अनुपयुक्त और दोषपूर्ण पाठ्यक्रम की ही है, क्योंकि देश में शिक्षा के सभी स्तरों पर छात्रों एवं छात्राओं हेतु समान पाठ्यक्रम और परीक्षाएँ निर्धारित है। यह लड़कियों के शारीरिक, मानसिक और सामाजिक दृष्टिकोण से उपयुक्त नहीं है। बालिकाओं की शिक्षा ज्ञान प्रधान, पुस्तक प्रधान और अव्यावहारिक है। चूंकि यह शिक्षा उनके यथार्थ जीवन से सम्बन्धित नहीं है। अतः यह दोषपूर्ण है। बालिकाओं की प्रचलित शिक्षा प्रणाली में स्त्रियोचित गुणों का विकास करने पर बल नहीं दिया जाता है और न ही उनकी आवश्यकताओं पर पर्याप्त ध्यान दिया जाता है। यह शिक्षा बालिकाओं को गृहस्थ जीवन के लिए तैयार नहीं करती और न ही उन्हें पारिवारिक जीवन के उत्तरदायित्वों को वहन करने की क्षमता प्रदान करती है। यह शिक्षा महिलाओं को भी पुरूषों की भांति बेरोजगार बनाती है। यह शिक्षा बालिकाओं को पाश्चात्य स्त्रियों का अन्धानुकरण का पाठ सिखाती है, जिससे भारतीय आदर्शो, संस्कृति और सभ्यता से सम्बन्ध विच्छेद होता है। स्पष्ट है कि स्त्रियों की वर्तमान शिक्षा उस जीवन के लिए सर्वथा व्यर्थ है जो उन्हें व्यतीत करना है।

समाधानः (Solution): स्त्री शिक्षा की इस समस्या का समाधान विभिन्न पाठ्यक्रमों की व्यवस्था करके हो सकता है, यथा–1. प्राथमिक स्तर पर बालिकाओं को सामान्य शिक्षा के साथ–साथ सिलाई–कटाई, कढ़ाई, बुनाई, कोई स्थानीय

शिल्पादि की शिक्षा देनी चाहिए तांकि वे भविष्य में इससे लाभान्वित हो सके और आर्थिक दृष्टि से मददगार भी सिद्ध हो। 2. माध्यमिक स्तर पर बालिकाओं को सामान्य विषयों के साथ–साथ ऐसे विषयों का ज्ञान कराया जाये जिससे भविष्य में वे एक अच्छी माता और कुशल गृहणी बन सके। उनके पाठ्यक्रम में चित्रकला, संगीत, गृहविज्ञान, पाकशास्त्र, सिलाई–कटाई, हस्तशिल्प, शिशु संरक्षण तथा पूर्ण व्यावसायिक शिक्षा से सम्बन्धित विविध विषयों को स्थान देना चाहिए। 3. स्त्रियों का शिक्षा में उच्च स्तर के अन्तर्गत बालकों की शिक्षा के ही समान सामान्य और व्यावसायिक शिक्षा के पाठ्यक्रमों को आयोजित करना चाहिए। पारिवारिक जीवन को सुखी बनाने के लिए बालिकाओं के पाठ्यक्रम में मातृ–कला, गृह–प्रबन्ध, गृह–परिचर्या, गृह–अर्थशास्त्र जैसे विषयों को स्थान देना चाहिए। 4. स्त्रियों की शिक्षा विशेषकर परिवारों की दृष्टि से उनको एक अच्छी सुमाता, शिक्षिका, चिकित्सक और पारिचारिका बनाने के लिए व्यावहारिक होनी चाहिए। 5. अधिकांश दार्शनिकों, मनोवैज्ञानिकों और शरीरशास्त्रियों ने स्त्रियों तथा पुरूषों के कार्यो, रूचियों, रूझानों, क्षमताओं आदि में स्पष्ट विभेद किया है जिसके आधार पर कहा जाता है कि बालक और बालिकाओं के पाठ्यक्रमों अनिवार्यतः भिन्न होने चाहिए। यद्यपि हंसा मेहता समिति, कोठारी आयोग एवं गांधीजी आदि के अनुसार लिंग के आधार पर पाठ्यक्रमों में अन्तर करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

(य) 4. दोषपूर्ण शैक्षिक प्रशासनः (Defective Educational Administration): देश में स्त्री शिक्षा का प्रशासन भी दोषपूर्ण है। पंजाब,

उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल, हैदराबाद आदि राज्यों के अतिरिक्त शेष राज्यों में स्त्री शिक्षण का प्रशासन पुरूष अधिकारियों के हाथ में है। स्त्री शिक्षा की समस्याओं से भलीभांति विज्ञ न होने के कारण वे उसमें बांछित रूचि नहीं प्रदर्शित करते, जिससे स्त्री शिक्षा के समुचित विकास में बाधा उत्पन्न होती है। इस सम्बन्ध में सरकारी उदासीनता भी कई अड़चने उत्पन्न करती है।

समाधानः (Solution): इस समस्या का समाधान प्रशासन में उपयुक्त सुध ार लाकर हो सकता है किन्तु यह तभी सम्भव है जबकि स्त्री शिक्षा के प्रशासन का भार पुरूषों के बजाय स्त्रियों के सुपुर्द किया जाये। प्रत्येक राज्य के शिक्षा विभाग में एक शिक्षा–उपसंचालिका और उसे प्रशासनिक कार्यो में सहायता देने हेतु विद्यालय–निरीक्षकाओं और उप–निरीक्षकाओं को नियुक्त की जाये। ऐसा करने पर वे स्त्री शिक्षा में रूचि लेंगी, उसकी विशिष्ट आवश्यकताओं को उचित ढंग से समझेगी और स्त्री शिक्षा हेतु उपयुक्त कार्यक्रम भी तैयार करेंगी और उनका सफल क्रियान्वयन भी।

(र) सरकारी उपेक्षा/उदासीनता (Neglignece of Governmet): स्त्री शिक्षा की प्रगति हेतु सरकार भी पर्याप्त सचेष्ट नही रही है। स्त्री शिक्षा के अन्तगंत बालकों की अपेक्षा इन्हें कम धनराशि निर्धारित की जाती है। लगता है कि सरकार की जितनी रूचि बालकों की शिक्षा में है, उससे कई गुना कम बालिकाओं की शिक्षा में है। इसके लिए प्रमाणों की आवश्यकता नहीं है। भारत–चीन युद्ध के दौरान सभी राज्यों ने आर्थिक संकट से निबटने हेतु बालिका–शिक्षा के व्यय में

कटौती की थी। सरकार की उपेक्षा के कारण ही देश में नवीन कन्या पाठशाला नही बन पा रहे है। अनेक व्यक्तिगत विद्यालय राजकीय अनुदान न मिलने का कारण बन्द हो जाते है। बालिका विद्यालयों में समुचित सुविधाएं भी नहीं है। इतना ही नहीं उनमें उचित भवन, कक्षों, खेल का मैदान, शिक्षोपकरण, प्रयोगशाला, पुस्तकालय, मनोरंजन के साधनादि का भी अभाव देखा जाता है।

समाधानः (Solution): इस समस्या का समाधान करने के लिए सरकारी नीतियों में पर्याप्त परिवर्तन की आवश्यकता है। स्त्री शिक्षा का समुचित विकास तब तक सम्भव नहीं है जब तक कि स्त्री शिक्षा के प्रति अपनी नीतियां नहीं बदलती। केन्द्रीय और राज्य सरकारों को बालिका विद्यालयों को पर्याप्त आर्थिक सहायता और अनुदान उपलब्ध कराना चाहिए तथा व्यक्तिगत प्रयासों को प्रोत्साहित करना चाहिए। सरकार द्वारा बालक और बालिकाओं की संख्या के अनुपात में शिक्षा के लिए धनराशि निर्धारित करनी चाहिए। इस धनराशि को मात्र स्त्री शिक्षा पर व्यय करना चाहिए तथा इसमें कोई कमी/कटौती भी नहीं करनी चाहिए। इस धनराशि को स्त्री शिक्षा के सभी स्तरों के लिए आवश्यकता के अनुसार विभाजित किया जाना आवश्यक है।

(ल) 6. महिला शिक्षिकाओं का अभाव (Dearth of Women Teachers): देश के बालिका विद्यालयों में योग्य, अनुभवी और प्रशिक्षित अध्यापिकाओं का अभाव है। अनेक शिक्षित/प्रशिक्षित स्त्रियां अपने परिवार वालों की इच्छा के विरूद्ध नौकरी करना पसन्द ही करती, जिससे स्त्री शिक्षा का प्रसार बाधित होता

है। यह अभाव शिक्षा के सभी स्तरों पर देखा जा सकता है। अधिकांश स्त्रियां उसी नगर/ग्राम/करबा में नौकरी चाहती है जहां वे निवास करती है। कुछ स्त्रियां विवाहोपरान्त नौकरी त्याग देती है। प्रशिक्षित अध्यापिकाओं का अभाव इस कारण भी है कि स्त्रियों में शिक्षा का प्रसार अधिक नहीं हुआ है। प्रशिक्षित अध्यापिकाओं का विशेष अभाव है, क्योंकि स्त्री प्रशिक्षण की व्यवस्था बड़े–बड़े नगरों में है, जिनसे सभी स्त्रियां लाभान्वित नहीं हो पाती है। ग्रामों में महिला शिक्षकों का अधिक अभाव है क्योंकि वहां नगर जैसी सुविधाओं उपलब्ध नहीं हो पाती है।

समाधानः (Solution): इसके समाधान हेतु सरकार को पर्याप्त प्रयास करने होगें, यथा–1. स्त्री प्रशिक्षण संस्थाओं की संख्या बढ़ाई जाए। 2. अध्यापिकाओं के वेतनमान में पर्याप्त बृद्धि की जाये। 3. अध्यापिकाओं हेतु अल्पकालीन रोजगारों की व्यवस्था होनी चाहिए। 4. स्थानीय शिक्षित महिलाओं को अध्यापन कार्य के लिए प्रोत्साहित किया जाए। 5. शिक्षकों की शिक्षित पत्नियों को शिक्षण व्यवसाय में आने के लिए प्रोत्साहन दिया जाए। 6. शिक्षण–व्यवसाय में आने के लिए इच्छुक अधिक आयु की महिलाओं को आयु–सीमा से मुक्त किया जाये। 7. कम शिक्षित और अप्रशिक्षित महिलाओं की नियुक्ति और उन्हें अपनी शैक्षिक योग्यताओं की वृद्धि करने में प्रशिक्षण प्राप्त करने में सहायता दी जाये। 8. वयस्क महिलाओं को अधिक शिक्षित बनाने और प्रशिक्षित करने हेतु संक्षिप्त और पत्राचार पाठ्यक्रमों की सुविधाओं का विस्तार किया जाए।

(व) स्त्री शिक्षा का समस्याएं और सरकार के कर्तव्य

(Problems of Women Education and Responsibilites of Government):

स्त्री शिक्षा में प्रगति लाने व सुधार करने के लिए सरकार को निम्नलिखित बातों पर विशेषतः ध्यान देने की आवश्यकता है:

1. केन्द्र सरकार द्वारा सभी राज्यों के लिए स्त्री शिक्षा की नीति का निर्धारण करते हुए समुचित आर्थिक सहायता दी जाये। 2. केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालय में महिला शिक्षा के लिए एक पृथक विभाग की स्थापना की जानी चाहिए। 3. केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालय के अन्तर्गत स्त्रियों की शिक्षा का सम्पूर्ण व्यय भार वहन किया जाए। 4. ग्रामीण क्षेत्रों में महिला शिक्षा के प्रसारार्थ पर्याप्त सुविधाएं उपलब्ध कराई जाएं। 5. बालिकाओं के लिए माध्यमिक स्तर पर पर्याप्त संख्या में बालिका विद्यालयों की स्थापना की जाए। 6. स्त्री शिक्षा के प्रसार हेतु प्रशिक्षित अध्यापिकाओं का प्रबन्ध होना चाहिए। 7. महिलाओं के लिए पर्याप्त संख्या में प्रशिक्षित विद्यालयों की स्थापना की जाए। 8. बालिकाओं की व्यावहारिक आवश्यकताओं के अनुरूप पाठ्यक्रम का निर्माण किया जाये। 9. महिला शिक्षण के प्रशासन में पर्याप्त सुधार होना भी आवश्यक है। प्रत्येक राज्य में एक शिक्षा उप–संचालिका और उसके अधीन विद्यालय निरीक्षकाओं को नियुक्त किया जाए। 10. वयस्क/प्रौढ़ स्त्रियों की शिक्षा पर पर्याप्त ध्यान दिया जाए।

सरकार जनता के सहयोग के बिना स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में सफल नही हो

सकती, अतः जनता को भी इस क्षेत्र में अपना सहयोग देना आवश्यक होगा। 1. जनता को बालिकाओं की शिक्षा में पर्याप्त–रूचि लेनी चाहिए। 2. जनता को स्त्री शिक्षा के प्रति समयानुसार नवीन दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। 3. जनता को सामाजिक दुष्प्रथाओं, अन्धविश्वासों और रूढ़ियों को समाप्त करना चाहिए। 4. स्वयं स्त्रियों को आगे बढ़कर अपने लिए उचित बांछित शिक्षा व्यवसाय की मांग करनी चाहिए क्योंकि संविधान ने उन्हें भी पुरूषों के समान अधिकार प्रदान किये है।

महिला शिक्षाके पिछड़ेपन के कारण

(Resons of Backwardness of Women Education):

महिला शिक्षा के पिछड़ेपन के प्रमुख कारण निम्नलिखित है–

1. महिला शिक्षा के पिछड़ेपन का पहला कारण यह है कि वर्तमान के विकासशील युग में लोग प्राचीन परंपराओं का समर्थन करते है इन लोगों का कथन है कि बालिकाओं को शिक्षा देना व्यर्थ है क्योंकि शादी के उपरांत उन्हें अपने परिवार की देखभाल करनी है यहां के लोग शिक्षा की अपेक्षा शादी पर ज्यादा ध्यान देते है। बालिकाओं को पराया धन समझकर उनकी शिक्षा पर व्यय किया गया धन व्यर्थ मानते है। स्त्री धारणा के कारण महिला शिक्षा में पिछड़ापन दृष्टिगोचर होता है।

2. महिला शिक्षा के पिछड़ेपन का दुसरा कारण यह है कि अधिकतर लोगों की धारणा शिक्षा से धन प्राप्त करना है शिक्षा मात्र व्यावसायिक लाभ के लिए दी जाती

है अतः बालकों को शिक्षा पर बालिकाओं की अपेक्षा अधिक ध्यान दिया जाता है।

3. महिला शिक्षा के पिछड़ेपन का तीसरा कारण यह है कि आजकल की अधि
ाकतर जनसंख्या संकटों से ग्रस्त है। ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों को जीवन की जरूरी आवश्यकताओं की पूर्ति कठिनाई से होती है। गरीब अभिभावक बालकों की शिक्षा के लिए साधन नही जुटा पाते है तो बालिकाओं की शिक्षा का प्रश्न सोचना ही बेकार है।

4. महिला शिक्षा के पिछड़ेपन का चौथा कारण यह है कि भारत सरकार का रवैया भी स्त्री शिक्षा के प्रति सकारात्मक नहीं है उनकी शिक्षा के लिए बालकों की अपेक्षा कम धनराशि निर्धारित की जाती है। उत्तर प्रदेश, हैदराबाद, दिल्ली, पंजाब में स्त्री शिक्षा का प्रशासन पुरूष अधिकारियों के अधीन है।

5. महिला शिक्षा के पिछड़ेपन का पांचवां कारण ग्रामीण क्षेत्रों में अधिकतर बालक–बालिकाओं को एक साथ शिक्षा ग्रहण करनी पड़ती है। माता–पिता, सह–शिक्षा को पसंद नही करते है। बालिकाओं के द्वारा अलग विद्यालयों की सुविधा का अभाव होना है। उन्हें उच्च शिक्षा से वंचित रहना पड़ता है।

6. महिला शिक्षा के पिछड़ेपन का अंतिम कारण यह है कि बालिकाओं को कभी–कभी एक ही शिक्षा में कई वर्षो तक पढ़ना पड़ता है। परिणामतः शिक्षा के संबंध में धीरे–धीरे इनकी रूचि क्षीण हो जाती है। माता–पिता में शिक्षा के व्यय भार को वहन नही कर पाते है और इस प्रकार उनका विद्यालय जाना बन्द हो जाता है।

हमारे देश की नारी शिक्षा संसार के अन्य देशों की तुलना मे काफी प्राचीन

और महत्वपूर्ण है। विकाशील देशों में स्त्रियों को पुरूषों के साथ सामाजिक एवं आर्थिक जिम्मेदारी का पालन अवश्य करना पड़ता है। अतः उनकी शिक्षा की अवहेलना नहीं की जा सकती है। स्त्री समाज का आधार है, उन्हें शिक्षित करना पूरे समाज को शिक्षित करना है। इस सम्बन्ध में नेपोलियन ने कहा था कि मुझे शिक्षित मातायें दो मैं एक सुशिक्षित राष्ट्र का निर्माण कर दूंगा। विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग ने स्त्री–शिक्षा के महत्व पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि स्त्री शिक्षा के बिना लोग शिक्षित नहीं हो सकते है। स्त्रियों का कार्य क्षेत्र घर तक ही सीमिति नहीं रहना चाहिए क्योंकि विभिन्न परिस्थितियों के कारण उन्हें जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में कार्य करने की आवश्यकता हो सकती है। अतः स्त्रियों के लिये शिक्षा की ऐसी रूप–रेखा बनायी जाये जो कि उनके जीवन को सफल बनाने में सहायक हो। यदि समाज का नव निर्माण करना हो तो स्त्रियों की वास्तविक और प्रभावपूर्ण ढंग से पुरूषों के समान शिक्षा प्राप्त करने का अवसर प्रदान किया जाना चाहिए।

बालक का भावी सदैव उसकी माता के द्वारा निर्मित किया जाता है। परिवार में माँ का स्थान तथा महत्व सर्वोपरि है। बालक के व्यक्तित्व पर माँ का अमिट प्रभाव पड़ता है। मां बालक के जीवन में प्रथम शिक्षिका के रूप में आती है। शिक्षित स्त्री ही अपने परिवार को सुखी बना सकती है। अतः पारिवारिक उत्तरदायित्व का पालन करने के लिए स्त्रियों का शिक्षित होना अति आवश्यक है। इसी प्रकार समाज की प्रगति मे शिक्षित स्त्रियों का सहयोग अत्यन्त आवश्यक है। समाज में स्त्री और पुरूषों दोनों का महत्वपूर्ण स्थान है। देश के सामाजिक स्तर को ऊंचा

उठाने के लिए स्त्री–शिक्षा को महत्व देना अनिवार्य है। स्वतंत्र भारत में स्त्रियों को पुरूषों के समान सभी अधिकार प्राप्त है। राष्ट्र की उन्नति और सफलता के लिए स्त्रियों पर उतना ही दायित्व है जितना पुरूषों पर। प्रजातंत्र की सफलता शिक्षित स्त्रियों पर निर्भर है। राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं का ज्ञान शिक्षा के ही द्वारा सम्भव है। अतः स्त्रियों को शिक्षित करना देश को प्रगति के पथ पर ले जाना है। आज भारत में राजनैतिक क्षेत्र में स्त्रियां जो महत्वपूर्ण योगदान दे रही है वह सर्वविदित है। इस प्रकार स्पष्ट है कि स्त्री शिक्षा की अवहेलना करना भावी पीढ़ी के साथ अन्याय करना है।

स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में सह–शिक्षा की समस्या भी उत्पन्न होती है। जब आर्थिक कारणों से स्त्रियों के लिए प्रारम्भ से ही विद्यालयों को खोलने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। शिक्षाविदों का ध्यान सह–शिक्षा पर गया। लेकिन हमारे देश की परम्पराओं, मान्यताओं और सामाजिक नियंत्रण के कारण सह–शिक्षा का प्रश्न विवाद का विषय बन गया है। आज सह–शिक्षा के पक्ष और विपक्ष में तर्क दिये जाते है। भारत में सह–शिक्षा का वर्णन वैदिक काल में मिलता है। गुरूकुलों और बौद्ध विहारों में सह–शिक्षा का उल्लेख किया गया है। मध्यकाल में पर्दा प्रथा के कारण सह–शिक्षा का प्रश्न ही नहीं उठता है। आधुनिक काल में सह–शिक्षा के प्रश्न को लेकर रूढ़िवादी अभिभावकों ने इसके विरोध में विचार व्यक्त किये। स्त्री–शिक्षा को राष्ट्रीय समिति की रिपोर्ट के अनुसार प्राथमिक स्तर और उच्च स्तर पर लोग सह–शिक्षा का विरोध नहीं करते लेकिन माध्यमिक शिक्षा

स्तर पर इसका विरोध किया गया।

एक ही संस्था में बालक–बालिकाओं के पढ़ने से उनमें स्पर्धा की भावना बढ़ती है जो कि उन्हें प्रेरणा प्रदान करती है और इस प्रकार दोनो को ही कार्यक्षमताओं में बृद्धि होती है। सामाजिक आधार पर उन्हें साथ–साथ कार्य करने और सामाजिक जीवन व्यतीत करने की शिक्षा मिलती है और उन्हें सफल भावी जीवन व्यतीतक करने के लिए व्यावहारिक अनुभव भी प्राप्त होता रहता है। सह–शिक्षा अनुशासन स्थापित करने में भी सहायक होती है। मनोवैज्ञानिक आधार पर कहा जा सकता है कि साथ–साथ पढ़ने पर बालक–बालिकाओं की एक दूसरे के प्रति जिज्ञासा वृत्ति शांत रहती है। इस सम्बन्ध में प्रो0 ब्रेडले का विचार है कि "केवल साथ रहकर ही उनमें विश्वास एवं अवबोध उत्पन्न होता है। सह–शिक्षा की संस्थाओं में पढ़ने वाले लड़कों का दृष्टिकोण नारियों के प्रति भिन्न होता है। वे नारी को मिल एवं सहकारिणी के रूप मे देखते है। किन्तु सह शिक्षा के लिए आवश्यक है कि विद्यालय का वातावरण अनुशासनपूर्ण हो और शैक्षिक हो। कक्षा में लड़के और लड़कियों की अलग–अलग डेस्क हो। दोनो के लिए समान पाठ्यक्रम हो लेकिन उनकी अभिक्षमता एवं आवश्यकतानुसार लड़कियों के लिए गृह विज्ञान, संगीत, चित्रकला आदि विषयों को पढ़ाने के लिए अलग से व्यवस्था हो।

प्रश्नावली

विषय : "विश्वविद्यालयीन छात्राओं के स्त्री स्वातंत्र्य संबंधी दृष्टिकोण का समाजशास्त्रीय विश्लेषण"

001 नाम उपनाम : ....जाति : ....धर्म : ....आयु : .
....

शिक्षा : ....व्यवसाय : .... पद : ....मासिक

002 पारिवारिक जानकारी

क्र. सदस्य का नाम आपसे संबंध लिंग आयु शिक्षा मासिक आय अन्य

001. आप स्त्रियों द्वारा नौकरी करने को किस प्रकार मानती है।

बहुत अच्छा ( ) अच्छा ( ) खराब ( ) बहुत खराब ( )

002. क्या आप ऐसा मानती है कि भारतीय धर्म और सामाजिक मान्यता से स्त्रियों के रोजगार करने के पक्ष में है:

हाँ ( ) नहीं ( )

यदि नहीं तो भारतीय महिलाओं द्वारा नौकरी के कार्य में संलग्नता को क्या समाज उचित ठहराता है :

हाँ ( ) नहीं ( )

यदि नही तो नौकरी करने वाली स्त्रियों को समाज किस दृष्टि से देखता है :

बहुत अच्छा ( ) अच्छा ( ) खराब ( ) बहुत खराब ( )

003. वर्तमान भारतीय समाज में क्या अभी भी स्त्रियों के प्रति पौराणिक मानदण्ड है क्या आप इनमें से किन्हीं पौराणिक मानदण्डों को स्वीकार करती है, जैसे:

(अ) स्त्री पुरूष की दासी है : हाँ ( )नहीं ( )

(ब) स्त्री, ढोर, गवार, शूद्र और पशु के समान ताड़ना की अधिकारिणी है :

हाँ ( ) नहीं ( )

(स) माँ और बहिन के रूप में स्त्री पूज्य है : हाँ ( ) नहीं ( )

(ड) पत्नी को परिवार में स्त्री पुरूष से निम्न है : हाँ ( ) नही ( )

(ढ) स्त्री को परिवार में कोई अधिकार नही मिलना चाहिए : हाँ ( ) नहीं ( )

(क) स्त्री पुरूष की तुलना में अल्पबुद्धि होती है: हाँ ( ) नहीं ( )

(ख) स्त्री पुरूष की तुलना में शारीरिक दृष्टि से कमजोर है : हाँ ( ) नहीं ( )

004. भारतीय समाज में चरित्र संबंधी मानदण्ड स्त्री और पुरूष के संदर्भो में अलग–अलग है, सामान्यतः स्त्री के चरित्र को विवाह पूर्व या विवाह पश्चात् यौन संबंधों के आधार पर मापा जाता है, जबकि पुरूष के चरित्र के मापन में विवाहेत्तर यौन संबंधों को अधिक महत्व नही दिया जाता। क्या आप इन मानदण्डों को स्वीकार करती है: हाँ ( ) नहीं ( )

यदि नहीं तो क्या मानदण्ड होना चाहिए :

(अ) स्त्री और पुरूष दोनों के चरित्र को समान रूप से विवाहेत्तर यौन संबंधों के आधार पर मापना चाहिए : हाँ ( ) नहीं ( )

(ब) विवाहेत्तर यौन संबंधों का चरित्र मापन से कोई रिश्ता नही होना चाहिए :

हाँ ( ) नहीं ( )

(स) स्त्री और चरित्र में विवाहेत्तर यौन संबंधों को प्रमुख आधार माना जाना चाहिए : हाँ ( ) नहीं ( )

(ड) यदि अन्य कोई सुझाव हो तो लिखे : ....

....

005. क्या आप सोचती है कि भारतीय समाज में स्त्री को पूर्ण आजादी है :

हाँ ( ) नही ( )

यदि हाँ तो कृपया कुछ ऐसे प्रमाण दीजिये जो कथन की पुष्टि करते हो : ....

....

यदि नही तो कृपया बतलाइये कि स्त्रियों को पूर्ण आजादी किस प्रकार प्राप्त हो सकती है :

(अ) चरित्र संबंधी मानदण्डों के बदलने से : हाँ ( ) नहीं ( )

(ब) पुरूषों में यह समझ विकसित होने पर कि स्त्रियाँ उनके समकक्ष है :

हाँ ( ) नहीं ( )

(स) स्त्रियों के शिक्षा स्तर बढ़ने से : हाँ ( ) नहीं ( )

(ड) स्त्रियों के संगठित आंदोलने से : हाँ ( ) नहीं ( )

(इ) स्त्रियों के अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होने से : हाँ ( ) नहीं ( )

006. स्त्रियों की आजादी के संदर्भ में यह धारणायें है कि स्त्रियों की आजादी में स्वयं स्त्रियाँ ही बाधक है जैसे परिवार में माँ द्वारा पुत्रियों को इस प्रकार से समाजीकृत करना कि स्त्रियों को पुरूषों से दबकर रहना चाहिए अथवा सास द्वारा बहु की आजादी पर रोक लगाना, दहेज को लेकर सास और ननद द्वारा स्त्री को प्रताड़ित करना आदि :

क्या आप इस कथन से सहमत है कि भारत में ऐसा हो रहा है :

हाँ ( ) नहीं ( )

यदि हाँ तो स्त्रियों को आजादी के लिए इन प्रकरणों को कैसे रोका जाना चाहिए :

(अ) प्रत्येक स्त्री को सामाजिक शिक्षा देकर ( )

(ब) स्वयं प्रताड़ित स्त्रियों द्वारा विरोध करके ( )

(स) कानून द्वारा ( )

(ड) अन्य कोई सुझाव हो तो लिखे : ....

....

....

....

007. क्या आप ऐसी सोचती है कि शिक्षित महिलाऐं अपने अधिकार के प्रति आशिक्षित महिलाओं की अपेक्षा अधिक जागरूक रहती है : हाँ ( ) नहीं ( )

008. यदि नहीं तो क्या शिक्षा प्रणाली में कुछ सुधार होने से महिलाओं को जागरूक किया जा सकता है : हाँ ( ) नहीं ( )

यदि हाँ तो क्या सुधार होना चाहिए : ....

009.क्या शिक्षित पुरुष अशिक्षित पुरूषों की अपेक्षा महिलाओं के प्रति सहानुभूति पूर्ण आचरण करते है : हाँ ( ) नहीं ( )

010. दहेज प्रथा भारतीय समाज के लिए अभिशाप है :

हाँ ( ) नहीं ( ) अनिश्चित ( )

011. स्त्रियों को पिता की संपत्ति में पूर्ण अधिकार वास्तविक रूप में मिलना चाहिए :

हाँ ( ) नहीं ( ) अनिश्चित ( )

012. स्त्री की पिता, पति और विधवा होने पर पुत्र पर निर्भरता समाप्त होनी चाहिए :

हाँ ( ) नहीं ( ) अनिश्चित ( )

013. पुरूषों की भांति स्त्रियों को भी सामाजिक, राजनीतिक एवं अन्य कार्यो में भागीदारी करने की पूर्ण स्वतंत्रता होनी चाहिए:

हाँ ( ) नहीं ( ) अनिश्चित ( )

014. स्त्रियों को आर्थिक कार्यो में निर्णय लेने की स्वतंत्रता होनी चाहिए :

हाँ ( ) नहीं ( ) अनिश्चित ( )

015. स्त्रियों को विशेष अधिकार अर्थात् आरक्षण की अपेक्षा समान अधिकार प्राप्त होना चाहिए :

हाँ ( ) नहीं ( ) अनिश्चित ( )

16 शादी से पहले लड़को से शारीरिक सम्बन्ध बनाना चाहिए

हाँ ( ) नहीं ( ) अनिश्चित ( )

17 एड्स के बारे में जानकरी है

हाँ ( ) नहीं ( ) अनिश्चित ( )

18 यौन सम्बन्ध बनाते समय कण्डोम का प्रयोग करेगी

हाँ ( ) नहीं ( ) अनिश्चित ( )

19 बाइक चालायेगी

हाँ ( ) नहीं ( ) अनिश्चित ( )

20 महाविद्यालय में सौन्दर्य प्रसाधन का प्रयोग करना चाहिए ।

हाँ ( ) नहीं ( ) अनिश्चित ( )

21 कक्षा में पुरुष मित्रों के साथ बैठेगी

हाँ ( ) नहीं ( ) अनिश्चित ( )

22 बाइक पर दोनों और पैर डालके बैठेगी

हाँ ( ) नहीं ( ) अनिश्चित ( )

23 एक से अधिक पुरुष मित्र बनायेगी

हाँ ( ) नहीं ( ) अनिश्चित ( )

24 बारात में पुरुष मित्रों के साथ नाचना पसंन्द करेगी।

हाँ ( ) नहीं ( ) अनिश्चित ( )

25 देर रात तक घूमना पसन्द करेगी।

हाँ ( ) नहीं ( ) अनिश्चित ( )

26 क्या इण्टरनेट पर कामुक चित्र देखना पसंद करेगी।

हाँ ( ) नहीं ( ) अनिश्चित ( )

27 आप अपने सहपाठी के साथ एक कमरे में रहेगी।

हाँ ( ) नहीं ( ) अनिश्चित ( )

28 आप अपने सहपाठियों के साथ कार में अकेले घूमना पसंद करेगी।

हाँ ( )   नहीं ( )   अनिश्चित ( )

29 मासिक धर्म के समय सहवास करेगी।

हाँ ( )   नहीं ( )   अनिश्चित ( )

30 गर्भधारण के पश्चात पति के अतिरिक्त अन्य पुरुष मित्र से सहवास करेगी।

हाँ ( )   नहीं ( )   अनिश्चित ( )

31 विवाह के पश्चात अपने पुरुष मित्रों से सम्बन्ध रखेगी।

हाँ ( )   नहीं ( )   अनिश्चित ( )

32 बीयर बार में नौकरी करेगी।

हाँ ( )   नहीं ( )   अनिश्चित ( )

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1– बाईबिलः उत्पत्ति नामक पुस्तक।

2– अथर्ववेद, 14 जयशंकर मिश्र द्वारा लिखित प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास

3– लोहिया राममनोहर 'जन' अप्रैल 1967 नवहिन्द प्रकाशन हैदराबाद

4– बेस, ईश्वर सिंह इतिहास के आइने में आम आदमी

5– अनभिरत जातक : 65

6–जफर : मुस्लिम भारत में शिक्षा (साप्ताहिक हिन्दुस्तान 72–74)

7– प्रवीण कुमार सक्सेना, साप्ताहिक दर्पण, उरई,

8– बाजपेयी, पूर्णिमा : स्त्री के लिए जगह

9– उत्तर प्रदेश, गजट, 2003 सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग उत्तर प्रदेश, लखनऊ,

10– "विश्वविद्यालयीन छात्राओं के स्त्री स्वातंत्र्य सम्बन्धी दृष्टिकोण का समाजशास्त्रीय विश्लेषण", लघु शोध प्रबन्ध, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर के सन्दर्भ में, कु. नीलम यादव, 2001,

11–चोपड़ा, पुरी, दास, भारत का सामाजिक सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास

12–हंटर, डब्ल्यू, डब्ल्यू, हिंद इंडिया मुसलमान्स (1969)

13–शुक्ला आर. एल., आधुनिक भारत का इतिहास

14–ग्रोवर यशपाल, आधुनिक भारत का इतिहास

15–बी. एल. ग्रोवर, औपनिवेशिक शासन के अधीन भारतीय अर्थव्यवस्था

16–विपिन चन्द्रा, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष,

17–जवाहर लाल नेहरू, डिस्करवी आफ इण्डिया,

18–सव्यसाची, भट्टाचार्य, आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास,

19–पुरी, दास, चोपड़ा– भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास

20–हिन्दूतान समाचार पत्र दैनिक, लखनऊ, मंगलवार 13 जून 2006

21– जी. के अग्रवाल, भारतीय सामाजिक संस्थाए

22–यतोऽभ्युदय निःश्रेयस सिद्धि स धर्मः (वैशिषिक दर्शन)

23–कल्याण, धर्मांक

24–मनु स्मृति, 6/92

25–डॉ. राजवली पाण्डेय, हिन्दू संस्कार